Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

AND

Published by Pandit Manoharlal Shastri, Malik, Jain Grantha Uddharak Karyalaya, Khattar Lane, Houdwadi, Bombay, No. 4.



ॐ नमः परमेष्ठिभ्यः

प्रस्तावना ।

प्रिय पाठकगण ! अब मैं श्री जिनेंद्रदेवकी कृपासे उस अपूर्व ग्रंथ प्रतिष्ठासारोद्धारको भाषाटीकासहित बनाके आपके सामने उपस्थित करता हूं कि जिसकेलिये आप सब साधर्मीगण उत्कंठित होरहे थे । गृहस्थ श्रावकोंका देवपूजा करना नित्य कर्मोंमेंसे पहला कर्तव्य कहा है, इसकेलिये जिनदेवकी प्रतिमा तथा मंदिरकी स्थापना होना बहुत आवश्यक है । उसी स्थापनाकी पंचकल्याणक आदि विधियां इस महान ग्रंथमें स्पष्ट रीतिसे वर्णनकी गई हैं । इसका फल ग्रंथकारने स्वयं दिखलाया है कि पहले महाराज भरतचक्रवर्ती आदि महान पुरुष भी इसी जिन प्रतिष्ठाके करनेसे निराकुल मोक्षसुखको प्राप्त हुए हैं । परंतु कालकी कुटिलगतिसे आजकल बहुत कुछ विपरीतपना फैल गया है । पहले तो प्रतिष्ठाकरानेवाले धनिक यजमानोंको यही खबर नहीं कि प्रतिष्ठाकरानेका क्या फल है तथा इसको

प्रतिष्ठाचार्यके साथ कैसा वर्ताव करना चाहिये। दूसरी वात यह है कि प्रतिष्ठाचार्यको भी अत्यंत लोभके वशीभूत होकर इसवातका ध्यान नहीं रहता कि मैं यजमानके साथ अयोग्य वर्ताव तो नहीं करता। वस यजमान और प्रतिष्ठाचार्य इन दोनोंके अयोग्य वर्ताव होनेसे प्रतिष्ठाके समय अनेक विघ्न आकर उपस्थित होजाते हैं तव प्रतिष्ठाका फल निष्फल होजाता है॥ यही विचारकर मेरा मन संक्षिप्त भाषाटीका सहित इस **प्रतिष्ठापाठ**को प्रकाशित करनेका हुआ है। जिससे सब साधारण भव्यजीवोंको यह वात मालूम होजावे कि प्रतिष्ठा करानेमें किन २ चीजोंकी आवश्यकता है और यजमान तथा प्रतिष्ठाचार्यको कैसा वर्ताव रखना चाहिये॥

यह महान् ग्रंथ पंडितप्रवर श्री आशाधर गृहस्थाचार्यका बनाया हुआ है। इन्होंने श्री **वसुनंदि** आचार्यकृत **प्रतिष्ठासार संग्रह**के विषयका उद्धार करनेके लिये विस्तारसहित पूर्वोक्त प्रतिष्ठासारोद्धार नामका ग्रंथ रचकर भव्यजीवोंका उपकार किया है। इन्हीं विद्वद्वरने धर्मामृत आदि अनेक अपूर्व ग्रंथोंकी रचना की है, उसका उल्लेख प्रशस्तिमें किया गया है। और जीवनचरित्र भी संक्षेपमें प्रशस्तिमें है तथा सागार धर्मामृतमें मुद्रित हो चुका है इसलिये यहां लिखनेकी विशेष आवश्यकता नहीं है। इस ग्रंथकी भाषाटीका अवतक देखनेमें नहीं आई और न मैंने अवतक कोई प्रतिष्ठा करानेका काम ही किया। उसमें भी प्रतिष्ठाकी क्रिया करानेवालोंकी लोभकषायके वश चित्तमलिनता होनेके कारण विधि वतलानेमें सहायता देना असंभव समझ उनके पास भी जाना व्यर्थ समझा। इसलिये मूल संस्कृतपरसे ही बुद्धिके अनुसार भाषाटीका संक्षेपसे लिखी गई है।

इस ग्रंथकी एक हस्तलिखित प्रति तो पूर्ण मिली तथा दूसरी अधूरी मिली। ये दोनों प्रतियां लेखकोंकी कृपासे प्रायः अशुद्ध मिलीं, इसलिये अर्थकरनेमें वहुत कठिनाई हुई। अस्तु। 'न कुछसे कुछ होना अच्छा' इस कहावतको लेकर यह उद्यम किया गया है।

इस ग्रंथके साथ प्रतिष्ठासारसंग्रहका भी कुछ भाग लगादिया है । तथा समयके अनुकूल विषयसूची, मंत्रसाधनके समय आवश्यक चीजोंका नकशा, और मंत्रव्याकरणके कुछ नियमोंको बतलानेवाले श्लोक भी लगादिये गये हैं कि जिससे कर्णपिशाचिनी आदि विद्याके साधनेमें सफलता हो । मंत्र सिद्ध करनेकी विस्तारसे विधि **मंत्रसंग्रह** में बहुत अच्छी तरहसे बतलाई जावेगी ।

इस ग्रंथके उद्धारमें श्रीमान् सेठ **भेरूंदानजी** लाडनूं निवासीने जो पचास रुपये भेजकर सहायता की है, इस अपूर्व उपकारके हम बहुत आभारी होके कोटिशः धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि इस तरहकी आर्थिक सहायता देकर अन्य सज्जन भी जिनवाणीका प्रचारकर पुण्यउपार्जन करेंगे । अंत में यह प्रार्थना है यदि हमारे पाठकोंको इस ग्रंथसे संतोष हुआ और सहायता मिली तो **अष्टांग-निमित्तसंग्रह** तथा **मंत्रसंग्रह** आदि अपूर्व ग्रंथ भाषा-टीका सहित प्रकाशित करके उपस्थित करूंगा । शुद्ध प्रति न मिलनेसे कहीं अशुद्धियां रह गई हों तो पाठक महाशय मुझपर क्षमा करें । जब शुद्ध प्रति मिलजावेगी तब शुद्धिपाठ छपाकर भेजदिया जावेगा । इसतरह प्रार्थना करता हुआ इस प्रस्तावनाको समाप्त करता हूं । अलं विज्ञेषु ।

खत्तरगली हौदावाडी
पो. गिरगांव—बंबई
जेठ वदि १२ वीर सं० २४४२

जैनसमाजका सेवक
मनोहरलाल
पाढम (मैनपुरी) निवासी

मंत्रसाधनके समय आवश्यक नियम ।

शांतिकर्म १	पौष्टिककर्म २	वश्यकर्म ३	आकर्षणकर्म ४
वरुणदिशा	नैऋत्यदिशा	कुबेरदिशा	यमादिक्
अर्धरात्रि	प्रभातकाल	पूर्वाह्णकाल	पूर्वाह्णकाल
ज्ञानमुद्रा	ज्ञानमुद्रा	सरोजमुद्रा	अंकुशमुद्रा
पंकजासन	स्वस्तिकासन	पंकजासन	दंडासन
(नमः) स्वाहा पल्लव	स्वधा पल्लव	वषट् पल्लव	वौषट् पल्लव
श्वेतवस्त्र	श्वेतवस्त्र	रक्त वस्त्र	उदयार्कवस्त्र
श्वेतपुष्प	श्वेतपुष्प	अरुण पुष्प	अरुणपुष्प
श्वेतवर्ण	श्वेतवर्ण	रक्तवर्ण	उदयार्कवर्ण
पूरकयोग	पूरकयोग	पूरकयोग	पूरकयोग
दीपनआदि नाम	दीपनआदि	संपुट आदि	ग्रंथनवरुण
स्फटिकमणि माला	मुक्ताफल माला	प्रवालमणि	प्रवालमणि
मध्यमांगुलि	मध्यमांगुलि	अनामिका	कनिष्ठिका
दक्षिणहस्त	दक्षिणहस्त	वामहस्त	वामहस्त
वामवायु	वामवायु	वामवायु	वामवायु
जलमंडल	जलमंडल	अग्निमंडल	अग्निमंडल

स्तंभनकर्म ५	मारणकर्म ६	विद्वेषणकर्म ७	उच्चाटनकर्म ८
पूर्वाभिमुख	ईशानदिशा	आग्निदिक्	वायव्यदिशा
पूर्वाह्णकाल	संध्याकाल	मध्याह्नकाल	अपराह्णकाल
शंखमुद्रा	वज्रमुद्रा	प्रवालमुद्रा	प्रवालमुद्रा
वज्रासन	भद्रासन	कुर्कुटासन	कुर्कुटासन
ठ ठ पल्लव	घे घे पल्लव	हुं पल्लव	फट् पल्लव
पीतवस्त्र	कृष्णवस्त्र	धूम्रवस्त्र	धूम्रवस्त्र
पीतपुष्प	कृष्णपुष्प	धूम्रपुष्प	धूम्रपुष्प
पीतवर्ण	कृष्णवर्ण	धूम्रवर्ण	धूम्रवर्ण
कुंभकयोग	रेचकयोग	रेचकयोग	रेचकयोग
विद्‌र्भमध्य	रोधनआदि	पल्लवांतिनाम	पल्लवांतिनाम
स्वर्णमणि	पुत्रजीवीमणि	पुत्रजीवीमणि	पुत्रजीवीमणि
कानिष्ठिका	तर्जनी	तर्जनी	तर्जनी
दक्षिणहस्त	दक्षिणहस्त	दक्षिणहस्त	दक्षिणहस्त
दक्षिणवायु	दक्षिणवायु	दक्षिणवायु	दक्षिणवायु
पृथ्वीमंडल	वायुमंडल	वायुमंडल	वायुमंडल

॥ मंत्रसाधनविधिके आवश्यक श्लोक ॥

दिक्कालमुद्रासनपल्लवानां भेदं परिज्ञाय जपेत् स मंत्री ।
न चान्यथा सिद्ध्यति तस्य मंत्रः कुर्वन् सदा तिष्ठतु जाप्यहोमं ॥ १ ॥
स्तंभं विद्वेषमाकृष्टिं पुष्टिं शांतिं प्रचालनम् । वश्यं वधं च तं कुर्यात् पूर्वाद्यभिमुखः क्रमात् २
अन्योन्यवज्रविद्धं पीतं चतुरस्रमवनिबीजयुतम् । कोणेषु रांतयुक्तं भूमंडलसंज्ञकं ज्ञेयम् ॥३॥
मुखमूलवपोपेतः पद्मपत्रांकितः सितः । पववर्णात्तदिक्कोणः कलशस्तोयमंडलम् ॥ ४ ॥
त्रिस्वास्तिकं त्रिकोणं यांतं कोणेषु वह्निबीजयुतम् । ज्वालायुतमरुणाभं तन्मंडलमाहुराग्नेयम् ५
बहुबिंदुवक्ररेखं वृत्ताकारं चतुर्यकारयुतम् । कृष्णं मारुतबीजं वायव्यं मंडलं प्राहुः ॥ ६ ॥
चत्वारि मंडलानि च लवरयवर्णैः क्रमेण युक्तानि । पृथ्वीसलिलहुताशनमारुतबीजैः समेतानि ७
मारणाकृष्टिवश्येषु त्र्यस्रं कुंडं प्रशस्यते । विद्वेषोच्चाटयोर्वृत्तमन्येषु चतुरस्रकम् ॥ ८ ॥
पलाशस्य समिन्मुख्या स्यादमुख्या पयस्तरोः । विधानमेतत् संग्राह्यं विशेषवचनादृते ॥ ९ ॥
वधविद्वेषोच्चाटेष्वष्टौ पुष्टौ मता नव शांतौ । आकृष्टिवशीकृत्योर्द्वादश सामिधः प्रमांगुलयः॥१०
शतमष्टोत्तरसंख्या सहस्रमष्टोत्तरं वदंति जपे ।होमादिषु संख्या स्यात् दशभागा मूलमंत्रसंख्यायाः
जपाद्वविकलो मंत्रः स्वशक्तिं लभते पराम् । होमार्चनादिभिस्तस्य तृप्ता स्यादधिदेवता १२
एकस्तावद्वह्निः पुनरपि पवनाहतो न किं कुर्यात् ।एको मंत्रः पुनरपि जपहोमयुतोस्य किमसाध्यं
शिष्यो मंत्रक्रियारंभे स्नातः शुद्धांबरं दधत् । निर्जंतुदेशके पूजाजपहोमान् करोत्विति ॥१४॥
पंचाह्वाननस्थापनसाक्षात्करणार्चनाविसर्गाः स्युः ।मंत्राधिदेवतानामुपचाराः कीर्तितास्तज्ज्ञैः ॥
सिसाधयिषुणा विद्यामविघ्नेनेष्टसिद्धये । यत्स्वस्य क्रियते रक्षा सा भवेत् सकलीक्रिया॥१६॥

ॐ नमः परमात्मने ।

श्रीमत्पंडितप्रवर–आशाधरविरचितः

प्रतिष्ठासारोद्धारः ।

(जिनयज्ञकल्पापरनामा)

जिनान्नमस्कृत्य जिनप्रतिष्ठाशास्त्रोपदेशव्यवहारदृष्ट्या ।
श्रीमूलसंघे विधिवत्प्रबुद्धान भव्यान प्रवक्ष्ये जिनयज्ञकल्पम् ॥ १ ॥

हिंदी भाषाटीका

अब जिनयज्ञ कल्प नामके प्रतिष्ठापाठका व्याख्यान किया जाता है;—मैं (आशाधर) जिनेंद्र भगवानको नमस्कार करके और जिनप्रतिष्ठा शास्त्रोंकी गुरुआम्नायको अच्छीतरह जानकर श्रीमूलसंघके शास्त्रोंके अनुसार श्रावकधर्मको पालनेवाले भव्योंके वास्ते जिनयज्ञक-

१ अथातो जिनयज्ञकल्पमनुक्रमिष्यामः । २. जिनस्थापनाधर्मसंहितागुर्वाम्नायमुख्यप्रवृत्त्यवलोकनेन ।

।० मा० ॥ १ ॥

भाषाटी० अ० १

साकल्येनैकदेशेन कर्मारातिजितो जिनाः । पंचाद्यास्तद्गणेशाः भुवं पान्तु नाशकम् ॥२॥
जिनानां यजनं यज्ञस्तस्य कल्पः क्रियाक्रमः । तदाख्यानात् जिन-यज्ञकल्पोऽयमनुकथ्यते ॥३॥
तत्र त्रिलोकसाम्राज्यमहतां यजनादिनाम् । आनागृहस्थ भेदाः स्युः पंच नित्यमहः कृतः ॥४॥
तेषु नित्यमहो नाम स नित्यं यज्जिनान्तिके । नीतैर्गृहान्निजं स्नानैर्गन्धाद्यैरक्षतादिभिः ॥५॥
अतो नित्यमहोद्युक्तैर्निर्माप्यं मुक्तिकांक्षिभिः । जिनचैत्यगृहं भोगभूद्राणि न विलम्बतः ॥६॥

इसका विस्तारसे व्याख्यान करता हूं ॥१॥ समस्त अथवा थोडेसे कर्मरूपी वैरियोंको जिसने जीत लिया है वह जिन कहलाता है इसलिये महावीर और गौतमादि पांच परमेष्ठी तथा उनका कहा हुआ द्वादशांग शास्त्र-जिन जानना चाहिए। उन जिन शब्द वाच्य अर्हतादिकका जो पूजन उसे जिनयज्ञ कहते हैं उसकी क्रियाओंके क्रमको कल्प कहते हैं इसलिये जिन-पूजाकी क्रियाओंके क्रमको जो कहे उसीको 'जिनयज्ञकल्प' इस नामसे कहते हैं। यह जिनयज्ञकल्पका अक्षरार्थ हुआ ॥ २ । ३ ॥ इनमें सबसे पहले अर्हतकी पूजाका क्रम कहा जाता है क्योंकि मुख्यतासे उन तीर्थंकर अर्हन्तका ही जन्म जगतजीवोंके उपकारके लिए होता है। उस पूजाके नित्यमह चतुर्मुख रथावर्त कल्पवृक्ष अष्टाह्निक ये पांच भेद आचार्योंने कहे हैं ॥ ४ ॥ उन पांचोंमेंसे नित्यमह नामकी पूजा यह है कि जो अपने घरसे चंदन अक्षतादि अष्टद्रव्यको चैत्यालय (जिनमंदिर) में लेजाकर उसमें जिनेन्द्रका पूजन किया जावे ॥ ५ ॥ इसलिये पुण्यके चाहनेवालोंको नित्यमह पूजनमें उद्यमी होके जिनमंदिर बनवाना चाहिये

॥ १ ॥

जिने यज्ञं करिष्याम इत्यध्यवसिताः किल। जित्वा दिशो जिनानिष्ट्वा निर्वृता भरतादयः॥७॥
शक्यक्रियेष्टफलतां दृष्ट्वाष्टांगनिमित्ततः। स्वशक्त्या स्वाप्तान् प्रष्टाप्तान् प्रारभेत जिनालयम्॥८॥
मुनिगोऽश्वेभभूपाढ्ययोपिच्छत्रादिदर्शनम्। तत्प्रश्ने वेदपाठार्हन्स्तुत्यादिश्रवणं शुभम्॥९॥
विमृश्य हसतीस्तोमः सोऽहं मध्ये स्थितोऽततः। चतुरोंकारयुक् सव्येतरमायाद्वयावृत्तम्॥१०॥

और जहांतक होसके जीर्ण जिनमंदिरका उद्धार कराना बहुत उत्तम है ॥ ६ ॥ जिनेन्द्र देवकी पूजा तो अवश्य करेंगे ऐसा दृढनिश्चय रखनेवाले भरत सगर राम पांडव आदिक बडे २ महाराजा जो पूर्वसमयमें होगये हैं वे भी जिनेन्द्रदेवकी पूजाकरनेसे ही सब दिशाओंको जीतकर अंतमें मोक्षके अविनाशीक सुखको प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ अपनी शक्ति और इष्ट सिद्धिको विचार कर तथा पिता माता मंत्रीआदिक सज्जनोंको पूछकर अष्टांग निमित्तके द्वारा शुभतिथि आदि पंचांग शुद्ध लग्नमें जिनमंदिर बनवाना शुरू करे ॥ ८ ॥ जिन-मंदिरके उद्धार करनेके संबंधमें पूछनेके समय दिगंबर मुनि (साधु) बछड़ेवाली गाय वा बैल घोडा हाथी सधवा स्त्री छत्र और आदि शब्दसे चमर ध्वजा सिंहासन दही दूध इत्यादिका देखना तथा वीणाका शब्द जैन शास्त्रोंका पाठ अर्हंतको नमस्कार आदि शब्दोंका सुनना शुभ है ॥ ९ ॥ अब कर्णपिशाचिनी यंत्र मंत्रका उद्धार बतलाते हैं,—हकार सकार तकारके ऊपर बिंदु रख सकार और हकारके बीचमें तीं अक्षरको लिखे उसके चारों कोनोंमें चार ओंकार

मध्येऽपि [illegible] न गच्छति । ओं हूं फट्[illegible] ॥ २० ॥
आपकुंभोध्वंगे सर्पिःपूर्णे पूर्वादिदिग्गतान् [illegible] वर्तिकाः [illegible] २१
अनादिसिद्धमंत्रेण मंत्रयेद्[illegible] । शुद्धं [illegible] शुभं [illegible] ॥ २२ ॥
एवं संशुद्ध भूमिं [illegible] । [illegible] २३
पाताल [illegible] । [illegible] दिशः [illegible] २४

[illegible]-गड्ढा न भर सके तो [illegible]-अशुभ [illegible] समान समझना चाहिये ॥ १९ ॥ पूर्व
छिपनेके बाद [illegible] । 'ओं हूं फट्' इस क्षुद्र-
आदि अस्त्रमंत्रसे रक्षा करे ॥ २० ॥ पुनः उसकी पूर्वादि चारों दिशाओंमें कच्चे मट्टीके
चार घड़े रखे उनपर कच्चे [illegible] और घृत रखे उनमें [illegible] बत्ती
पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे [illegible] फिर [illegible] ॥ २१ ॥ [illegible] अनादि
सिद्धमंत्रसे मंत्रित करे । बत्तियां [illegible] तो शुभफल कहना और यदि [illegible]
मालूम पड़ें तो अशुभ फल कहना चाहिये ॥ २२ ॥ इसप्रकार उत्तम भूमिको [illegible]
शुभ दिनमें उसकी खोदी हुई नींवकी पूजा करके उसे शुद्ध करे । फिर पत्थर आदि
के टुकड़ोंसे भरकर पाली भूमिके बराबर करके इस तरह [illegible] शास्त्रका जानने-
वाला दिशाओंको विचार कर जिन भवनका निर्माण करावे ॥ २३ ॥ २४ ॥

चतुरस्रे कृते पंचवर्णचूर्णेन मंडले । चतुर्द्वारेष्टपत्राब्जगर्भे न्यस्यांबुजोदरे ॥ २५ ॥
जिनादीन् मंगलैर्लोकोत्तमैश्च शरणैर्युतान् । अनादिसिद्धमंत्रेण पूजयेद्दिग्दलेष्वनु ॥ २६ ॥
देवीर्जयाद्या जंभाद्या विदिक्पत्रेषु तद्बहिः । लोकपालान् यजेद्दिक्षु स्वस्वमंत्रैस्तथा ग्रहान्२७
तत्र संस्थाप्य सत्पीठे जिनार्चां समहोत्सवाम् । प्रीतः प्रीतेन संघेन संयुक्तो याजकोत्तमः२८
संस्नाप्यादाय गंधांबुचरुपुष्पाक्षतादिकम् । दद्याद्बलिं स्वमंत्रेण विश्वविघ्नोपशांतये ॥ २९ ॥
एवं स्थंडिलपातालवास्तुपूजाद्वयोत्तरम् । विधाप्य मसृणं क्षेत्रमित्थं तद्वास्तु पूजयेत् ॥३०॥

इति स्थंडिलपातालवास्तुद्वयपूजाविधानम् ।

उस जिन मंदिरके चारों दरवाजोंके सामने पांच रंगके चूर्णसे चौकोन मांडला बनावे और आठ पांखुडीके कमलके आकार तांबेके पात्रमें लोकोत्तम शरणरूप जिन आदिको अनादि सिद्ध मंत्रसे पूजे ॥ २५ ॥ २६ ॥ उसके बाद दिशाओंके चार पत्रोंपर जया आदि देवियोंका और विदिशाओंके चार पत्रोंपर जंभा आदि देवियोंका तथा उसके बाहर चार लोकपालोंका और नव ग्रहोंका अपने २ मंत्रोंसे पूजन करे ॥ २७ ॥ फिर उत्तम सिंहासनपर जिन भगवानकी प्रतिमाको विराजमान करके वह उत्तम यजमान (पूजा करानेवाला) प्रेमयुक्त श्रावकादि समूहसे घिरा हुआ प्रसन्न चित्तसे जिन पूजा करे ॥ २८ ॥ पहले तो सुगंधित जलसे अभिषेक करे पश्चात् जल चंदन अक्षतादि आठ द्रव्य लेकर अपने २ मंत्रसे सब विघ्नोंकी शांतिके लिये पूजा करे ॥ २९ ॥ इस प्रकार चबूतरा और

रेखाभिस्त्रिवर्णाभिश्चाग्राभिः [illegible] । [illegible] ॥ ३१ ॥
[illegible] ॥ ३२ ॥
[illegible] ॥ ३३ ॥
इन्द्रादीन् दिक्षु [illegible] ॥ ३४
सर्वांग[illegible] ॥ ३५ ॥

नींवकी भूमि-इन दोनोंकी [illegible] जगह करावे ॥ ३० ॥ इस प्रकार [illegible] और नींवकी भूमि-इन दोनोंकी पूजाका विधान समाप्त हुआ । इसके बाद पूर्व दिशामें [illegible] एक चौकोन मंडल बनावे उसकी विधि इस प्रकार है कि पहले तो उसके चारों तरफ [illegible] अग्रभागमें [illegible] फिर उस कोठेके बीचमें आठ पत्रवाला कमल बनावे ॥ ३१ ॥ उस कमलके मध्यमें पंच परमेष्ठियोंका स्थापन करके अरहंत सिद्ध आदिकी पूजा करे । इसके बाद आठ कमलपत्रोंपर स्थित जया आदि आठ देवियोंकी पूजा करे ॥ ३२ ॥ पश्चात् रोहिणी आदि सोलह विद्या देवियोंके चक्रेश्वरी आदि चौबीस शासन देवताओंके कोठे तथा बत्तीस यक्षोंके कोठे रचे । इसके बाद चारों दिशाओंमें इंद्र वरुण आदि चार दिक्पालोंको स्थापन करे फिर उसके आगेके भागमें [illegible] स्थापन करना चाहिये । उस मध्य कमलके ऊपर सिंहासन रखे उसपर जिनप्रतिमा रखकर उसका अभिषेक पूर्वक पूजन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इसके बाद चारों कोनोंमें चार कलश तथा एक

तत्रारोप्यैकशोनादिसिद्धमंत्रेण मंत्रयेत्। ततस्तन्न्यासदेशेषु मृतश्रीखंडकुंकुमम् ॥ ३६ ॥
क्षित्वा भागेकमुत्क्षिप्य क्षेत्रगर्भे न्यसेत्तथा । पृथक्कोणेषु चतुरस्ततः पंच शिलाः पृथक् ॥३७॥
जिनादिमंत्रैरध्यास्य सुलग्ने तेषु विन्यसेत् । ततः प्रतोष्य शिल्प्यादीन् स्वक्षेत्रे भ्रामयेद्बलिम् ३८
पीठबंधेप्यसावेव विधिः कृत्स्नो विधीयताम् । विकुंभो देहलीपद्मशिलयोश्च निवेशने ॥३९॥

इति पीठबंधादित्रयप्रतिष्ठाविधानम् ।

भीतर (सिंहासनके पास) इस तरह पांच शिला अथवा पकी हुई ईंटें रक्खे । उसके ऊपर शुभ लग्नमें पांच तांबेके कलशोंको क्रमसे रखे उनके अंदर सर्वौषधी, पांच तरहके रत्नोंसे मिला हुआ नदी या कुएका जल भरा रहना चाहिये और घड़ोंके रखनेके स्थानपर पारा-घिसा हुआ चंदन कुंकु रखे और सबको अनादिसिद्ध जिनादि(णमोकार)मंत्रसे मंत्रित करे । उसके बाद कारीगरोंको द्रव्यादिसे प्रसन्न करके अपने मंडलके आगे पूजाकरे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥३८॥ इस प्रकार जिनादि मंत्र तथा शिला रखनेकी विधि पूर्ण हुई । वेदीके बांधनेमें (रचनामें) भी यही विधि करनी चाहिये और देहलीकी शिला तथा वेदीकी कमलाकार गुमठीकी शिलाके रखनेमें भी पूर्वकथित विधि करनी चाहिये । परंतु देहलीके दरवाजे की तथा गुमठीकी कमलाकार शिलाके पिछले भागमें जया आदिके देवियोंकर सहित

---

१ ओं ह्रां नमोऽर्हद्भ्यः स्वाहा, ओं ह्रीं नमः सिद्धेभ्यः स्वाहा, ओं ह्रूं नमः सूरिभ्यः स्वाहा, ओं ह्रौं नमः पाठकेभ्यः स्वाहा, ओं ह्रः नमः सर्वसाधुभ्यः स्वाहा । जिनादिमंत्राः न्नरशिलानिवेशनं ।

देहल्यन्तशिलापृष्ठे तथा वक्ष्यालुकम् । गंधपुष्पाक्षतैर्दीपैर्नानामंगलपूरितैः ॥ ४० ॥
अथ किंचिद्गृहवासे प्रासादे वा गृहाश्रमे । ब्राह्मणादिकृतिसामर्थ्यं पुरुषं संप्रवेशयेत् ॥ ४१ ॥
शुकनासोर्ध्वपर्यन्तं वेदिकाखस्तलान्तरे । गर्भगृहकं कृत्वा वेदिकां तत्र विन्यसेत् ॥ ४२ ॥
मध्ये ताम्रमयं कुंभं वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् । सौवर्णपञ्चरत्नानि गंधपुष्पाक्षतान्वितम् ॥ ४३ ॥
स्थिरं संस्थाप्य तन्मध्ये सर्वधान्यानि पंचकम् । सर्वौषधीश्च धान्यानि धातवः पंच संयुतम्॥४४॥
सौवर्णं राजतं वापि ताम्रजं वा नरं ततः । मन्त्रैः संस्नापयेत्पश्चात्पञ्चामृतस्नानादिभिः॥४५॥

आठ पत्तोंवाला कमल पूजकर अर्हत देवके अभिषेकके जलसे उन शिलाओंको सींचना चाहिये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इसप्रकार वेदिवेध आदि शिलाओंकी प्रतिष्ठाकी विधि जानना ॥ अथ पुरुषके प्रवेश करनेकी विधि कहते हैं– उसके बाद अपने घरमें प्रासादोंमें पुरुष जिस मंदिर मकान होनेमें कुछ रह जाने तभीसे शिल्पी वगैरःके कल्याणकेलिये मनुष्याकार पुतला लेकर प्रवेश करे ॥४१॥ उसकी विधि इस प्रकार है कि शुकनासा समान नाकवाली प्रतिमाके ऊपरके भाग और वेदीके बिचमें भीतके भीतरमें रहनेका स्थान (कलश) बनाके उसमें प्रतिमा विराजमान होनेकी वेदीको रखे ॥४२॥ उसके बीचमें तांबेका घड़ा दो वस्त्रोंसे ढका हुआ रक्खे उस घड़ेमें दूध घी शक्कर भरे और चंदन पुष्प अक्षतसे पूजन करे। उस घड़ेको स्थिर रखकर उसमें पांच तरहके रत्न, सर्व औषधी सब अनाज चावल जौ आदि पांच धातुएं भरे ॥४३।४४॥ अनंतर सोना अथवा चांदीका मनुष्याकार पुतला बनवाके दूध घी आदि उत्तम द्रव्योंसे स्नान

तूलोपधानयुक्तायां सुशय्यायां निवेश्य च । अनादिसिद्धमंत्रेण सम्यक् तत्राधिवासयेत् ४६
पूर्वोक्तविधिना कृत्वा जिनेंद्रार्चाभिषेचनम् । ततस्तं सम्यगुत्क्षिप्य विलग्नांशोदये शुभे॥४७॥
कृत्वा महोत्सवं तत्र कुंभे तं स्थापयेन्नरम् । एतत्कारापकादीनां विधानं शुभदं भवेत्॥४८॥

इति पुरुषप्रवेशनाविधानम् ।

धाम्नि सिद्ध्यति सिद्धे वा सेत्स्यत्यर्चाकृते शिलाम्।अन्वेष्टुं सेष्टशिल्पींद्रःसुलग्नशकुने व्रजेत्४९
प्रसिद्धपुण्यदेशोत्था विशाला मसृणा हिमा । गुर्वी चार्वी दृढा स्निग्धा सद्गंधा कठिना घना ५०

कराके अक्षतादिसे पूज पटसूत्र (निवाड) से बुनी हुई रुईके गद्दे तकिये सहित सेज (खाट) पर रख अनादि सिद्धमंत्र पढकर लिटावे फिर जिनेद्रदेवका अभिषेक पूर्वक पूजन करके शुभलग्नके नवांशके उदयमें उच्छव सहित उस मनुष्यकार पुतलेको उस घडेमें रखे। ऐसा विधान करनेसे कारीगरोंको कोई विघ्न नहीं आता शुभफल होता है ॥ ४५ । ४६ ॥ ॥ ४७ । ४८ ॥ उसके पश्चात जिनमंदिर तयार होरहा हो हो गयाहो या कुछ देरी हो पूजन करके उत्तम प्रतिष्ठमावनानेवाले कारीगरको साथ लेकर शुभलग्न तथा शुभशकुनमें प्रतिमाके लिए शिला लेनेको पहाडपर जाना चाहिये ॥ ४९ ॥ अर्हंत प्रतिमाके लिये बहुत उत्तम मोटी शिला होनी चाहिये । तथा वह शिला प्रसिद्ध पवित्र जगह वाली हो बडी हो, चिकनी हो, ठंडी हो, मोटी हो, सुंदर हो, मजबूत हो, अच्छी गंधवाली हो, ठोस हो,

सद्वर्णां स्निग्धवर्णां निर्दोषां चतुरङ्गुलाम् । शुभ्राद्यां शुभ्रगां सारां दिग्विभागे गतां शिलाम् ॥ ५१ ॥
तां प्राप्य भूतले कृत्वा शोधनमंत्रेण पूजिताम् । निष्कास्य हुं फट् स्वाहेत्यनेनाङ्गेन पुनः ॥ ५२ ॥
गृहीत्वा नतो भूत्वा शुभाशुभानि । स्वप्नं ज्ञातुं निशारंभे निमित्तं लोकयेत् ॥ ५३ ॥
स्नात्वैकान्ते शुचौ देशे लिप्त्वा गंधैः शुभैः करौ । जपन् सिद्धभक्तिं च ध्यायेन्मंत्रमिमं हृदि ॥ ५४ ॥
ओं नमोऽस्तु जिनेंद्राय ओं महाश्रमणाय नमः । नमः केवलिने तुभ्यं नमोऽस्तु परमेष्ठिने ॥ ५५ ॥

अच्छे रंगवाली हो अधिक चमकवाली हो, निर्दोष और चार अंगुल की हो अच्छा रूप तथा अच्छी कांति जिसमें हो—ऐसी शिला होनी चाहिये ॥ ५१ ॥ उसको लेकर और उसकी भूमिकी तरह पूजकर शोधनमंत्रसे उसे पोंछकर ओं हुं फट् स्वाहा इस मंत्रसे शिला उठानेके हथियारसे उसे निकाले ॥ ५२ ॥ फिर पहार जाकर निमस्करीं भूमिकी तरह उस शिलाके शुभ अशुभ जाननेके लिये रात्रिके आरंभमें अशुभ निमित्तोंको विचारे ॥ ५३ ॥ स्नान करके एकांत शुद्ध स्थानमें शुभ गंध द्रव्यको हाथपर लगाके सिद्धभक्ति पढकर इस आगे कहे जानेवाले मंत्रश्लोकका मनमें ध्यानकरे ॥ ५४ ॥ वह इस प्रकार है—ओं जिनेंद्र देवको नमस्कार है ओं महाश्रमण केवली परमेष्ठि तुमको नमस्कार है। [illegible] शरीरवाली हे देवी मुझे स्वप्नमें शुभ अशुभ कार्यको कह। इस विधमंत्रसे उस शिलाको शुभ (कल्याण-

१ ओं ह्रीं [illegible] स्वाहा । शोधनमंत्रः । ओं हुं फट् स्वाहा इति खननमंत्रः ।

स्वप्ने मे देवि दिव्यांगे ब्रूहि कार्यं शुभाशुभम् । अनेन दिव्यमंत्रेण शुभां ज्ञात्वा नयेच्च ताम्५६
प्रातस्तत्र पुनर्गत्वा कृत्वा प्राग्वाद्विधिं रथे । सप्तकृत्वोऽभिमंत्र्याधिरोपितां तां प्रचालयेत् ॥५७॥
यथा कोटिशिला पूर्वं चालिता सर्वविष्णुभिः । चालयामि तथोत्तिष्ठ शीघ्रं चल महाशिले॥५८॥

इति शिलाभिमंत्रणमंत्रः ।

जिनालयं परीत्य त्रिःप्रवेश्यात्युत्सवेन ताम् । स्नाप्ति सिक्त्वा स्वौषधीभिःसिद्धशांतिस्तुती भजेत्
क्रमो यथार्हं योज्योऽयं दारुधात्वादिनापि च । निर्मापयिष्यमाणेऽर्हद्विंवे सिद्धेथवाऽऽगते ॥६०॥

इति शिलानयनविधानम् ।

कारिणी) जानकर लाना चाहिये ॥ ५५ । ५६ ॥ प्रातः कालके समय रथको लेजाकर वहां पूजनादिविधि करके सातवार उस शिलाको अनादि सिद्ध मंत्रसे मंत्रित करे। फिर उसको वहांसे आगे कहे हुए मंत्रको पढकर उठावे ॥ ५७ ॥ हे महाशिले ! जिस तरह लक्ष्मण कृष्ण आदि नौ नारायणोंने कोटि (करोडमन वजनवाली) शिला पूर्वसमयमें उठाई थी । उसी तरह मैं भी तुझे मूर्ति वनवानेके लिये उठाता हूं। सो तू जल्दी उठ ,, ऐसा मंत्र कहकर उस शिलाको उठाके रथमें विराजमान करे ॥ ५८ ॥ इस प्रकार शिलाभिमंत्रण मंत्र कहा । वहांसे उत्सवके साथ जिनमंदिरमें लावे और उसकी तीन प्रदक्षिणा देकर शुभ दिनमें उत्तम औषधियोंसे शिलाको धोकर मंदिरमें रक्खे उसके वाद सिद्धस्तुति शांति विधान करे ॥ ५९ ॥ जैसा क्रम (विधि)

तुष्टो शान्तिकं कृत्वा सत्कृत्य शिल्पिनम् । तां [illegible] ॥ ६० ॥
[illegible] मुनिः पूर्णाङ्गो निपुणः [illegible] ॥ ६२ ॥
शान्तप्रसन्नमध्यस्थनासाग्रस्थाविकारदृक् । संपूर्णभावरूपानुविद्धाङ्गं लक्षणान्वितम् ॥ ६३ ॥
रौद्रादिदोषनिर्मुक्तं प्रातिहार्याङ्कयक्षयुक् । निर्माप्य विधिना पीठे जिनबिंबं निवेशयेत् ॥ ६४ ॥

पत्थरकी शिलाका कारण कहा है वैसा ही काष्ठ और धातु वगैरहके प्रतिबिंब व शिलाओंमें सुधार करानेसे न सुधार होके दूसरे स्थानमें आंके चुप [illegible] । [illegible] शिला वगैरहके लानेका विधान पूर्ण हुआ ॥ ६० ॥ उसके बाद शुभलग्नमें शांति विधान करके चतुर कारीगरको आदरपूर्वक लाकर जिनबिंब तयार करानेके लिये शिलाको [illegible] ॥ ६१ ॥ जो अच्छी शिक्षावाला हो शिल्प शास्त्रको जाननेवाला, मदिरा मांस आदि निंद्य वस्तुओंका त्यागी हो, मन वचन कायसे शुद्ध हो शरीरके अवयवोंसे पूर्ण हो चतुर हो क्षमा आदि गुणोंवाला हो वह शिल्पी जिन प्रतिमाके बनाने योग्य कहा गया है ॥ ६२ ॥ जो शांत, प्रसन्न, मध्यस्थ, नासाग्रस्थित अविकारी दृष्टिवाली हो जिसका अंग वीतरागपनेसे सहित हो अनुपम वर्ण हो और शुभ लक्षणों सहित हो । रौद्र आदि बारह

1 [illegible]
[illegible] रौद्र, कृशांग, संक्षिप्ताङ्ग, चिपिटनासिक, विरूपनेत्र, हीनमुख, महोदर, महाहृदय, महांश, महाकटी, हीनजंघा, शुष्कजंघा—ये दोष हैं ।

स्थापितस्याचलस्थाने पीठस्याक्षूणलक्ष्मणः । नयेत्समीपं प्रतिमां तत्रारोपयितुं स्थिराम् ६५
सौवर्णं राजतं ताम्रं शैलं वा चतुरस्रकम् । रम्यं पत्रं विनिर्माप्य सदलं मसृणं तथा ॥६६॥
तिर्यगूर्ध्वाष्टरेखाभिर्वज्राग्राभिः समालिखेत् । मंडलं त्र्येकपंचाशत्कोष्टकं श्लक्ष्णरेखकम्॥६७॥
अकारादि हकारांतं कोष्टेष्वेकैकमक्षरम्। वाह्यकोणस्थितात्कोष्टात् प्रादक्षिण्येन संलिखेत् ॥६८॥
मध्यमे कोष्ठके तत्र हंकारं सोर्ध्वरेफकम् । जयादिदेवताधिष्टपत्रपद्मस्य मध्यगम् ॥ ६९ ॥
वज्राग्रे प्रणवं दद्यात्कामबीजं तदंतरे । त्रिर्मायामात्रयावेष्ट्य निरुंध्यादंकुशेन तु ॥ ७० ॥

दोषोंसे रहित हो अशोक वृक्षादि प्रातिहार्योंसे युक्त हो और दोनों तरफ यक्ष यक्षीसे वेष्टित हो ऐसी जिन प्रतिमाको बनवाकर विधि सहित सिंहासनपर विराजमान करे ॥ ६३ । ६४ ॥ वह विधि इसतरह है कि निश्चल स्थानमें रखे हुए सिंहासनके ऊपर निर्दोष लक्षणवाली प्रतिमाको स्थिर रूपसे विराजमान करे ॥ ६५ ॥ फिर सोना चांदी तांबा पत्थर–इनमेंसे किसी एकका चौकोन चिकना पत्र बनवावे उसपर सीधी तिरछी अग्रभागमें वज्र चिन्हवाली आठलकीरें खींचे उसमें उनचास कोठोंवाला सीधी रेखाओंकर युक्त एक मंडल खींचे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उन कोठोंमें अकारसे लेकर हकारतक एक एक अक्षरको लिखे ॥ ६८ ॥ बीचके कोठेमें ' हं ' लिखकर उसके चारों तरफ आठदलका कमल बनावे उसमें जया आदि आठ देवताओंका स्थापन करे ॥ ६९ ॥ वज्रके अगाडीके भागमें ' ओं ' लिखे दो वज्रोंके मध्यमें ' ह्रीं ' लिखे और ईकारसे तीनवार चारों तरफसे घेरकर ' क्रों ' इस अंकु

एवं विलिख्य संस्नाप्य यंत्रं अंगेन चांभसा । सुगंधिकुसुमैर्येन चंदनेनानुलेपयेत् ॥७१॥
सम्पूज्याक्षतनैवेद्यदीपधूपफलैर्यजेत् । सुगंधिकुसुमैस्तत्र जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ७२ ॥
संजप्य मातृकावर्णपाठ्यसंचेण [illegible] नमः । ओं नमोऽर्हते ह्रीं श्रीं क्लीं स्वाहेति मन्त्रवित् ॥७३॥
एवमन्त्रं न कस्मै चिद् दीयते येन मन्त्रितम् । कर्पूरं कुंकुमं चैव पात्रं स्वर्णमयं तु ॥ ७४ ॥
शिलातलसमारोप्य प्रतिष्ठां स्थापयेन्नरः । सिंहासनस्थितविम्बे लिखेन्मंत्रं च शोभनं ॥ ७५ ॥

[illegible] ॥ ७० ॥ इस प्रकार यंत्रको लिखकर सुगंधित जलसे पुष्प इ । और जलसे यंत्रका अभिषेक कर चंदनका लेप करे ॥ ७१ ॥ अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल—इन आठ द्रव्योंसे यंत्रकी पूजा करे और सुगंध वाले चमेली आदिके फूलोंसे एकसौ आठवार आगे कहे जाने वाले मंत्रका जाप करे ॥ ७२ ॥ यह मंत्र इस तरह है कि " ओं नमो र्हं " इस पदको पहले रखकर बीचमें अकारादि वर्ण मालाके अक्षरोंको और अन्तमें "श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा" इस पदको रखे—तब " ओं नमो र्हं अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा " ऐसा जपनेका मंत्र हुआ ॥ ७३ ॥ इस मंत्रके पढ़नेसे लिखा हुआ जो कमल है उसे लिये हुए चंदनसे सिंहासनपर भी लिखे और कपूर कुंकुम चंदन द्वारा पोंछकर·

१ ओं नमोऽर्हते अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः । क ख ग घ ङ । च छ ज झ ञ । ट ठ ड ढ ण । त थ द ध न । प फ ब भ म । य र ल व । श ष स ह श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा ॥ इति मन्त्रोऽयं ॥

स्थापयेदर्हतां छत्रत्रयाशोकमकीर्णकम् । पीठं भामंडलं भाषां पुष्पवृष्टिं च दुंदुभिम् ॥ ७६ ॥
स्थिरेतरार्चयोः पादपीठस्याधो यथायथम् । लांछनं दक्षिणे पार्श्वे यक्षं यक्षीं च वामके॥७७॥
गौर्गजोश्वः कपिः कोकः कमलं स्वस्तिकः शशी । मकरः श्रीद्रुमो गंडो महिषः कोलसेधिकौ ॥७८
वज्रं मृगोऽजष्टगरं कलशः कूर्म उत्पलम् । शंखो नागाधिपः सिंहो लांछनान्यर्हतां क्रमात् ७९
सितौ चंद्रांकसुविधी श्यामलौ नेमिसुव्रतौ । पद्मप्रभसुपूज्यौ च रक्तौ मरकतप्रभौ ॥ ८० ॥

हके रत्न उसमें डाले ऊपर छत्र लगावे तब प्रतिमाको सिंहासनपर विराजमान करे । यह विधि प्रतिष्ठाके निर्विघ्न समाप्तिकेलिये कही गई है । सो इसे शुभदिन और शुभ लग्नमें करे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इसप्रकार वेदीपर सिंहासनमें प्रतिमा विराजमान करनेकी विधि पूर्ण हुई । फिर अर्हंत प्रतिमाको तीन छत्र दो चमर अशोक वृक्ष दुंदुभी वाजा सिंहासन भामंडल दिव्य भाषा पुष्पवर्षा—इन आठ प्रातिहार्योंसे शोभित करे ॥७६॥ उसके बाद स्थिर और चल दोनों प्रतिमाओंमें सिंहासनके नीचे जैसा शास्त्रमें कहा है वैसे ही सीधी बाजूमें भगवानके चिन्हको और बाईं तरफ यक्ष और यक्षीको खडा करे ॥ ७७ ॥ अर्हंतोंके शरीरके चिन्ह क्रमसे बैल १ हाथी २ घोडा ३ बंदर ४ चकवा ५ कमल ६ साथिया ७ चंद्रमा ८ मगर ९ श्रीवृक्ष १० गेंडा ११ भैंसा १२ सूअर १३ सेही १४ वज्र १५ हरिण १६ बकरा १७ मच्छ१८कलश१९कछुआ २० कमलकी पांखुरी २१ शंख २२ सर्प २३ सिंह २४—ये चौवीस हैं । इनमेंसे जिस भगवानका जो चिन्ह हैं उसे सिंहासनके नीचे भागमें खुदाना चाहिये ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ऋष-

सुपार्श्वपार्श्वौ स्वर्णाभान् शेषाश्चैत्यसद्मसु। न विसर्जयेत् तत्र प्रतिमां स्वगृहे चैत्ये ॥ ८१
स्थिरां स्थाने निवेश्यानां नवां वा वासमंडपे। प्रतिष्ठाप्यं यथाविधि स्थापयेत् ॥ यथाविधि ८२
नाना शिल्पिनिष्कृता योगिनां प्राक् प्रतिष्ठिता पूर्वविम्बं वा नवं वा प्रतिष्ठितम् ॥८३॥

भावि चौबीसों तीर्थंकरोंका रंग क्रमसे कहते हैं—चंद्रप्रभ, पुष्पदंत ये दोनों सफेद रंगके हैं, नेमिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ-ये काले रंगवाले हैं। पद्मप्रभु, वासुपूज्य इनका लाल रंग है। सुपार्श्व पार्श्वनाथ-नीले रंगवाले हैं और बाकी बचे हुए सोलह तीर्थंकरोंका शरीर सुवर्ण जैसा पीले रंगवाला है। अपने घरके चैत्यालयमें एक बिलस्तसे अधिक परिमाणवाली प्रतिमा नहीं रखे जैनमंदिरमें ही स्थापन करवावे ॥ ८० ॥ ८१॥ स्थिर प्रतिमाको अपने पूजनस्थानमें चलप्रतिमाको वासमंडपमें स्थापन करे और यजमान विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करे ॥ ८२ ॥ ऐसी प्रतिमा प्रतिष्ठायोग्य नहीं है कि जो पहले की प्रतिष्ठित हो, शिल्पियोंके सिवाय दूसरा आकार हो, परन्तु शिर आदि आकार बना हो फिर लोगोंने उसका आकार किया गया हो, अथवा उसके आकारमें संकुल हो कि विनाशित है या दूसरा आकार है, और बिलकुल जीर्ण होगई हो ॥ ८३ ॥

१ [illegible]

[illegible]

२ [illegible]

श्रुतेन सम्यग्ज्ञातस्य व्यवहारप्रसिद्धये। स्थाप्यस्य कृतनाम्नोंतःस्फुरतो न्यासगोचरे ॥ ८४ ॥
साकारे वा निराकारे विधिना यो विधीयते।न्यासस्तदिदमित्युक्त्वा प्रतिष्ठा स्थापना च सा॥८५

इति प्रतिष्ठालक्षणम् ।

स्थाप्यं धर्मानुबंधांगं गुणी गौणगुणोथवा। गुणो गौणगुणी तत्र जिनाद्यन्यतमो गुणी ॥ ८६ ॥
गुणो निःस्वेदतादिः स्याद्बाह्यो ज्ञानादिरांतरः। सोऽर्हतां पंचकल्याणद्वारेणादौ प्रपंच्यते॥८७॥
गर्भावतारजन्माभिषेकनिष्क्रमणोत्सवान्। वृत्तान् ज्ञानशिवोद्धर्पौ भाव्यौ विंवेर्हतोर्पयेत्॥८८॥
कल्याणे प्रथमे श्रेदी रत्नवृष्टिस्तथोपदा। मातुःश्र्यादिकृतागर्भशोधनादिरुपासना ॥ ८९ ॥

जिसकी स्थापना करना हो उसका स्वरूप शास्त्रसे अच्छीतरह जानकर व्यवहारमें प्रसिद्धिकेलिये पाषाण आदिमें उसके गुणोंके स्मरण करनेको नाम रखना। चाहें वह उसी तरहके आकारवाली मूर्ति हो। या निराकार हो उसे ही प्रतिष्ठा अथवा स्थापना कहते हैं॥८४॥ ॥ ८५ ॥ जिसकी स्थापना की जावे वह गुणी धर्मका कारण हो। उसमें भी अर्हतके गुण बाह्य निःस्वेदता (पसेव रहितपना) आदि हों तथा अंतरंग ज्ञानादि हों। इसी तरह जिसकी मूर्ति हो उसमें उसीके गुणोंकी स्थापना करनी चाहिये। यहांपर सबसे पहले तीर्थंकर प्रभुकी पंचकल्याणकोंके द्वारा प्रतिष्ठाविधि वर्णन करते हैं॥८६।८७॥ गर्भावतरण, जन्माभिषेक, तपकल्याणक ज्ञानकल्याणक, और मोक्षकल्याणक—ये पंचकल्याणक अर्हतकी प्रतिमामें स्थापनकरे। अर्थात् अप्रतिष्ठित अर्हंत प्रतिमाके पांचों कल्याणउत्सव विधिपूर्वक करे॥ ८८ ॥ पहले गर्भा-

म० आ० ॥ १० ॥

स्वमानंदानुवंशश्च प्रभूणोनैर्भवेत्तव । स्वमातृप्योरने मातुस्वकृष्यवर्णं यथा ॥ १० ॥
गर्भशोधनशुश्रूषा देवीभिर्गर्भसंभवः । ज्ञानत्रयत्वः पितोः स्यात्सानंदैर्गर्भक्रिया ॥ ११ ॥
द्वितीये स जगत्स्वामानंदं जन्म जिनेशिनः । निःस्वेदत्वादिनिजता विजयासर्वगोद्भवं ॥ १२॥
ततस्तूपासनाजातकर्मणो निद्राणयः । सत्याद्वीतोर्विनं तन्तुः सुमेरौ नयनं गुरोः ॥ १३ ॥
स्नपनं नर्तनं भूषा नामकर्म स्तवक्रिया । नृत्यं नगरानयनं राजाङ्गणनिवेशनम् ॥ १४ ॥
संनिधापनमंबायाः स्तुतिः नाभूनर्तनं । रक्षादिकं राज्यभोगभुक्तिःस्यात्सैद्रक्रिया ॥ १५ ॥

अनन्तर कल्याणकर्म कुबेरकृत रत्नोंकी वर्षा, देवियोंसे की गई माताकी सेवा, श्री आदि पट कुमारिका देवियोंसे की गई गर्भशोधना, स्वर्गके रत्नोंके गार दलिके पास फल सुनना उनके सुननेसे माताको आनंद, होनेवाले तीर्थंकरका गर्भमें आना और देवकर कीगई माता पिताकी पूजा—इतनी क्रियायें करनी चाहिये ॥ ८९,१९०।१९१ ॥ दूसरे कल्याणकमें—ग्रार्भमें शोन होना आनंद होना, जिनेन्द्र तीर्थंकरका जन्म होना, निःस्वेदता आदि जन्मके दश अतिशयोंका प्रगट होना, विजया आदि देवियोंकर माताकी सेवा जातकर्म संस्कार देवोंका आना, इंद्राणीकर भगवान बालकको इंद्रकी गोदमें सौंपना, भगवान बालकको सुमेरु पर्वतपर लेजाना ॥ ९२।९३ ॥ वहां देवोंकर स्नान कराना, आभूषण पहराना, नाम रखना, प्रभुकी स्तुति करना, नृत्य करना नगरमें लाना राजमहलके आंगनमें पहुंचना माताको बालक सपुर्द करना फिर इंद्रका नृत्य करना प्रभुकी सेवाकेलिये देवोंको छोड

स्थाप्यस्तृतीये निर्वेदस्तत्प्रशंसा सुरर्षिभिः। दीक्षावृक्षाः सुरैः स्नानाद्युपकारो वनायनम् ९६
दीक्षाग्रहणमिंद्रेण केशमर्त्येपणादिकम्। वस्त्रादित्यजनं ज्ञानचतुष्कोद्भासनं क्रिया ॥ ९७॥
कार्या कल्याणसंस्कारमालामंत्राधिरोपणम्। प्रियंगु सज्जनादीनि तिलकं चाधिवासना ९८
श्रीमुखोद्घाटनं तुर्ये नेत्रोन्मीलनमर्हतः। स्थाप्याश्चांतर्गुणा घातिक्षयजातिशयास्तथा ॥ ९९ ॥
आस्थानमंडलं देवोपनीतातिशयाः पुनः। प्रतिहार्याष्टकं चिह्नं यक्षः शासनदेवता ॥१००॥
कल्याणपंचकारोपव्यक्तिः कंकणमोक्षणम्। सा जाद्धावक्रातिःकृत्या महार्घस्यावतारणम्१०१

जाना प्रभुको राज्य भोगना—ये सब विधियां करनी चाहिये ॥ ९४।९५ ॥ तीसरे कल्याणकमें भगवानको वैराग्य होना, लौकांतिक देवोंकर स्तुति, दीक्षावृक्ष, देवताओंकर कराया गया स्नान, पालकीमें बिठाके वनको लेजाना, भगवानकर स्वयं दीक्षाग्रहण, इंद्रकर लुंचितकेशोंको रत्नपिटारीमें रखके क्षीरसमुद्रमें क्षेपण करना वस्त्रादित्याग, चौथे (मनःपर्यय) ज्ञानका प्रगट होना ॥ ९६ । ९७ ॥ अडतालीस मालामंत्रोंका जाप करना इत्यादि ॥ ९८ ॥ चौथे कल्याणकमें—भगवानके मुखका उघाडना नेत्रोन्मीलनक्रिया घातिया कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न हुए अनंत ज्ञानादिगुणोंका स्थापन समवशरण बनाना तथा अशोक वृक्षादि अतिशयोंका प्रगट करना आठ प्रातिहार्य यक्ष शासनदेवता–इनको समीप रखना महान अर्घ देना दिव्यध्वनि होना–इत्यादि क्रिया करनी चाहिये ॥ ९९ ॥ ॥ १००।१०१ ॥ पांचवें कल्याणकमें–आठ पत्रोंमें आठ गुणोंको लिखके और पूजके मोक्ष-

ततः कल्याणक्रिया चान्ते [illegible] गुणानारोपयेत्तु [illegible]
[illegible] कार्या [illegible] । [illegible] ॥१०३॥
प्रतिष्ठोक्तविधिं सम्यग्विधायारोपयेद् ध्वजम् [illegible] ॥१०४॥
स्थाप्यं तु सिद्धानां सम्यक्त्वाद्यष्टगुणकम् [illegible] ॥१०५॥
सर्वज्ञवक्त्रनिर्यातानेकान्तात्मार्थसार्थवत् । [illegible] ॥ १०६ ॥

क्रिया करनी चाहिये ॥ १०२ ॥ फिर जलयात्राका उत्सव करके प्रभुका अभिषेक करे फिर देवताओंका विसर्जन करके संघपतिको आशीर्वाद देना ध्वजाका चढ़ाना और आये हुए सब सज्जनोंसे क्षमापनी करना ॥ १०३ ॥ इस तरह प्रतिष्ठाशास्त्रमें कही विधिको अच्छी तरह करके जिन मंदिरके ऊपर ध्वजा चढ़ावे। उस ध्वजासे जिन मंदिरकी एक तो शोभा होती है दूसरे राजा प्रजा सबका कल्याण होता है ॥ १०४ ॥ इसप्रकार अर्हत प्रतिमाकी विधि संक्षेपसे कही गई। इसका विस्तार आगे कहेंगे। अब सिद्ध आदिकी मूर्तिकी प्रतिष्ठाका विधान कहते हैं-सिद्धोंकी प्रतिमामें सम्यक्त्व आदि आठ गुणोंका स्थापन करे और बाकी आचार्य आदि परमेष्ठियोंकी प्रतिमामें विधिपूर्वक अपने २ मंत्रसे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र इन तीन रत्नोंका स्थापन करे ॥ १०५ ॥ सर्वज्ञके मुखकमलसे निकली हुई, गणधरोंकर प्रगट किया गया है अनेकांत स्वरूप पदार्थोंका समूह

१ शांति मांगलिक [illegible] भगवानके आगे [illegible] पढ़ना।

अनंतार्थाक्षरात्मानं पुस्तकार्थमनुस्मरन् । संशोध्य पुस्तकं तच्च वाग्मंत्रेण प्रतिष्ठयेत्॥१०७॥
ध्यात्वा यथास्वं गुर्वादीन्न्यस्येत्तत्पादुकायुगे।निषेधिकायां संन्याससमाधिमरणादि च १०८
यक्षादिप्रतिबिंबेषु यंत्रं प्रार्च्यं च विन्यसेत्।ग्रहे तार्कोदये ध्यायन् जात्यादीन् यक्षकर्दमम्१०९
सिद्धचक्रादिपत्रादिप्रतिष्ठाप्येवमूह्यताम् । ग्राह्यः प्राणो ग्रहश्चेंदोः शांते क्रूरे च भास्वतः ॥११०॥

इति प्रतिष्ठेयलक्षणम् ।

जिसका ऐसी सरस्वती देवीकी पूजामें अंग, पूर्व (चौदह पूर्व) प्रकीर्णक (बाह्य अंग) स्वरूप अनंत अर्थ अक्षर स्वरूप शास्त्राकार रचना कराके और उस शास्त्रको सुधवाके सरस्वतीमंत्रसे उसकी प्रतिष्ठा करे । यह शास्त्रप्रतिष्ठा हुई ॥ १०६।१०७ ॥ अब गुरुकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा विधि कहते हैं;—निर्ग्रंथादि गुरुओंका ध्यान करके और उनके संन्यास (समाधि) मरणकी छतरी (एक तरहका मठ) बनवाके उनके चरण युगल (दो) बनावे ॥१०८॥यक्षादि प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठामें पंचवर्णके चूर्णसे लिखे यंत्रको सूर्योदयमें चमेली आदिके पुष्पोंसे पूजे और ध्यावे ॥१०९॥ पत्रपर लिखे हुए सिद्धचक्र यंत्र तथा आदि शब्दसे जंबूद्वीप त्रैलोक्य श्रुतस्कंध नंदीश्वर आदि लिखे यंत्रोंकी भी प्रतिष्ठा इसी तरह जानना चाहिये।

---

१ कर्पूरमगुरुश्चैव कस्तूरी चंदनं तथा । कंकोलं च भवेदेभिः पंचभिर्यक्षकर्दमम् ॥ २ अनावृतादि यक्ष पद्मावती की प्रतिमा । ३. कपूर अगुरु कस्तूरी चंदन कंकोल-इन पांचोंको पीसके बनाया गया चूर्ण ।

देशजातिकुलाचारैः श्रेष्ठो दक्षः सुलक्षणः। त्यागी वाग्मी शुचिः शुद्धसम्यक्त्वः सद्व्रतो युवा॥११॥
श्रावकाध्ययनज्योतिर्वास्तुशास्त्रपुराणवित्। निश्चयव्यवहारज्ञः प्रतिष्ठाविधिवित्प्रभुः॥१२॥
विनीतः सुभगो मंदकषायो विजितेंद्रियः। जिनेज्यादिक्रियानिष्ठो भूरिसंबंधबांधवः॥१३॥

शांत देवताकी प्रतिष्ठामें चंद्रनाड़ (बांया नाकका स्वर) लेना और क्रूर देवताओंकी प्रतिष्ठामें सूर्यनाड़ (सीधा नाकका स्वर) लेना। चंद्रनाड़ और सूर्यनाड़को ही वामनाडी, दक्षिण नाडी कहते हैं ॥१०॥ इसप्रकार प्रतिष्ठाविधानका लक्षण कहा। अब प्रतिष्ठा करनेवाले प्रतिष्ठाचार्यका लक्षण कहते हैं-प्रतिष्ठा करनेवालेको कैसा होना चाहिये। सो कैसा होवे यह कहते हैं। जिन धर्मकी प्रभावनावाले देशमें उत्पन्न हुआ हो, मातापिता और कुलाचार ये तीनों जिसके उत्तम हों, शास्त्राचार लोकाचार दोनोंको पालने वाला हो, बुद्धि या शरीर ज्ञानमें चतुर हो, सामुद्रिक शास्त्रमें कहे गये शरीरके शुभ चिह्नोंवाला हो, दानी हो। मिष्ट बोलनेवाला, मन वचन कायसे शुद्ध, निर्दोष सम्यक्त्ववाला, निर्दोष पांच अणुव्रत पालनेवाला और सोलह वर्षसे अधिक उमरवाला जवान होय ॥११॥ श्रावकाचार, चंद्रप्रज्ञप्ति आदि ज्योतिषशास्त्र, दशकृतावधू-लिकामें कहेगये महल आदि बनानेके विधानवाले शिल्पशास्त्र और पुराण(इतिहास) शास्त्रोंका जाननेवाला हो, निश्चयनय व्यवहारनय दोनोंको जाननेवाला, प्रतिष्ठा विधिका जाननेवाला और समर्थ हो ॥१२॥ आगे नम्र विद्या कुलाचारादिमें अधिक जनोंकी विनय करनेवाला, सबको

१ सौम्ये देवः शुभे वामे सौम्ये दक्षे नरात्रये। पूर्णस्वरस्थाने ये भवन्ति प्रतिष्ठितः॥

दृष्टसृष्टक्रियो वार्तः संपूर्णांगः परार्थकृत्। वर्णी गृही वा सद्वृत्तिरशूद्रो याजको धुराट्॥११४॥
गुणिनोऽप्यगुणे व्यर्था गुणवत्यगुणा अपि। याजकेऽन्ये कृतार्थाः स्युस्तन्मृग्योसौ स्फुरद्गुणः ११५

प्यारा, मंद क्रोध मान माया लोभरूप कषायोंवाला अर्थात् शांत स्वभाववाला, खोटे विषयोंसे इंद्रियोंको रोकनेवाला जितेंद्री, जिनपूजा आदि छह आवश्यक गृहस्थके कर्मोंका करनेवाला, दृढ प्रतिज्ञावाला महान् धनवान् बहुत कुटुंबवाला हो ॥ ११३ ॥ जिसने प्रतिष्ठाविधि जाननेवालोंसे कराई गई प्रतिष्ठा देखी हो अथवा आप अपने हाथसे की हो, शिल्प आदि विद्यासे जीविका नहीं करनेवाला, हीन अधिक शरीरके अवयवोंसे रहित संपूर्ण अंगवाला हो, उत्तम प्रयोजन अथवा पराया उपकार करनेवाला हो, आठमूल गुण और बारह उत्तर गुणवाला पहले–ब्रह्मचर्य आश्रमवाला हो या गृहस्थाश्रमवाला हो, ग्रहणकरने योग्य वस्तुको ग्रहण करनेवाला सदाचारी हो शूद्र वर्ण न हो ब्राह्मणादि तीन उत्तम वर्णोंका धारक हो ॥ ऐसा प्रतिष्ठा करनेवाला इंद्रसमान प्रतिष्ठाचार्य कहा गया है ॥ ११४ ॥ प्रतिष्ठाविधि करनेवाला आचार्य यदि अपने पूर्वोक्त गुणसहित न हो तो गुणवान् यजमानका भी सर्व नाश कर देता है और पूर्वोक्तगुणोंवाला हो तो गुणरहित–निर्गुणी, प्रतिष्ठामें धन खर्च करनेवाले यजमानको भी कृतार्थ करदेता है–उसके प्रयोजनोंको सिद्ध करदेता है। इसलिए

१. वानप्रस्थ और भिक्षुको प्रतिष्ठा करानेका निषेध है दूसरी जगह ऐसा भी कहा है कि चौथी प्रतिमासे आठवीं प्रतिमा तक पांच प्रतिमावालोंमें कोई हो वही अधिकारी है।

पाक्षिकाचारसंपन्नो धीसंपद्बन्धुबन्धुरः । राजमान्यो वदान्यश्च यजमानो मतः प्रभुः ॥ १६ ॥
ऐदंयुगीनश्रुतधृद्धुरीणो गणपालकः । पञ्चाचारपरो दीक्षाप्रवेशनायको गुरुः ॥ १७ ॥

इति इन्द्रादिलक्षणम् ।

निश्चित्य लग्नमासन्नं दिनेषु त्रिचतुरेषु प्रतिष्ठायां [illegible] नयेत् ॥ १८ ॥

प्रतिष्ठाचार्य उक्त गुणोंवाला होना चाहिये और उसीसे प्रतिष्ठा कराना चाहिये अयोग्यसे कभी नहीं कराना ॥ १५ ॥ अब प्रतिष्ठामें धन खर्चनेवाले यजमानका लक्षण कहते हैं— पांच पाप तीन मदिरा आदि मकार–इन आठोंका त्यागरूप अष्टमूलगुण स्वरूप पाक्षिक आचारका धारण करनेवाला हो ज्ञानसंपत्ति सहित हो बंधुजन और कुटुंबी जिसके अधिकारमें हों लोकमान्य हो राजासे जिसने सम्मान (इज्जत) पाया हो उदार चित्तवाला दानी हो–ऐसा यजमान होना चाहिये ॥ १६ ॥ अब दीक्षा देनेवाले आचार्यका स्वरूप कहते हैं—व्यवहार शास्त्रको जानने वाला, श्रुतज्ञानियोंमें मुख्य, साधुसंघका पालनेवाला दर्शनाचार आदि पांच आचारोंके पालनेमें लीन–ऐसा आचार्य यजमान और प्रतिष्ठाचार्यको इस प्रतिष्ठा करानेकी दीक्षा देनेवाला गुरु कहा गया है ॥ १७ ॥ इस प्रकार इंद्र (प्रतिष्ठाचार्य) यजमान (प्रतिष्ठामें धन खर्चनेवाला) और इस प्रतिष्ठाकार्य करनेकी दीक्षा देनेवाले आचार्यका

१ त्रिचतुर् [illegible] परीक्षितः ।

पुरोगाक्षतपात्रोद्धयोपित्साधर्मिकान्वितः।गत्वा गृहं महेंद्रस्य नत्वेदं पौर्तिको वदेत् ।११९।
न्यायेनोपार्ज्य संरक्ष्य संवर्ध्यार्हन्महे धनम् ।विनियुज्य परं श्रेयः प्राप्तुमिच्छामि संप्रति १२०
क्वैतच्च सुमहत्साध्यं क्व चायं स्वल्पको जनः।तथाप्यत्र यते योग्या यदि स्युः सहकारिणः १२१
योग्यता चासकृद् दृष्टकर्मणा वोत्र गम्यते। किं परार्थैककार्यान् वः प्रत्यन्यद्वाच्यमस्त्यतः१२२

स्वरूप वर्णन किया। अब इंद्रप्रतिष्ठाकी विधि कहते हैं–प्रतिमा आदिकी प्रतिष्ठा करानेमें धन खर्च करनेवाला यजमान, प्रतिष्ठाके सात आठ दिन वाकी रहनेपर जल्दी आनेवाली शुभ लग्नका निश्चय करके प्रतिष्ठाकी विधि करानेकेलिये शुभ मुहूर्तमें प्रतिष्ठाचार्य–इंद्रके घरको वुलानेके लिये जावे ॥ ११८ ॥ उससमय ऐसे ठाठसे जावे कि स्त्रियां तो अक्षत भरे हुए पात्र हाथमें लिये गातीं हुई आगे जा रहीं हों और साथमें साधर्मी भाई हों। इसप्रकार यजमान प्रतिष्ठाचार्य–इंद्रके घर जाके उसे प्रणाम कर ऐसी प्रार्थना (वीनती) करे॥११९॥ हे जितेंद्रिय ! मैंने न्यायसे धन पैदाकर इकट्ठा किया है और उसकी अच्छीतरह रक्षा की है अब मैं उसे अर्हतविंव प्रतिष्ठाके उत्सवमें लगाकर उत्तम सुख प्राप्त करना चाहता हूं ॥ १२० ॥ कहां तो महान् कठिन यह कार्य और कहां तुच्छ शक्तिवाला मैं, सुमेरु सरसोंका सा फरक है तौ भी आप सरीखे योग्य सत्पुरुष सहायक मिल जांयगे तो वांछित कार्य अवश्य सिद्ध हो जाइगा ॥ १२१ ॥ आपका कईवार यह प्रतिष्ठाकार्य देखा

१ वापीकूपतडागदेवतागृहअन्नपानआराम इत्यादिकं पूर्तं तत्र नियुक्तः पौर्तिकः यजमानः।

इत्यभ्यर्थनया कार्यमंगीकार्यं तमानयेत् । स्वगेहेऽथ चतुष्कोणस्तम्भसंश्रितमंडपे ॥ १२३ ॥
चतुष्के रक्तसद्वस्त्रमस्त्यादिसमुपिष्टरे । उपवेश्य नन्द्यावर्तमंगीतवाद्यैः ॥ १२४ ॥
कन्याभी रक्तवस्त्रस्रगाभूषाकाश्मीरचन्दनैः । पुरन्ध्रीभिश्च सत्कृत्य चंदनं तस्य चार्पयेत् ॥ १२५ ॥
ततः स नेत्रपानीय पीतोद्वर्तनपूर्वकम् । तैलमाघ्राय जिनाद्याशीर्वादमाकुलम् ॥ १२६ ॥
पीततैलापोहं तैलं परिषिच्य सुगन्धिभिः । सुधौतवस्त्राभूषास्रक्चन्दनाद्यैः ॥ १२७ ॥

जाना हुआ है इसलिये आपकी तो प्रार्थना बहुत अच्छी है । दूसरी बात यह है कि आप दूसरोंका वांछित प्रयोजन सिद्ध कर देते हैं इसलिये हम आपको अधिक क्या कह सकते हैं ॥ १२२ ॥ ऐसी प्रार्थना करके प्रतिष्ठाचार्य करनेकी स्वीकारता (मंजूरी) कराके प्रतिष्ठाचार्य (इंद्र) को अपने घर लावे । वहां चौकी बिछाकर उसपर सिंहासन रक्खे और चौमुखी दीपक जलावे । सिंहासनपर लाल वस्त्र बिछावे उसपर इंद्रको बिठाकर गीत नृत्य बाजोंके साथ लाल वस्त्र माला आभूषण चंदनसे केशर सहित स्त्रियोंसे चंदन अंगपर लगवावे ॥ १२३।१२४।१२५ ॥ फिर जिन आदिकी आशीर्वाद बुलवाता हुआ उस इंद्रके अंगमें पीले उबटने सहित तैल लगवावे फिर पीछे कलिसे अंगका तैल दूरकर प्रासुक जलसे स्नान करावे । पुनः स्वादिष्ठ भोजन कराके आभूषण कपड़े चंदन माला आदिसे सजावे । पश्चात् सवारी सहित उस इंद्रको हाथी या घोड़ेपर चढ़ाकर जैनमंदिरमें लेजावे । उस समय 'निःसहि' ऐसा उच्चारण करके जिनमंदिरमें प्रवेश करे (घुसे) और

समर्तांद्रं तमारोप्य द्विपं चैत्यालयं नयेत् ।निसिहीत्युच्चरन्नेष तं प्रविश्य जिनेश्वरम्॥१२८॥
दर्शनस्तोत्रपाठेन ।त्रिःपरीत्य त्रिरानतः । कृतेर्यापथशुद्धिस्तं श्रुतं सूरिं समर्च्य च ॥ १२९ ॥
साधर्मिकैः परिवृतः सर्वसंघसमक्षतः । जिनाग्रे याजकतया सौधर्मेन्द्रोऽसि सोऽधुना ॥ १३० ॥
इत्युच्चैर्वदता दत्तान् समंत्रान् गुरुणाक्षतान् । स्वीकृत्यांजलिनोपांशु मंत्रमुच्चार्य नामितः १३१
स्वमूर्ध्नि विन्यसेत्सोऽहं सौधर्मेन्द्र इति ब्रुवन् । प्रतिपद्येत चाष्टाहं सैकभक्तं सुनिर्मलम् ॥ १३२ ॥
ब्रह्मचर्यं विविक्ते च सुप्यात्सद्भावनारतः। शलाकापुरुषाख्यानध्यानस्वाध्यायभाग्भवेत् १३३

जिनेंद्र देवकी दर्शन स्तुतिपाठ पूर्वक तीन परिक्रमा देवे और तीनवार नमस्कार करे। फिर ईर्यापथशुद्धि करके शास्त्र और आचार्यकी पूजाकर साधर्मियोंकर घिरा हुआ सब संघके आगे जिनेंद्रदेवके सामने पूजकपनेसे इंद्रको ऐसा कहो कि तुम अब सौधर्म इंद्र हो ऐसा ऊंचेस्वरसे बोले। उस समय इंद्र भी दीक्षागुरुसे दिये गये मंत्रित हुए अक्षतोंको अंजलिमें लेके फिर आप ओं ह्रीं आदि मंत्र पढके मैं वही सौधर्म इन्द्र हूं ऐसा कहता हुआ उन अक्षतोंको अपने मस्तकपर रखे ॥ १२६ । १२७ । १२८ । १२९ । १३० ॥ ॥ १३१ । १३२ ॥ वह इंद्र आठदिनतक एकवार भोजन करे, निर्दोष ब्रह्मचर्य पाले और श्रेष्ठ

१ ओं ह्रीं ऽर्हं असिआउसा णमो अरहंताणं अनावृतपराक्रमस्ते भवतु ह्रीं नमः स्वाहा । एष मंत्रो गुरुणा प्रयोज्यः ।
२ इंद्रेण पुनरयमेव ते स्थाने मे इति प्रयोज्यम् ।

सज्ञानिनोपकरणान्यानार्यः कार्यसिद्धये। कृत्वा शान्तिकयागं च सूरिर्मंडपादि कुर्यात् ॥१४३॥
खातेऽथ शोधिते पूर्णं समीकृत्य विधानवित्। भूपालेऽम्बु... ॥१४४॥
कुर्यात् मंडपं निर्वाणचतुरस्रं विधायकम्। ...॥ १४५ ॥
षोडशस्तंभ... ...। ...॥ १४६॥

उसके अनुसार ही संक्षेपसे अभिषेकविधि करनी चाहिये ॥ १४२ ॥ इसप्रकार देवकी प्रतिष्ठा-विधि समाप्त हुई। अब मंडप आदि बनानेकी विधि कहते हैं—प्रतिष्ठाचार्य सब सामग्री तयार करके मंडपादिकी निर्विघ्न रचना समाप्तिके लिये लघु वा बृहत् शांतिविधान करके मंडप वेदी आदिकी रचना करावे ॥ १४३ ॥ यह इसप्रकार है कि पहले तो जमीन खुदावे पीछे उसे शोधकर मट्टीसे भरके समतल करे फिर अपने प्रतिमाके संघोंमें लिखके। उसके बाद सुंदर—ऊपरसे सूना और आगेसे नहीं लगा हुआ ऐसा जो उदुंबर पीपल आदि वृक्षोंकी उसकी लकड़ीसे तथा पोसखेंवाले सबसे शुभ मुहूर्तमें मंडप तयार करावे और कमसे कम तीन हाथका मंडप होना चाहिये और एक हाथकी वेदी बननी चाहिये। यह संक्षेप विधि करनेमें जानना। और अधिक विधि करनी हो तो तीन तीन हाथ बढ़ाते जाना अर्थात् छह हाथका मंडप और दो हाथकी वेदी करना। इसप्रकार सबसे अधिक चौबीस हाथका मंडप और आठ हाथकी वेदी बनाना चाहिये। यह विस्तार विधि करनेके समय जानना ॥ १४४ ॥ ॥ १४५ ॥ उस मंडपमें मनुष्की पूजा और कलशके पूजके लिये हो, पूजा करे पत्तोंकी माला-

तोरणोदारसौंदर्यं नानारत्नांशुकांचितम् । प्रलंबिमुक्तालंबूषहारस्रक्तारिकोज्ज्वलम् ॥ १४७॥
चंदनच्छटया सिक्तं पुष्पप्रकरदंतुरम् । मुक्तास्वस्तिकविन्यासरंगावलिमनोहरम् ॥ १४८ ॥
कलशादर्शभृंगारयावारादिरमाकुलम् । संधूपधूमगंधांधभृंगझंकारकोमलम् ॥ १४९ ॥

इति मंडपनिर्मापणम् ।

पूते नवमतन्मध्यभागेऽर्हत्सवनांबुना । एकाद्यष्टांतहस्तासु नंदाद्याख्यासु वेदिपु ॥ १५० ॥

यें चकचकाट कर रही हों चार दरवाजे हों उन दरवाजोंके ऊपरकी चोटीपर चूनासे लेप किये गये आठ वड़े रक्खे गये हों ॥ १४६ ॥ वह मंडप शोभायमान वंदनवारोंसे रमणीक हो, माणिक्य आदि पांचरत्नोंसे जड़े हुए कपड़ेसे पूजित हो यानी जरी (सलमासितारा) के वने हुए चंदोएसे चमक रहा हो, मोतियोंके झूमका–हार–मालाओंसे तथा कांसे आदिकी वनी हुई घंटरियोंसे वहुत प्रकाशमान हो । घिसे हुए चंदनकी छींटोंसे युक्त, पुष्पोंसे शोभायमान, मोतियोंके सांतियोंकी रचनासे तथा अनेक रंगोंकी रचनाओंसे शोभित हो । कलश (घडा) दर्पण, झाडी, वोये हुए जौके अंकुर, छत्र चमर आदि सामग्रीसे सुंदर हो, काले अगर आदिकी वनी हुई दशांग धूपके धुंआंकी सुगंधीसे मस्त हुए भ्रमरोंकी झंकारध्वनीसे रमणीक होना चाहिये ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

इस प्रकार मंडप वनानेकी विधि समाप्त हुई ।

आगे वेदी वनानेकी विधि वतलाते हैं—अर्हतविंवके गंधोदकसे नौमा मंडपको

मध्यास्तभागेष्टिकाभिः कार्यो ध्यानस्य पाणिः। वेदीष्वाकाशसंज्ञासा चतुरेकादि द्विका॥१५१॥
शिलान्यासमदृश्यानां कृत्वा पंचादशुद्धयान। भाजन्मीष्टिकाभिर्नाक्ष्मानुगतेऽस्य वा ॥ १५२ ॥

इति वेदीविधानम्।

पूर्णकुंभोपयाचिन्युज्ज्वलनागकन्यया। संपातं सोऽस्य कृपाणां स्नानार्थं हारनदंता ॥१५३॥

इति वेदीस्नपनविधानम्।

मध्यका भाग पवित्र करके इसकी आठों दिशाओंमें गंगा १ सुनंदा २ यमुना ३ सरस्वती ४ मंगला ५ चंद्रा ६ पुंडरीका ७ देवगंगा ८—इन नाम आठ देवी तथा ... और चौड़ाई लेकर आठहाथ तक मंडपके अनुसार वर्दी ईंटोंसे बनवावे, चौड़ाईके समान ऊंचाई रक्खे, चौड़ाईसे छठे भाग ऊंचाई रक्खे तथा ईशानकोणमें कुछ नीची रक्खे—इस प्रकार वेदी बनवावे ॥ १५० ॥ १५१ ॥ पश्चात् शिला रखनेकी जगह पूजा करे और पांच कच्चे मट्टीके घड़े रक्खे ॥ वह पांच घड़े रखनेकी रीति परंपरासे जानना ॥ १५२ ॥ इस प्रकार वेदी बनानेकी विधि पूर्ण हुई। अब वेदीके धोनेकी विधि कहते हैं—वेदीके शिलादेकी गायों आदिकी पवित्र मट्टी, पूर्णकुंभ नहीं गिरा हुआ पवित्र गोबर और केसर आदि सुगंधी द्रव्योंका छालका बनाया काढ़ा—इन तीनोंको हाथमें लिये स्नान आभूषणोंसे प्रकार देवी कन्याओंसे उस वेदीको अनुवाद लगाकर और मंत्रपूर्वक जलसे छिड़कवाकर लिपवाना

१ ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः ... वेदीस्नपनविधिर्मन्त्रः।

त्रयोदशांगुलोत्सेधे तुर्यवेद्यास्तु कारयेत् । हस्तमात्राणि पीठानि दिक्ष्वन्यासां यथोचितम् १५४
प्राग्मंडपसमं वेदीकर्णिमात्राध्वसंगतम् । ईशानदिशि निर्माप्य मंडपं तत्र कारयेत् ॥ १५५ ॥
वेदीं तस्यैव चार्धेन त्रिभागेणाथवा मिताम् । भांडद्वास्तोरणाद्यैश्च भूपयेन्मूलवेदिवत् १५६

इति उत्तरवेदीनिवर्तनं ।

चाहिये ॥ १५३ ॥ ओं क्ष्रां इत्यादि टिप्पणीमें मंत्र देखलेना । इस प्रकार वेदी लेपनकी विधि जानना । ईशानकोणकी वेदीको छोड़कर सातवेदियोंके आगे तेरह २ अंगुल जमीन छोड़के पूर्वादि चारों दिशाओंमें जयादि आठ देवियोंके पूजनके लिये चार छोटीं वेदीं वनावे । और वीचकी वेदीसे ईशान दिशाकी तरफ छोटा मंडप वनवावे, और उस मंडपके तीसरे भाग प्रमाण उत्तर वेदी वनवावे और उसे मूलवेदीकी तरह ध्वजा छत्र तोरण आदिसे सजावे ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ इस तरह उत्तरवेदाकी रचना हुई । इसके वाद वह इंद्र स्वच्छ कपड़े माला आभूपण और चंदनका लेप–इन वस्तुओंसे सजा हुआ प्रतींद्र और प्रतिष्ठा करानेवाले दाताके साथ हाथी या घोड़ेकी सवारीपर चढ़के प्रतिष्ठाके पहले दिन सरोवर पर आवे । जिसके साथमें, श्रेष्ठ पत्तोंसे ढके हुए दूव दही अक्षतसे पूजित फलसे भरे हुए कंठमें मालायें डाले हुए मजबूत नवीन ऐसे घड़ोंको ऊपर रखनेवालीं सजीं हुईं प्रसन्नचित्त ऐसीं कुलीन स्त्रियां जा रहीं हो । और सव साधर्मी भाई तथा छत्र वाजे धुजा वगैरःसे घिरा हुआ जगतको आश्चर्य करता वह इंद्र शांतिके लिये जौ और सरसोंको मंत्रसे मंत्रित करके

[illegible] दिक्पंक्ति [illegible] । [illegible] ॥ १५७ ॥
[illegible] । [illegible] ॥ १५८ ॥
[illegible] सुवेणाभिः [illegible] । [illegible] ॥ १५९ ॥
[illegible] । [illegible]
[illegible] ॥ १६१ ॥
[illegible] । [illegible] ॥ १६२ ॥
कुंभानानाय्य [illegible] । [illegible] ॥ १६३ ॥

इति [illegible] ।

चारों तरफ [illegible] रखा हो ॥ १५७। १५८। १५९। १६० ॥ उस मंडपके मध्य [illegible] ऊपर [illegible] किनारे [illegible] की तरह [illegible] विधिसे [illegible] करे ॥ १६१ ॥ उसके बाद उन घड़ोंको जलसे भरकर उनके मुखमें भी आदि [illegible] को स्थापनकर उन्हीं [illegible] उन्हें और उन घड़ोंको लाकर जिनमंदिरमें अच्छी तरह स्थापन करे। उसके बाद [illegible] क्रिया करनेके लिये यजमानके घरपर आवे ॥ १६२। १६३ ॥ इस प्रकार [illegible] पूर्ण हुई। उसके बाद यजमान और वे [illegible] स्नान तथा पूजा करके [illegible] [illegible]

१ [illegible]

तत्रेंद्रा यजमानश्च स्नात्वाभ्यर्च्यार्हतोखिलम्। लोकं संतर्प्य भुक्त्वेष्टं सुस्वाद्वन्नं हितं मितम्॥
कृतारात्रिकमांगल्याः स्वारूढवरवाहनाः। तां यागभूमिं गच्छेयुः सयज्ञांगपरिच्छदाः १६५
अभीष्टसिद्धिरस्त्वेवं वादिन्याः पथि सुस्त्रियाः। पाणिपात्रात्फलादींद्रो गृह्णीयाच्छकुनेच्छया॥
चैत्यालयप्रवेशादिविधिं प्राग्वद्विधाय ते। कृत्वा गुरोर्बृहत्सिद्धयोगभक्ती तदाज्ञया॥१६७॥
त्रिधोपवासमादाय बृहदाचार्यभक्तितः। प्रणम्य चरणद्वन्द्वं तस्य गृह्णीयुराशिषः॥ १६८ ॥

इति उपवासादानविधानम्।

हितकारी भोजन करावें तथा आप भी जीमें ॥ १६४ ॥ पुनः मंगलदीपकसे आरती किये गये तथा अपनी २ उत्तम हाथी घोडा आदि सवारियोंपर बैठे हुए यज्ञांग और परिवार सहित वे इंद्रादिक उस यज्ञभूमिके पास जावें ॥१६५॥ मनो वांछित अर्थकी सिद्धि हो ऐसा रस्तेमें कहतीं हुई सौभाग्यवती स्त्रियोंके हाथसे शुभ शकुन होनेकी इच्छा करके फल लेवें ॥ १६६ ॥ वे इंद्रादिक चैत्यालयप्रवेश, परिक्रमा देना, ईर्यापथ शोधन, स्तुति पूजा इत्यादि विधि पहलेकी तरह करके गुरुकी आज्ञासे बृहत् सिद्ध भक्ति योग भक्ति करें ॥ १६७ ॥ फिर जलके छोडनेके सिवाय तीन प्रकार त्यागरूप उपवास करके तथा बृहत् आचार्य भक्ति करके गुरुके चरणकमलोंको नमस्कार करें और उनका आशीर्वाद ग्रहण करें ॥१६८॥ इस प्रकार उपवास ग्रहणविधि कही। इस प्रकार वे इंद्रादिक अपनी शुद्धिके लिये एकांतमें मंत्रस्नानादि करके पंच नमस्कार मंत्र एकसौ आठ वार जपें। उसके ॐ ह्रां आदि निसीही

अथो रङ्गः पुरः कर्म कृत्वा कल्याणमालिनम् । न्युब्जकुंभाग्रकलशं निमज्जनो निवेशिनाम् ॥१६९॥
यागभूमिं प्रविशेदिन्द्रो जिनान्यर्च्य भक्तितः । सिद्धानन्त्वा गणीनां च निरयुः पर्युपासनम् ॥
नमो याजकपक्षाणो दुग्धुचंदनवर्णिनाः । नगः न्वमो नगानुग्रगुणिगणान्वलंकृतीः १७१॥
यज्ञदीक्षान्वतं विघ्नौघोपशान्त्यर्थ मंडपम् । प्रविशेत् मनसीन्द्रो वेदी गोपुरम् मंडपम् १७२॥

इति प्रविशनाद्यधोलः ।

वैयापानिकण चूर्णेन पंचवर्णेन कर्णिकाम् । बहिःषोडशपत्राणि चतुर्विंशतिकानः ॥१७३॥
मंगलकी तिलवार गौरव ॥ १६९ ॥ फिर वे देव यागभूमिमें प्रविष्ट होकर भक्ति सहित पर्व-
तकी पूजा करके व सिद्धोंकी नमस्कार करके आचार्योंकी पूजा करें ॥ १७० ॥ उसके बाद
देव और यजमान चंदनसे छांटी हुई उत्तम धोती चादरी आदिकी पुष्पमालायें तिलक तिलो
नये पुष्प कपड़े और आभूषण धारण करें ॥ १७१ ॥ अनंतर भीतरमें देव सहित सहित पक्ष-
शिखाके चिन्ह मौजी बंधन आदिको धारण करके वेदीपर सोलहवां बनाके मंडपकी प्रतिमा
करें ॥ १७२ ॥ इस प्रकार प्रतिमाका मंडल स्थापित करें । उस वेदीमें पांच रंगसे चूर्णसे
बीचमें कर्णिका बनाकर बाहर सोलह पत्रोंवाला आकार बनावें । उसके चारों तरफ चौबीस
पत्रोंवाला उसके बाद बत्तीस कमल पत्रोंवाला आकार खींचें और बाहर उसके चिन्ह
बनावें तथा चार कोनोंमें चार वज्राकें हों ऐसी वेदीकी रचना करें ॥ १७३ । १७४ ॥ कर्णि

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उ सा अर्हन्तं जिनेन्द्र स्वाहा । इति तिलकदानं ।

॥ १९ ॥ प्रा०टी० अ० १

द्वात्रिंशतमतःपश्चात् वहिर्वज्रांकितैर्युताम् । कोणैश्चतुर्भिः सचतुर्दिग्द्वारां वेदिमालिखेत्॥ १७४॥
जयाद्यष्टदलान्येके कर्णिकावलयाद्वहिः । मन्यंते वसुनंद्युक्तसूत्रज्ञैस्तदुपेक्ष्यते ॥ १७५ ॥
काश्मीरादिशुभद्रव्यलिखिताखंडमंडलम् । नवं चंद्रोपकं चोर्ध्वं तयोर्वेद्योर्वितानयेत् ॥१७६॥
हेमापामार्गदर्भान्यतमकृमशलाकया । चूर्णाकीर्णे वेदिपृष्ठे वर्तयेद्यागमंडलम् ॥ १७७ ॥
भूर्जे गंधेन चालिख्य क्ष्मार्हं पीठाक्षरं तया । प्रणवं दक्षिणे भागे वामे सं सविसर्गकम् १७८

विद्वानोंका ऐसा कहना है कि कर्णिकाकी गोलाईके वाहर जया आदिके आठ पत्र वनावे परंतु वसुनंदि आचार्य कथित प्रतिष्ठा सिद्धांतके जाननेवाले उस वचनको नहीं स्वीकार करते । क्योंकि उनका मानना अज्ञानताको लिये हुए है ॥ १७५ ॥ यागमंडल और ईशान वेदी–इन दोनोंके ऊपर नया चँदोआ वांधै । उस चँदोवेमें केशर आदि शुभ द्रव्योंसे यागमंडल अभिपेकमंडल लिखा हो ॥ १७६ ॥ उस वेदीके पिछाड़ीके भागपर सोना अपामार्ग और डाभ इनमेंसे किसी एककी सलाई वनाकर उसमें रंग भरके वेदीके पृष्ठभागमें यागमंडलको लिखै ॥ १७७ ॥ फिर भोजपत्रपर घिसे हुए चंदन कपूर मिश्रित उस सलाईसे क्ष्मार्हं ऐसा मध्यवीज लिखे, दाहिने भागमें ओं लिखे वाएं भागमें सः लिखे उसके ऊपर भागमें अर्हं लिखे उसे ओं णमो अरहंताणं ह्रौं स्वाहा इस मूलमंत्रसे घेर दे । उसके वाद ओं अर्हं आदिमें तथा स्वाहा अंतमें है जिसके ऐसे केवलिमंत्रको अर्थात् ओं अर्हं अर्हत्सिद्धसयोगिकेवलिभ्यः स्वाहा इस मंत्रको लिखै ॥ उसके चारों तरफ नंद्यावर्तचक्र, यचक्र और ओं आदिमें

तस्यार्हं पीठपूर्वं च [illegible] । ततः [illegible] ॥ १७९ ॥
[illegible] च । [illegible] १८०

[illegible]

[illegible] । [illegible] १८१

[illegible] । [illegible] ॥ १७८ । १७९ । १८० ॥ [illegible] के अनुसार [illegible] पूजा करे, [illegible] आगे [illegible] । [illegible] पूजा करे । उसके बाद [illegible]

१ [illegible] । [illegible] ।

२. [illegible] आदेश करे ।

वज्रान् स्वमंत्रैः पश्चातः परब्रह्मादिकान् यजेत्।ततश्च विद्यादेव्यादीन् नस्य पत्रादिषु क्रमात् १८२
चत्वारि मंगलादीनि त्राणादित्रितयं शिला। भद्रासनं च संस्थाप्यं ततो वेद्यां यथोचितम् १८३
पीठेपूत्तरवेद्यां च वर्तयित्वा यथायथम्। मंडलानि विधानेन वक्ष्यामाणेन चार्चयेत् १८४

इति मंडलार्चनम्।

इति सूत्रितमाध्यायन् विधिं सम्यक्कृतक्रियः।श्रद्दधानो यथाशास्त्रं जिनबिंबं प्रतिष्ठयेत् १८५॥
या त्रिसंध्यं दिने द्वे वा चत्वारीष्टाधिवासना। यथात्मविभवं कार्या सादेशाद्यनुरोधतः १८६

स्थापन करके क्रमसे पूजे ॥ १८१ । १८२ ॥ पुनः यागमंडलकी वेदीमें यथायोग्य छत्रादि आठ, आयुधादि आठ, पताका आठ और कलश आठ–इस तरह चार मंगलादि; त्राण सरसों जौके अंकुर–ये तीन चारों कोनोंमें तथा चंदनादि घिसनेकी शिला और सोंने चांदी चंदन पीपल आदि क्षीरवृक्षका काठ–इत्यादिका बनाया हुआ पट्टारूप गर्भावतार कल्याणके लिये भद्रासन–ये सब वस्तुएं रक्खे ॥ १८३ ॥ उत्तर वेदी (ईशान वेदी) व जन्माभिषेक वेदीपर मांडला खींचकर आगे कहे जानेवाली विधिसे पूजा करे ॥ १८४ ॥ इस प्रकार मंडलकी पूजा कही गई। इस तरह याजकाचार्य शास्त्रमें कही गई विधिको विचारता हुआ गर्भ जन्मादि संबंधी क्रिया अच्छी तरह करता हुआ शास्त्रानुसार श्रद्धान करता हुआ जिनप्रतिमाको प्रतिष्ठित करे ॥ १८५ ॥ गुरुके उपदेशके अनुसार तीनों संध्या व एक दिन दो दिन, चार दिनतक पूजा होम जपादिक क्रिया शक्तिके माफिक करे ॥ १८६ ॥ जिन

ततः कृत्वाभिषेकादि यक्षदीप्तं विसृज्य च । मूलबिम्बाभिषेकः कुर्याद्गणधराणामनुपूर्विकाम्॥
देवे शेषाद्विशीर्षे च निपृष्णार्थं सनाहितः । नगेन्द्रं सं मनसाऽर्थे शान्तोगुंब मेवतेतु १८८

इति बिम्बप्रतिष्ठाविधानम् ।

सिद्धचक्रं गणधरयन्त्रं शास्त्रं तदिता । सारस्वतादिकं च सिद्धान्तादि प्रतिष्ठयेत् ॥ १८९ ॥
जीर्णचैत्यालयोद्धारे शक्तने चैत्यमंदिरे । अपुराणमिलावे च यथार्हं शान्तिमाचरेत् ॥१९०॥

इति अन्यप्रतिष्ठाविधानम् ।

बिंब प्रतिष्ठाके बाद प्रतिष्ठाचार्य अभिषेकादि करके दीक्षा (वेश) को छोड़कर आरक्ष यक्षन सुख दीक्षामें स्थित कृपा संयमुक्त आदि शांतिपाठ जिनयंत्रादि क्रियाओं करे ॥ १८८ ॥ बाद राजा यजमान अपनी सामर्थ्यके अनुसार जिनबिंबके निमित्त, रथ एवं कृपा गर्भिणा आदि धर्मसाधनोंके निमित्त धनको उत्साह और देव (प्रतिष्ठाचार्य) को सम्मानपूर्वक शक्तिके अनुसार धन देकर आये हुए सज्जनोंको यथायोग्य संतोषित करे १८८ इसप्रकार जिनबिंब प्रतिष्ठाविधि पूर्ण हुई । इसके बाद जिनप्रतिष्ठाशास्त्रोंमें कथित रीतिसे सिद्धचक्र गणधरवलयकी पूजा करके तथा सारस्वत पुस्तकादि आदि इनको पूजकर सिद्ध आचार्य आदिकी प्रतिमाको प्रतिष्ठित करे ॥ १८९ ॥ जीर्ण (पुराने) जिनमंदिरके उद्धारमें अथवा पुराने जैनमंदिरमें आई प्रतिमाके आगमकी यथायोग्य शांतिविधान करे ॥ १९० ॥ इस प्रकार शेष सिद्धादि प्रतिमाकी प्रतिष्ठाविधि जानना । मैं (आशाधरने)

एतत्सूत्रं दृब्धमैतिह्यदृष्ट्या ग्रंथार्थाभ्यां धारयन् यः सुधीमान् ।
निर्मातीन्द्रः कर्म निर्देक्ष्यमाणं सद्गार्हस्थाशाधरैः पूज्यतेसौ ॥ १९१ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि सूत्रस्थापनीयो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अनादि सिद्धांतोंको जानकर इस सूत्ररूप प्रतिष्ठाविधिको रचा है। जो अति बुद्धिमान इस ग्रंथके शब्द और अर्थको धारणकर याजकाचार्य हुआ आगे कहे जानेवाली प्रतिष्ठाविधिको करता है वह इंद्र दानपूजादिकर्मवाले उत्तमगृहस्थपनेको चाहनेवाले सद्गृहस्थोंसे नमस्कारादिद्वारा आदरणीय होता है ॥ १९१ ॥

इसप्रकार पंडितवर आशाधरविरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीयनामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें सूत्रस्थापनीय नामा पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥

१ दानपूजाप्रतिष्ठाजिनयात्रादिकर्मनिष्ठः सद्गृहस्थः-तस्य भावः-कर्म वा ।

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथागमोक्तशान्तिविधानमनुस्मृत्यवम्:—

दत्त्वा यथाक्रमावर्घं वास्तुदेवाय मानतीम् ।
संमार्ज्य वायुभिर्मेघैः प्रोक्ष्य पुष्पाग्निनोल्लसन् ॥ १ ॥
इष्टोक्षणानि लाप्स्यन्ते मंडलेष्वथा । बृहच्छान्तिविधिं न्यस्य जाने संस्नापयेज्जिनः ॥ २ ॥

दूसरा अध्याय ॥ २ ॥

इस पूजनस्थापनके बाद जलयात्राविधि अनुवादरूपसे कहते हैं—मनोहरको और वास्तुदेवको अर्घ देकर वायुकुमार देवोंके आह्वाननसे भूमिको झाड़कर मेघकुमार देवोंके आह्वाननसे छिड़ककर अग्निकुमार देवोंके आह्वाननसे भूमि जलाकर षाड कुमार नागोंको पूजकर अमृतमय पञ्चामृत मांडलेमें लघुशांतिकर्म करके तथा इन्द्रादि कोठोंमें मांडलेमें बृहत्शांतिविधान करके मैं अर्हंतका अभिषेक करता हूं ऐसा कहता हुआ अर्हंतका अभिषेक करे ॥ १ ॥ २ ॥ फिर शांतिकर्म आरंभ करनेके लिये सरोवरके किनारे पुष्पांजलि

शांतिकर्मोपक्रमाय सरस्तीरे पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

यत्पद्मामृतलंभनात्सुमनसां मान्योसि दिक्चक्रमत्
कल्लोलोसि सदा यदाश्रितवतां संतापहंतासि यत् ।
लोके यद्यपि तावतैव वदसे क्षीरोदवत्त्वं जिन–
स्नानीयेन तथापि तद्वदुदकेनार्घ्योसि कासार नः ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं पद्माकरायार्घं निर्वपामीति स्वाहा । वास्तुदेवाद्यर्घमंत्रा वक्ष्यंते ।

मध्ये दिक्ष्वर्हतोन्यान् मदधदधिविदिक् तांस्त्रिशो मंगलादीन्
संसारात्यक्षणास्फुटमहिमभरं धर्ममूर्ध्वं शिवानाम् ।

फेंके और आगे कहे जानेवाले यत्पद्मामृत इत्यादि श्लोकको पढकर ॐ ह्रीं बोलकर सरोवर (तालाव) को जलसे अर्घ देवे ॥ वास्तुदेवादिके अर्घमंत्र आगे कहेंगे ॥ ३ ॥ उस मंडलकी पूर्वादि चार दिशाओंमें सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधुओंका स्थापन करे, विदिशाओंमें मंगल लोकोत्तम शरण इन तीनोंको लिखे, सिद्धोंके ऊपर अत्यंत महिमावाले धर्मको स्थापन करे और आठ पत्रोंपर जयादि आठ देवियोंका स्थापन करे और दश दिशाओंमें दश दिक्स्वामियोंको रक्खे, सोमद्वारपालके ऊपर भागमें सूर्यादि नौग्रह स्थापन करे । वह मंडलचौकोन और चार दरवाजेवाला होना चाहिये ऐसा मंडल कल्याणकारी है । ऐसा

सामोदैः [illegible]
[illegible]दैः ।
[illegible]
[illegible] पूजयेत्[illegible] ॥ १० ॥
प्रत्येकार्पित[illegible]-
[illegible] ।
[illegible] नियतं मतं
[illegible] सिद्धान् यजे ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं [illegible]

ओं ह्रीं कहकर पुष्प चढ़ावे। फिर "सामोदैः" इत्यादि श्लोक पढ़कर आठोंको जलादि आठ द्रव्य चढ़ावे ॥ ९ ॥ १० ॥ फिर "प्रत्येकार्पित" यह श्लोक पढ़कर ओं ह्रीं इत्यादि पढ़कर पुष्प चढ़ावे। उसके बाद "सामोदैः" यह पढ़कर सिद्धपरमेष्ठीको अर्घ चढ़ावे॥११॥१२॥

धिष्ठितां परमात्मनामासंसारमनासादितपूर्वामपुनरावृत्त्याधितिष्ठतां मंगललोकोत्तमशरणभूतानां सिद्धपरमेष्ठिनामष्टतयीमिष्टिं करोमीति स्वाहा ।

सामोदैः..................................फलैः पूजये सिद्धनाथान् ॥ १२ ॥

व्यक्ताशेषश्रुतोपस्कृतिकपितमस्कांडगंभीरधीर-
स्वांताः षट्त्रिंशदुच्चैः स्फुरदसमगुणाः पंच मुक्त्यै स्वयं ये ।
आचारानाचरंतः परमकरुणया चारयंते मुमुक्षून्
लोकाग्रण्यः शरण्यान् गणधरवृषभान् मंगलं तान्महामि ॥ १३ ॥

ओं हूं व्यवहाररत्नत्रयावधानसमुद्भिद्यमाननिश्चयरत्नत्रयैकलोलीभावमनुभवंतमानंदसान्द्रं शुद्धस्वात्मानमभिनिविशमानानामपि स्वस्वरूपोपलब्धिप्रेयसीदृढतरपरिरंभसुखाभिलाषुकमुमुक्षुवर्गानुग्रहैकसर्गायमाणांतःकरणानां मंगललोकोत्तमशरणभूतानामाचार्यपरमेष्ठिनामष्टतयीमिष्टिं करोमीति स्वाहा ।

सामोदैः.................................... पूजये धर्मसूरीन् ॥ १४ ॥

उसके बाद "व्यक्ताशेष" इत्यादि श्लोक पढ़कर "ओं हूं" इत्यादिसे आचार्यपरमेष्ठीको पुष्पांजलि क्षेपण करे फिर "सामोदैः" इस श्लोकको बोलकर आचार्यपरमेष्ठीको जलादि अष्ट द्रव्यसे अर्घ चढावे ॥ १३ ॥ १४ ॥ फिर "सांगोपांग" इस श्लोकको पढकर "ओं ह्रौं"

सालोर्वशाणमत्राः सुविहितमतयः सूक्तिसूक्तिप्रभंगे-
रिंगानिर्धूतकुष्माण्डपितमनसः श्रीगणेशो जिनेन्द्रान् ।
कीर्तिं धर्मान् त्रोकोत्तरगतिकुशलाकारकोरकाः
क्षमाला मांगल्यश्लोकोपमध्वनना पंचेऽध्यापकांसान् ॥ १५ ॥

ॐ ह्रीं निरवद्यविद्याविनोदितमनुजेन्द्रादि[illegible]
[illegible]
[illegible] स्वाहा ।

सार्पीदः...पूजये पाठकेन्द्रान् ॥ १६ ॥

नवीशो यद्यनिचारुरूपपरिणमयोऽनल्पश्रीतिर्लप-
प्रत्यग्ज्योतिः प्रतिष्ठानपुरुषभवमयूखोपहारनिष्ठान् ।
अन्योन्यस्पर्धमानाभिरद्य निनदश्रीसमाहारकर्त्री
निर्मूर्तिं विश्वलोकान् नमामीह यजे पंचकल्याणसाधून् ॥ १७ ॥

इत्यादिसे उपाध्याय परमेष्ठीको पुष्पांजलि देवे पुनः " सार्पीदः " इस श्लोकको बोलकर उपाध्यायपरमेष्ठीको जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ १५।१६ ॥ इसके बाद " नवीशो " यह श्लोक बोलकर " ॐ ह्रः " इत्यादिसे सर्वसाधुपरमेष्ठीको पुष्पांजलि अर्पण करे फिर

ॐ ह्रः वैस्रसिकपरमाचिन्मयविश्वैश्वर्यपदापहारकठोरकर्मदुष्कर्मशात्रवशक्तिशातनोत्सिक्तचिच्छक्तिव्यंजकप्रकामदुर्लक्षव्यतिरेकक्षेत्रज्ञाशांतरप्रवेशदुर्ललितबुद्ध्यनुबंधप्रवर्धमानसद्ध्यानसामिद्धसहजानंदामृतरसास्वादनावधीरितपरममुक्तिसंपत्प्रियासमागमोत्कंठानां मंगललोकोत्तमशरणभूतानां सर्वसाधुपरमेष्ठिनामष्टतयीमिष्टिं करोमीति स्वाहा ।

सामोदैः.....................................पूजये साधुसिंहान् ॥ १८ ॥

एवं मध्येऽर्हतो दिक्षु च चतुरः सिद्धादीनभ्यर्च्य विदिक्षु भित्वा कर्मगिरीनित्यादिमंत्रैश्चत्वारि मंगलानि लोकोत्तमान् शरणानि चार्घैः संभाव्य सिद्धोपरि धर्मस्येत्थं पूजां कुर्यात् ।

अश्रांतप्रतिबंधकव्यपगमैकांतस्फुटचित्कला-
रूपेणापि जगत्यचिंत्यचरितस्तंतन्यते येन ना ।

" सामोदैः " इसे पढकर सर्वसाधुपरमेष्ठीको जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ १७।१८ ॥ इस प्रकार मांडलेके बीचमें अर्हंतको, चार दिशाओंमें सिद्धादि चार परमेष्ठियोंको पूजे और विदिशाओंमें " भित्वा कर्मगिरीन् " इस आगे कहे जानेवाले श्लोकमंत्रसे चार मंगल चार लोकोत्तम चार शरणको अर्घोंसे पूजकर सिद्ध परमेष्ठीके ऊपर स्थापित धर्मकी इस प्रकार पूजा करै ॥ वह इस तरह है कि पहले " अश्रांत " इत्यादि श्लोक पढै उसके बाद " ॐ ह्रीं " से धर्मको पुष्प क्षेपण करे फिर " सामोदैः " इस श्लोकसे जिन धर्मकी जलादि

गतसंस्तरणाय योगिकपोल्यागान्तैतधरां
तस्कैयो यदनुग्रहम् कृपयत्यनांवे गं नद्गुणम् ॥ १९ ॥

ॐ ह्रीं ... [illegible] ... मंगल्योक्तेरानभाग्यस्य ... [illegible] ... स्वाहा ।

सापोदः..पूजये जैनपदम् ॥ २० ॥

एवं क्रमेण पूजाविधिः, समासेनास पुनर्मन्त्रदर्शनं पृथक् न कृतम् ॥ ... [illegible] ...
[illegible] ... पूर्णेन्दुतनेन ... [illegible] ।

तेषां पंच जिनेन्द्रसिद्धगणभृन्निद्वांतादिकृत्साधवो
मांगल्यं भुवनोत्तमाश्च शरणं तद्धर्मिनोक्तो गुणः ।

अब क्रमसे पूजा करे ॥ १९।२० ॥ यह विस्तारसे पूजाविधि कही गई है। यदि संक्षेपसे करना हो तो मंगलादिकके अर्घोंको पृथक् न चढ़ावे । इस प्रकार अर्घादिकोंको चढ़ाकर निर्मल चंद्रमाकी किरणके समान प्रकाशमान अर्हंतका अपने मनमें ध्यानकर (मेरा आत्मा भी अति स्वरूप है ऐसा चिंतवनकर) अनादि सिद्धमंत्रसे मंत्रित कपूर मिले हुए घिसे हुए मलयागिरिचंदनसे छांटे गये सुगंधित पुष्पोंकी अंजलि लेकर इसीप्रकार पुष्पोंसे इकर

अस्माभिः परिपूज्य भक्तिभरतः पूर्णार्घमापादिताः
संघस्य क्षितिपस्य देशपुरयोरप्यासतां शांतये ॥ २१ ॥

पूर्णार्घम् ।

इत्यार्चिताः परब्रह्मप्रमुखाः कर्णिकार्पिताः । संतु सप्तदशाप्येते सभ्यानां शमशर्मणे ॥ २२ ॥

ततश्च जयादिदेवतागणान् वक्ष्यमाणक्रमेणोपचर्य सूर्यादिग्रहान् सोमदिक्पालोपरि न्यवस्थाप्य विधिवत् पूजयेत् । तथाहि—

रक्तस्तुल्यरुगंबरादियुगिनः श्वेतः शशी लोहितो
भौमो हेमनिभौ बुधामरगुरू गौरः सितश्चासिताः ।

मंडलकी पूजा करे । उस समय "तेमी" इत्यादि श्लोक पढे ॥ २१ ॥ उसके वाद "इत्यर्चिता" यह आशीर्वाद श्लोक पढे ॥ २२ ॥ उसके वाद जया आदि देवताओंको कहे-जानेवाले क्रमसे पूज करके सूर्यादि नवग्रहोंको सोमदिक्पालके ऊपरभागमें स्थापन करके विधिपूर्वक पूजे । उसीको वतलाते हैं–सूर्यका रंग लाल है और वस्त्र चमर छत्रविमान भी लाल हैं, चंद्रमाका वर्ण सफेद है, मंगलका लाल वर्ण है, वुध और वृहस्पतका रंग सुवर्णके समान है, शुक्रका रंग सफेद है, शनि, राहु और केतु–ये तीनों काले रंगके हैं। इन ग्रहोंको

१सूर्यादि राहुपर्यंत ग्रहोंको आठ दिशाओंमें स्थापन करे वुध और वृहस्पतिके मध्यमें केतुका आसन स्थापित करे

कोणस्थानकुम्भेषु जिनमंडे कुम्भैः पूर्वादितः
तोयोर्ध्वपिहितं नित्यमनुष्मण्डे नागानीत्यैः ॥ २३ ॥

[illegible]

इति पूर्णकुम्भस्थापनम् ।

आरभ्याः [illegible]
स्थानमंगलस्थापनाम्य[illegible] ।

जिन प्रतिमाओंके आसनमें आवाहन कर पांच [illegible] इनको [illegible] रखकर पूर्वादि दिशा-ओंमें स्थापन कर समान वर्णोंका पूजन [illegible] तो आनंदमंगल प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥ उनके समान रंगवाले अक्षतके पुंजोंको रखकर उनके ऊपर सूर्यादिके क्रमसे कुंकुमादि रंग-युक्त कर्म (दाभ) के आसनोंको रखे । भावार्थ-सूर्यके लिये कुंकुम केशरसे रंगको रंगे, चंद्रमाके लिये चंदनसे, मंगलके लिये सिंदूरसे, बुध बृहस्पतिके लिये हल्दीसे, शुक्रके लिये चंदनसे और शनि राहु केतुके लिये कस्तूरीसे रंगे । इस प्रकार रंगे रखनेकी विधि वर्णन की गई ॥ नागकुमारलोग शरीरपीड़ा करते हैं, यक्षलोग धन हरते हैं, भूतलोग [illegible] करते हैं, राक्षसलोग धातुवैषम्य करते हैं इसलिये नागकुमारादिकी स्थापना करके पूजनेसे पूर्वोक्त सब विघ्न दूर हो जाते हैं तथा सूर्यादिग्रहोंकी पूजा करनेसे कालादिक विघ्न नहीं

॥ २७ ॥

येष्विष्टेषु च तापसादिषु शमं यांत्याशयित्वार्चिते-
प्वातन्वंतु गुरुप्रसादवरदास्तेर्कादयो वः शिवम् ॥ २४ ॥

कुमारदीक्षितेष्वेकतममर्चयतां रुजः । कुजः कुष्याद् ग्रहाः शेषाः सवर्णेषु जिनेषु वः ॥ २५ ॥

आदित्यादीनां सपर्याविध्यनुवादमुखेन प्रभावख्यापनाय प्रतिदिशं पुष्पोदकाक्षतं क्षिपेत् ।

ग्रहाः संशब्दाये युष्मानायात सपरिच्छदाः ।
अत्रोपविशतैतान् वो यजे प्रत्येकमादरात् ॥ २६ ॥

आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजोपक्रमाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

संन्यासी आदिकर किये गये उपद्रव शांत होते हैं । ऐसे गुरूके प्रसादसे वर देनेवाले सूर्यादि ग्रह तुम भव्योंका कल्याण करें ॥ २४ ॥ अथवा वाल ब्रह्मचारी वासुपूज्य मल्लि नेमि पार्श्व महावीर–इन पांचोंमें किसी एकको पूजनेसे मंगल ग्रह रोग शांत करता है । और ग्रहोंके समान वर्णवाले तीर्थंकरोंमेंसे किसी एकको पूजनेसे वाकी अन्य ग्रह भी रोगोंका नाश करते हैं ॥ २५ ॥ सूर्यादि ग्रहोंकी पूजाविधिके द्वारा प्रभाव वतलानेके लिये सव दिशाओंमें पुष्प जल अक्षतोंको क्षेपण करे । अव आह्वानादि पांच उपचारोंसे उनकी पूजा दिखलाते हैं–हे सूर्यादि ग्रहो ! हम तुमको वुलाते हैं, तुम सपरिवार आओ, यहां तिष्ठो, तुम सवको हम आदरसे पूजते हैं । यहां पर आह्वानन स्थापन सन्निधीकरण पूजन–

ऊर्ध्वं निर्विघ्नपिंडान् बहुलघटितान् पीतनवपीतकाष्ठान्
सुस्नाश्री लक्षणानि जिनियनिक्यनं नेत्रकनैश्चारुभिः ।
पूर्णामानुकुण्डां पृथिविधानदिग्भागसंस्थैर्विधानं
स्थानकरौ नीचधानं द्रव्यमनसाकृतीनरचोतपातुः ॥ २७ ॥
सं तोषा नायसेव्या कमलकरशिरस्थेना प्रहाणा
नैवेद्यैः सानुनीकैनमुखपरमाक्षीजमार्गिनिर्देशैः ।
गंधैः पुष्पैः फलैश्चाक्षतपूरणदशाककनारंगपूर्णै—
स्नातरसधानसाधितक्र इष्टिरिति प्रीणितः श्रीनगरस्थान ॥ २८ ॥

ये चार उपचार कहे गये हैं जिनसे जिन पूजाके चार होता है। इस तरह पाँच उपचार पूजाके सब जगह जानना चाहिये ॥ २६ ॥ इस प्रकार इस पूजाके आरंभमें आह्वाननादि करनेके समय पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये। अब सूर्यादिकी पूजाविधि कहते हैं-पहले " ऊर्ध्वं " इत्यादि और " सं तोषा " इत्यादि-ये दो श्लोक पढ़कर " हे आदित्य " कहकर आह्वानन स्थापन सन्निधीकरण करे, उसके बाद " ओं आदित्याय " इत्यादि बोलकर जलादि आठ द्रव्य चढ़ावें। आठके ईशानमें पकाई हुई खीर माजा गौका घी गुड लाडू वगैरः नैवेद्यमें पूर्ण तथा अग्निमें आहुतियां हैं जिसके लिये यह पूजाकर्म

॥ २८ ॥

हे आदित्य आगच्छ आदित्याय स्वाहा आदित्यानुचराय स्वाहा आदित्यमहत्तराय स्वाहा अग्नये स्वाहा अनिलाय स्वाहा वरुणाय स्वाहा सोमाय स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ओं स्वाहा भूः स्वाहा भुवः स्वाहा स्वः स्वाहा ओं भूर्भुवः स्वः स्वधा स्वाहा ओं आदित्याय स्वगणपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं गंधं पुष्पं धूपं दीपं चरुं बलिं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा। इत्यादित्याह्वाननं। "यस्यार्थे क्रियते कर्म स प्रीतो नित्यमस्तु मे। शांतिकं इत्यादि ॥

तद्विवादुरुविंवमष्टभिरितो भागैश्चरद्योजना-
शीत्योर्ध्वं तदिवाब्दलक्षयुतपल्ययोकायुरग्रोर्दिशि।
शीतांशो सरलाज्यकिंशुकसमितिसद्धान्नदुग्धादिभि-
स्त्वं कापालिकसत्क्रियाप्रिय इह ग्राय ग्रहाग्रप्रभो ॥ २९ ॥

हे सोम आगच्छ सोमाय स्वाहा।

करता हूं वह देवता मेरे ऊपर हमेशा प्रसन्न रहे। ऐसा अंतमें सब जगह कहना चाहिये ॥ २७।२८ ॥ इस प्रकार सूर्यकी पूजाविधि हुई। "तद्विवादुरु" इत्यादि श्लोक पढकर "हे सोम" इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर पूर्व कही ओंहींमें "आदित्याय" की जगह "सोमाय" बोलकर जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ देवदारुकी लकडीका चूरा घी ढाककी लकडीसे पकाया अन्न दूध—इन सबको मिलाकर आहुतियां अग्निमें दे, यह सोमकी पूजा

न्यूने त्रिविधिनींकयोमनवने कोणागांगत्वं त्रिभि-
र्योगं त्रिद्विसदृशकैर्मादिपुर्न्नाभिसुनिगः नक्षेभून् ।
पल्याशोपुरणाकृजाय नाद्विराणप्रेसुनाजीनकै:
संतुष्टो पलमकुपिशुनार्पाहुंगांशिपिपूल्नगं ॥ ३० ॥

हे अंगारक आगच्छ [illegible] ।

विनं गं अभिनोपुणोऽजनपशीरणांधैर्बनकूनमल
कोणार्णणवितं कुनादिगनितितो गर्गांद्रियुक्तूमनकम् ।

हुई । २९ ॥ " न्यूने " इत्यादि श्लोक पढ़कर " हे अंगारक " इत्यादिसे आवाहनादि कर्म करे फिर ओं ह्रीं " अंगारकाय " लगाकर जलादि आठ द्रव्य चढ़ावे । इसमें खैरकी लकड़ीसे भुने हुए गुड़ घीसे मिले हुए गेहूँके मल्लुओंसे तथा गुग्गुल घी राल इलायची अगुरु आदिकी धूपसे दक्षिण दिशामें आहुतियां दे। इससे मंगलग्रह प्रसन्न होता है ॥ ३० ॥ यह मंगलकी पूजा हुई । " विनं " इत्यादि श्लोक पढ़कर " हे बुध " इत्यादिसे आह्वाननादि करे फिर ओं ह्रीं " बुधाय " लगाकर जलादि आठ द्रव्य चढ़ावे। इसकी पूजामें सफेदपीले अष्ट विविध मिलती है । अपामार्गकी लकड़ीसे भातका पकाकर उसमें दूध डाले ऐसा नैवेद्य बनावे तथा राल घीकी धूपसे पश्चिमदिशामें आहुतियां दे यह बुधकी पूजा हुई

विभ्र त्वं विधुजोपवीतयुगपामार्गैधासिद्धौदन-
क्षीरं सर्ज रसाज्यधूपमजगो रक्षोदिशि स्वीकुरु ॥ ३१ ॥

हे बुध आगच्छ बुधाय स्वाहा ।

तच्चाराद्रसयोजनैरुपरि या तद्वाद्विमानं मनागूनक्रोशामितः सपुस्तककमंडल्वक्षसूत्रोऽब्जगः ।
पल्यैकायुरिहोपवीतरुचिरोरस्कःपरिव्राडतः प्रत्यक् पिप्पलपकपायसहविर्धूपैर्गुरोऽभ्यर्च्यसे ३२

हे बृहस्पते आगच्छ बृहस्पतये स्वाहा ।

सौम्याध्वेध्युपितस्त्रियोजनमतिक्रांतेभ्रयानं तथा
मेर्ये क्रोशततं त्रिसूत्रफणभृत्पाशाक्षसूत्रैः स्फुरन् ।
प्रीतः पाशुपते सवर्षशतपल्यायुः प्लवस्थो मरुत्-
काष्ठायां गुडफल्गुपाचितयवानाज्यैः कवे पूज्यसे ॥ ३३ ॥

हे शुक्र आगच्छ शुक्राय स्वाहा ।

॥ ३१ ॥ "तच्चारा" इत्यादि श्लोक पढकर "हे बृहस्पते" इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर ओंह्रींमें "बृहस्पतये" लगाकर जलादि द्रव्य चढावे यहांपर पश्चिमदिशामें पीपलकी लकडीसे बनी हुई खीरमें गौके घीसे मिश्रित धूप डाले उससे आहूतियां देवे । यह बृहस्पतकी पूजा हुई ॥ ३२ ॥ "सौम्याध्वे" इत्यादि श्लोक बोलकर "हे शुक्र इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर

कोणार्क पृथुगोत्रमैर्विमिश्रगंधैः कृशान्नंस्त्वं
तद्रक्तगतोद्भवनगपत्नापुष्कमिन्द्रचीपुनः ।
नीलधृतिपृः कृष्णपीयतद्धैर्नीलसन्तिलद्रौ
तान्त्यागुरुणोदगमे शनजगुह्यनात्पृष्टः शनै ॥ ३४ ॥

हे शनैश्चर आगच्छ शनैश्चराय स्वाहा ।

त्यक्ताग्निः शीतवांजनगलरसायिपानन्नं
तत्वारि सर्वगुणान्यहरहः पातु च पार्थिवराज् ।

ओंकारमें " शुक्राय " जोड़कर गन्धादि द्रव्य चढ़ावे । यहां गायत्रीविमासे कल्पकाष्ठमें भुने हुए जौ गुड़ घी मिलाकर अग्निमें आहुति दे । यह शुक्रकी पूजा हुई ॥ ३३ ॥ " कोणार्क " इत्यादि श्लोकको पढ़कर "हे शनैश्चर" इत्यादिसे आवाहनादि करे फिर ओंकारमें "शनैश्चराय" लगाकर गन्धादि अष्ट द्रव्य चढ़ावे । पलाशकी लकड़ी उड़द तिल चावल तथा खाण्ड घी अगुरुकी धूपसे आहुतियां दे । इस प्रकार शनैश्चरकी पूजा हुई ॥ ३४ ॥ " त्यक्ता " इत्यादि श्लोक पढ़कर " हे राहो " इत्यादिसे आवाहनादि करे फिर ओंकारमें " राहवे " लगाकर गन्धादि अष्ट द्रव्य चढ़ावे । यहां दूबके ईंधनसे पकाया गया काला किया गया गेहूं आदिका चून तथा दूध घी खांड इनकी धूपसे अग्निमें आहुतियां दे ॥

विंबं छादयिता तदंशुनिवहै राहो द्विजार्चोमहो
दूर्वापिष्टपयोघृताक्तजतुधूपेनेशदिश्यर्च्यसे ॥ ३५ ॥

हे राहो आगच्छ राहवे स्वाहा ।

षष्ठे षष्ठ उपेत्य मासि तपनस्येंदोस्तमोविंबव–
द्विंवाद्विंवमधश्चरन्मलिनयत्यंशद्रमैस्ताद्वियत् ।
दर्शांतेधिवसन्निहोर्ध्वदिशि तत्केतो सकुल्मापकं
स्फूर्जत्केतुसहस्रदेह सकुशं विल्वाज्यधूपं भज ॥ ३६ ॥

हे केतो आगच्छ केतवे स्वाहा।

एते सप्तधनुःप्रमाणवपुरुत्सेधा नवापि ग्रहाः
शश्वचंद्रबलाबलाप्यसदसद्दानस्फुरद्विक्रमाः ।

यह राहुकी पूजा हुई ॥ ३५॥ " षष्ठे " इत्यादि श्लोक पढकर " हे केतो " इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर ओंह्रींमें " केतवे " लगाकर जलादि अष्ट द्रव्य चढावे । यहां कुल्माष (कुलथी) के चूनको दर्भके ईंधनसे पकावे तथा घी मिले हुए कच्चे वेलकी धूपसे आहूतियां दे। यह केतु ग्रहकी पूजा हुई ॥ ३६ ॥ उसके वाद " एते " इत्यादि श्लोक पढकर " ओं ह्रीं "

सत्कल्पोपद्रुमाभिधामिह पठेत् पूर्णाहुतिं नामतः
नीतिं व्यंजक न यद्ग्यानकनूपादौ [illegible] कुलम् ॥ ३७ ॥

पूर्णाहुतिः । ॐ ह्रीं अः फट् [illegible] स्वाहा । एवं [illegible] विनापि योज्यम् ।

कृत्वा [illegible] समाधिम् ।
नीत्वा [illegible] नः ॥ ३८ ॥

आशीर्वादः । इति ग्रहपूजाविधानम् । [illegible] स्नपयेत् ।

[illegible] ॥ ३९ ॥

इत्यादि ये पूर्ण आहुति है। इस एक [illegible] नाम लगा यजमानका नाम अवश्य लगाना चाहिये ॥३७॥ फिर 'कृत्वा' इत्यादि आशीर्वाद श्लोक पढ़े फिर [illegible] आहुतियां हैं ॥ ३८ ॥ इस प्रकार नव ग्रहकी पूजा जानना ॥ इसके बाद उस [illegible] अभिषेकके सिंहासनपर चौबीस तीर्थंकरोंका स्थापन करके पहले कही हुई विधिसे अभिषेक करे ॥ लघुशांतिकर्म आठवाँके मंडलपर और बृहत् शांतिकर्म इक्यासी कोठेके

ते मंत्रविद्यथाम्नातमुक्तेनुक्ते तु कर्मणि। युंज्याद्यथार्हं विघ्नानामनुत्पत्त्यै शमाय च ॥ ४० ॥

इति शांतिकर्मविधानं। अथातो जलाशयमुपसद्य सुपवित्रपात्रे वरकाश्मीरकर्पूरादिना कार्णिकायां ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपरब्रह्मणेनंतानंतज्ञानशक्तये नमः इति लिखित्वा पूर्वाद्यष्टदलेषु क्रमेण ओं ह्रीं श्रीप्रभृतिदेवताभ्यः स्वाहा १ ओं ह्रीं गंगादिदेवीभ्यः स्वाहा २ ओं ह्रीं सीताविन्द्धमहाहृददेवेभ्यः स्वाहा ३ ओं ह्रीं सीतोदाविन्द्धमहाहृददेवेभ्यः स्वाहा ४ ओं ह्रीं लवणोदकालोदमागधादितीर्थदेवेभ्यः स्वाहा ५ ओं ह्रीं सीतासीतोदामागधादितीर्थदेवेभ्यः स्वाहा ६ ॐ ह्रीं संख्यातीतसमुद्रदेवेभ्यः स्वाहा ७ ॐ ह्रीं

मंडलपर यथायोग्य करे। उसका फल ध्यानके माफिक मिलता है अर्थात् लघुशांतिकर्म भी सम्यक ध्यानसे कियाजाय तो महाफल देता है और बड़ा शांतिविधान भी थोड़े ध्यानसे किये जानेपर थोड़ा फल देता है ॥ ३९ ॥ वह बुद्धिमान् इंद्र शास्त्रकथित रीतिसे तीर्थोदकादानविधिमें कहे गये लघु वृहत् शांतिविधान कर्मोंको अग्रिम विघ्नोंकी अनुत्पत्ति और पूर्वविघ्नोंकी शांतिके लिये यथायोग्य करे ॥ ४० ॥ इस प्रकार शांतिकर्मका विधान कहा गया। अब उसके बाद जलाशय (सरोवर नदी) के किनारे जाकर धोये हुए नवे थालमें उत्तम केशर कपूरसे अष्टपत्रकमलकी कर्णिका (बीचभाग) में " ओं ह्रीं अर्हं " इत्यादि लिखकर पूर्वादि आठ पत्रोंपर क्रमसे " ओं ह्रीं श्री " इत्यादि आठ मंत्र लिखकर तीनवार मायाबीजकी ईकारमात्रासे वेष्टितकर क्रोंकार अंतमें

लोकानिमलनगिरिदेभ्यः स्वाहा ८ ॥ इति विलिख्य विलोगमाणपा परिलिख्य कोणयोः लिख्य मङ्गिः " पुरानूलवोतिगवरर्णामितः लिनः । परनलिदृर्मिषेगः प्राणलोममंडलम् " ॥ इत्युक्तं पद्मं वरुणमंडलं चालिख्य तन्मध्यर्णनुत्तरां पदेषु मध्ये नानाः भवतो पूजनमदीपिलनपरेत् । तथा ।

नद्धमानिनमयसुधारमपूरनोकु पापापाूनाकूनजगद्विपिपूर्णमेवनु ।
मदूर्णतदुरुदलनिगमदीपपूनमूनद्गुमुपानाभिभिषेतं जिन ॥ ५१ ॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीरत्नत्रयोऽनंतानंतज्ञानशक्ये इदं जलं गंधाक्षतान् पुष्पाणि चरुं दीपं धूपं फलं पूर्णानति च निर्वपामीति स्वाहा ।

लिखे । उसके बाहर जलमंडल लिखकर श्री परमात्मा अर्हंतका पूजन करे, फिर आठ पत्तोंपर आठ प्रकारके जलदेवताओंका पूजन अपने २ मंत्रसे मंत्रित पवित्र जलादि द्रव्योंसे करे ॥ जलमंडलकी विधि इसतरह है कि पहले आठ पत्रका कमल बनावे उसके आगे कलशका आकार लिखे उसके मुखभागपर कमल रखे उसके मध्यभागमें पत्रके ऊपर पकार लिखे उसके बाद कलशके नीचे भागपर कमल बनावे उसके मध्यपत्रमें पकार लिखे । कलशका वर्ण सफेद है, उस कलशकी चारों दिशाओंमें पकार लिखे, बाहरके भागमें चारकोनोंमें पकार लिखे–इस प्रकार वरुणमंडल (जलमंडल) जानना ॥ अब आठवें उपत्रकी पूजाविधि कहते हैं–" तद्धाम " इत्यादि श्लोक पढकर " ॐ ह्रीं " इत्यादिसे इस अर्हंत देवकी जलादि आठ द्रव्यसे पूजा करे ॥ ५१ ॥ " पद्मादि " इत्यादि श्लोक पढकर

पद्मादिदिव्यह्रदवारिविभूतीभोक्त्री श्रीपूर्वदिव्ययुवतीर्विधिपूर्वमेताः ।
अर्घं गंध.. ॥ ४२ ॥

ओं ह्रीं श्रीप्रभृतिदेवताभ्यः इदं.............................. ।

गंगादिदिव्यसरिदंबुविभूतिभोक्त्री गंगादिदेवतवधूर्विधिपूर्वमेताः ।
अर्घ.. ॥ ४३ ॥

ओं ह्रीं गंगादिदेवीभ्यः इदं.............................. ।

सीतातदुत्तरसरित्मणयि ह्रदांभो भोक्षन्महाह्रदसुरान् विधिपूर्वमेतान् ।
अर्घ.. ॥ ४४ ॥

ओं ह्रीं सीताविद्धमहाह्रददेवेभ्यः इदं.............. ।

सीतातदुत्तरसरित्मणयि ह्रदांभो भोक्षन्महाह्रदसुरान् विधिपूर्वमेतान् ।
अर्घ.. ॥ ४५ ॥

"ओं ह्रीं श्रीप्रभृति" इत्यादिसे पहले पत्रके ऊपर जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ ४२ ॥ "गंगादि" इत्यादि श्लोक पढकर "ओं ह्रीं गंगादि" इत्यादिसे जलादि अष्ट द्रव्य दूसरे पत्रपर चढावे ॥ ४३ ॥ "सीता" इत्यादि श्लोक पढकर "ओं ह्रीं सीताविद्ध" इत्यादिसे तीसरे पत्रपर जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ ४४ ॥ "सीता तदुत्तर" इत्यादि श्लोक पढकर

ओं ह्रीं श्रीमौक्तिकमहाहारेभ्य इदं................ ।

त्रिभुवनेशमनोपरिभूनि श्रीकृत्वन श्रीनागनाशिरिभूषान त्रिविधूमैत्तान ।
अत्.. ॥ ५६ ॥

ओं ह्रीं नागोद्भवनागमणिदिव्येभ्यः इदं .... ।

त्रिभुवनेनागमनोपरिभूतिषोडशन, श्रीनागनाशिरिभूषान त्रिविधूमैत्तान ।
अत्.. ॥ ५७ ॥

ओं ह्रीं श्रीनागमणिनागदिव्येभ्यः इदं............ ।

संख्यातिगावुनिमिनीरभूनि श्रीकृत्वन् शाश्वतिकाशिरिभूषान् त्रिविधूमैत्तान ।
अत्.. ॥ ५८ ॥

ओं ह्रीं संख्यातीतमुद्रिकेभ्यः इदं .. .. ।

" ओं ह्रीं मौक्तिकहारि " इत्यादिसे चौथे पद्यपर जलादि अष्ट द्रव्य चढ़ावे ॥ ५५ ॥
" त्रिभुवनेश " इत्यादि श्लोक पढ़कर " ओं ह्रीं नागोद्भव " इत्यादिसे पांचवें पद्यपर जलादि
अष्ट द्रव्य चढ़ावे ॥ ५६ ॥ " त्रिभुवनेश " इत्यादि श्लोक पढ़कर " ओं ह्रीं श्रीनागमणि "
इत्यादिसे छठे पद्य पर जलादि अष्टद्रव्य चढ़ावे ॥ ५७ ॥ " संख्यातिगा " इत्यादि श्लोक
पढ़कर " ओं ह्रीं संख्या " इत्यादिसे सातवें पद्यपर जलादि अष्टद्रव्य चढ़ावे ॥ ५८ ॥

लोकप्रसिद्धपुरतीर्थजलार्द्धिं भोक्ष्यन् कोकेष्टतीर्थमरुतो विधिपूर्वमेतान् ।
अत्र्... ॥ ४९ ॥

ओं ह्रीं लोकाभिमततीर्थदेवेभ्य इदं..............स्वाहा ।

एवं जलदेवताः प्रसाद्य तत्पूजां जलाशयमध्ये प्रविश्य मंत्रमिमं पठित्वा प्लावयेत् ।

ॐ " एतां भोक्त्र्योंबुभारानुरुहृदसरितां श्र्यादिगंगादिदेव्यस्तीर्थानां मामधाद्या इम उदाधिसुरास्तोयधीनाममेमी । अन्येषां चार्पितार्घा निजनिजसलिलश्रीविलासैर्जिनेंदोर्भक्तिप्रह्वाः प्रतिष्ठाभिषवमहकृते सारयंत्वेतदर्णः " ॥ ५० ॥

इति पूजाप्लावनमंत्रः । ततः शक्रास्तज्जलेन कलशान् पूरं पूरं तीरे प्रस्तीर्य चंदनस्त्रदूर्वादर्भादिभिरभ्यर्च्य तन्मुखेषु श्र्यादिमंत्रपूतं पल्लवफलं विन्यस्य कृतकलशोद्धारमंत्रोपहारोपस्कारानेतानेकशः स्वयमुद्धृत्योद्धृत्य तत्क्षणसंमानितपुरंध्रीपाणिपद्मेषु समर्प्य शेषकलशान्निजकरकमलैरुद्वहंतो

" लोकप्रसिद्ध " इत्यादि श्लोक पढकर " ओं ह्रीं लोकाभिमत " इत्यादि कहकर आठवें पत्रपर स्थित देवताकी जलादि अष्ट द्रव्यसे पूजा करे ॥ ४९ ॥ इसप्रकार जलदेवताओंको पूजासे प्रसन्न करके जलाशयमें घुसकर इस आगेके " ओं एतां " इत्यादि श्लोकमंत्रसे उस लिखित कमलपत्रका विसर्जन कर दे (छोड़ दे) ॥ ५० ॥ उसके बाद वे इंद्र उस

प्र० भा० गन्धपुष्पाक्षतादिभिः सम्पूज्य ... । ॐ श्रीं ह्रीं धृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यादि-

॥२४॥ युक्ताः अवतीर्णाः जिनेन्द्रमहाभिषेककलशेषु निवसन्तु स्वाहा । इति

श्र्यादिमंत्रः ।

ॐ "क्षीराब्धि सर्वतीर्थोदकमधुरजलपूर्णान् ... श्रीः पद्माकरस्य ...

... । सानंदं श्र्यादिदेवीनिवासार्थं ...

... भगवदभिषेकविधानाय ... ॥ ५१ ॥

इति कलशोद्धारमंत्रः । ... इति तीर्थोदकाह्वान-

विधानम् । अथ जिनगर्भादिविधानाभिषेकः—

कलशे जलसे भरकर स्थापित करके फिर उनको ... पुष्पमाला-पुष्प-... प्रदान कर-

के फिर उनके ऊपर 'श्री आदि' मंत्रसे परिचित करना । ... कलशोद्धार मंत्रसे

पूजित कर एक एकको उठावे । फिर ... सौभाग्यवती स्त्रियोंके ... हाथों

और बचे हुए कलशोंको ... भगवानके ... स्तुति-

के साथ चैत्यालय (जिनमंदिर) में लावें । " ॐ श्रीं " इत्यादि श्री आदि मंत्र है । ॥२१॥

" ॐ क्षीराब्धि " इत्यादि कलशोद्धारमंत्रश्लोक है ॥ ५१ ॥ ऐसा पढ़कर पुनः ...

इंद्रश्चैत्यालयं गत्वा वीक्ष्य यज्ञांगसज्जनान्। यागमंडलपूजार्थं परिकर्माचरेदिदम् ॥ ५२ ॥
स्नानानुस्नानभागात्तधौतवस्त्रो रहः स्थितः। कृतेर्यापथसंशुद्धिः पर्यंकस्थोऽमृतोक्षितः॥५३॥
दहनप्लावने कृत्वा दिव्यस्वांगेषु दिक्षु च। न्यस्य पंचनमस्कारान् प्रयुक्तगुरुमुद्रकः ॥ ५४ ॥
व्युत्सृज्यांगं पूरकेण व्याप्ताशेषजगत्त्रयम्। शुद्धस्फटिकसंकाशं प्रातिहार्यादिभूषितम् ॥ ५५ ॥
पादाधोनं नमद्विश्वं स्फूर्जंतं ज्ञानतेजसा। परमात्मानमात्मानं ध्यायन् जप्त्वापराजितम्॥५६॥

क्षेपण कर कलशोंको उठाना चाहिये ॥ इस प्रकार जलयात्राविधान वर्णन किया ॥ अब जिनयज्ञादि विधियोंको कहते हैं—प्रतिष्ठाचार्य इंद्र चैत्यालयमें जाकर पूजा सामग्री और श्रावकोंको देखकर यागमंडलकी पूजा करनेके लिये इस कहे जानेवाले अंगसंस्कारको करे ॥ ५२ ॥ पहले तो जलसे स्नान करे; उसके बाद मंत्रस्नान करे; पुनः धुले हुए धोती दुपट्टे पहरे। उसके बाद एकांतमें स्थित होकर ईर्यापथशुद्धि करके पद्मासन लगाकर अमृतमंत्रसे मंत्रित जलको अपने ऊपर छिड़के ॥ ५३ ॥ आगे कहे जानेवाली दहन प्लावन क्रियाओंको करके अपने अंगोंमें और दिशाओंमें पंच नमस्कारका न्यास करके पंचगुरुमुद्राको धारण करे ॥ ५४ ॥ पूरकवायुसे कायोत्सर्ग करके परमात्माके समान अपना ध्यान करे और नमस्कार मंत्रको जपे। इसप्रकार परिणामोंकी शुद्धिसे पापोंका नाश कर पुण्यात्मा हुआ

---

१ एते श्लोकाः वसुनंदिसैद्धांतिकाचार्यविरचितप्रतिष्ठासारसंग्रहेपि संति इति तद्रीतिमनुसृत्यात्रापि उद्धृता इति प्रतीयते।

परिणामविशुद्धयास्तात्मीयः पुनर्पुनर्भाक् । स्वस्थानान्तः क्षोणिनिपद्माद्विशिखिन् ५७
श्रं वं स्वरान्तं गोपयंदन्द्रशोभितम् । नीचे गम्याग्रवंन्या नैनानुन्नांनमानेतु ॥ ५८ ॥
श्रीचंद्रपुटीमयं पंचरत्नांशुनानवेम् । नांनमानाननिजोर्णं पठतं तन्मंडलम् ॥ ५९ ॥
पृथग्विद्वेकनाम्नांनमुक्तोरहार्सं नवेशन । शाशान् गाथां नरिक्रम्य निरपायोनपोनन: ॥६०॥
गुणमुद्राग्रपु श्रं वं झः पोठो न्योमुनीः नाहे । ननाड़िःविरमणानं नां ध्यात्वा पंचपिंडं रचेत् ॥६१॥

गियोंको दूर कर जिनेन्द्रकी पूजादि क्रियाओंको करे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५७ ॥ अब अनुष्ठाना-
दि क्रियाओंको कहते हैं—श्रं वं इन दो अक्षरोंको अष्टदलमें लिखकर उसको अपने हाथ
फिर मंत्री अंगुलीसे जल लेकर अपने ऊपर डाले—यह मंत्रस्नान है ॥ ५८ ॥ जो अर्ध-
चंद्रपुटी स्वरूप हो जिसका मुख पांचरत्नमय मंडल हो जिसके, दिशाओंमें कोने ॥ ५९ ॥
इन दो अक्षरोंसे ध्यान हो और रोमांचमें हो, यह जलमंडल है ॥ ५९ ॥ एक उच्छ्वाससे तीन
बार इस तरह तीन उच्छ्वासोंमें नौवार मंत्रको जपकर "श्रींपयं" इत्यादि श्लोक पढ़े ॥ ६० ॥
यह ईर्यापथशोधन किया है। गुणमुद्राके ध्यानमयी मुद्रासे "श्रं वं झः पो ठः—इस अमृत मंत्र-
रूपसे अपनेको सींचा हुआ मानकर ध्यान करे। फिर इस " ओं ह्रीं प्रभुने " इत्यादि मंत्रको
पढता हुआ जलको शरीरपर छोडे ॥ ६१ ॥ यह अनुष्ठान है ॥ त्रिकाल सर्वके कालोंमें ॥ ३५ ॥

१ मंत्रस्नानम् । २ स्नानोत्तीर्णस्य ।

ॐ ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय सं सं क्लीं २ ब्लूं २ द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय २ सं हं झ्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा । इति अमृतस्नानम् ।

स्वस्तिकाग्रत्रिकोणांतर्गतरेफशिखावृतम् । अग्निमंडलमोंकारगर्भं रक्ताभमास्थितम् ॥ ६२ ॥
सप्तधातुमयं देहं दहेद्रेफार्चिषां चयैः । सर्वांगदेशगैर्विश्वग्धूयमानैर्नभस्वता ॥ ६३ ॥
नाभिस्थसस्वरद्व्यष्टपत्राब्जांतरर्हं रतः । दहेच्छिखौघैरुग्रद्धिरष्टकर्ममयं वपुः ॥ ६४ ॥
वृत्तात्सविंदोर्दिक्कोणस्वायाद्वोमूत्रिकाकृतेः । कृष्णाद्वायुपुराद्वातैः प्रापद्भिः प्रेर्य भस्म तत् ॥ ६५ ॥
व्योमव्यापिघनासारैः स्वमाप्लाव्यामृतस्रुतम् । खेहं ध्यायन् सृजेद्देहममृतैरन्यमिंदुवत् ॥ ६६ ॥

साथिया बनावे। उस यंत्रके अंदर रेफशिखासे वेष्टित ओंकारसहित लालवर्णवाले अग्निमंडलका चिंतन करे। फिर सात धातुमई देहको रेफकी ज्वालासे भस्म करे। नाभिमें स्थित सोलह कमलपत्रोंके मध्यमें स्थित अर्हंके रेफकी शिखासे अष्टकर्ममयी शरीरको भस्म करे। यह दहनक्रिया है ॥ ६२ । ६३ । ६४ ॥ फिर गोलाकार बिंदुसहित वायुमंडलसे उस भस्मको दूर करे। उसके बाद "खे हं" इन दो अक्षररूपी अमृतजलसे अपनेको शुद्ध करके कायोत्सर्ग करे ॥ ६५ । ६६ ॥ यह प्लावनक्रिया है। अब अंगन्यासक्रिया कहते हैं—दोनों हाथोंकी कनिष्ठा आदि अंगुलियोंमे 'ओं ह्रां' आदि नम-

१ दहनम्। २ प्लावनं।

हस्तद्वये कनीयस्या द्यंगुष्ठीनां यथाक्रमम्। मूर्तें [illegible] च पुनरङ्गुलीः॥६७॥
न्यस्येच्छिखापादशिरोपादपादन्यसकाप्यन करौ शिरः। संपुटपाणियुग्मेन द्विम्यान् न्यासांश्च निस्येन्॥

ॐ ह्रां णमो अरहंताणं स्वाहा हृदये १ ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं स्वाहा ललाटे २ ॐ ह्रूं णमो
आइरियाणं स्वाहा शिरसि दक्षिणे ३ ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं स्वाहा पश्चिमे ४ ॐ ह्रः णमो लोए सव्व-
साहूणं स्वाहा वामे ५ पुनस्तेनैव मंत्रेण शिरःप्रभृति शिरसि दक्षिणे पश्चिमे उत्तरे च [illegible]॥
तथा वामप्रदेशिन्यां न्यस्य पंचनमस्कृतीः। पूर्वादिदिक्षु रक्षार्थं दशस्वपि निवेशयेत् ॥६९॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रौं ह्रौं ह्रं ह्रः [illegible] इत्यादि रक्षांग।
अर्पितोऽनेन सकलीकरणेन महामनाः। क्रूराशिक्षाणि कर्माणि केनापि न विहन्यते ॥ ७० ॥

[illegible] मंत्रको स्थापन कर दोनों हाथोंको जोड़कर सीधा अंगुलीमें "ॐ ह्रां" इत्यादि बोलकर हृदय आदि स्थानोंमें न्यास करे। यह अंगन्यास है ॥ ६७। ६८ ॥ अब दिग्बंधन- किया कहते हैं—उसके बाद बायें हाथकी तर्जनी अंगुलीमें पंचनमस्कार मंत्रका न्यास (स्थापन) कर रक्षाके लिये पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमसे दशों अंगुलियोंसे "ह्रां" आदि दशों अक्षरोंका न्यास करे ॥ ६९ ॥ इस सकलीकरणकी [illegible] बाहर हुए जो मंत्रवाला

1 "धां" आदि [illegible] अथवा "ह्रां" आदि [illegible] बीजके [illegible] स्थानमें [illegible] है। [illegible]
दिशाबंधो विधिः। [illegible] [illegible] [illegible]।

ॐ नमोऽर्हते सर्वं रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा। अनेन पुष्पाक्षतं सप्तवारान् प्रजप्य परिचारकाणां शीर्षेषु प्रक्षिपेत् ॥ इति परिचारकरक्षा। ओं हूं क्षूं फट् किरिटि २ घातय २ परविघ्नान् स्फोटय स्फोटय सहस्रखंडान् कुरु २ परमुद्रां छिंद २ परमंत्रान् भिंद २ क्षः क्षः हूं फट् स्वाहा। अनेन श्वेतसिद्धार्थानभिमंत्र्य सर्वविघ्नोपशमनार्थं सर्वदिक्षु क्षिपेत् ॥ इति सकलीकरणविधानम्। इतो जिनयज्ञादिविधानं।

व्योमापगाद्युत्तमतीर्थवारां धारा वरांभोजपरागसारा।
तीर्थंकराणामियमंघ्रिपीठे स्वैरं लुठित्वा त्रिजगत् पुनातु ॥ ७१ ॥

इष्ट कर्मोंको करता है, उसके कोइ विघ्न नहीं आता ॥ ७० ॥ "ओं नमो" इत्यादिसे पुष्पअक्षतोंको सात वार पढकर पूजाके सहायकोंके ऊपर क्षेपण करनेसे उनको कोई भी विघ्न नहीं होताहै। इस प्रकार परिचारकोंकी रक्षा वर्णनकी। "ओं हूं" इत्यादि मंत्रसे सफेद सरसोंको

---

१ इतः पूर्वं प्रतिष्ठासाराक्तपाठः क्षिप्यते–णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥ चत्तारि मंगलं अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहुमंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥ २ ॥ चत्तारि लोगोत्तमा अरहंतलोगोत्तमा सिद्धलोगोत्तमा साहुलोगोत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ॥३॥ चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरहंतसरणं पव्वज्जामि सिद्धसरणं पव्वज्जामि साहुसरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ॥ ४ ॥ ओं नमो अर्हते स्वाहा। अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा। ध्यायेत् पंच

ॐ ह्रीं अर्हं श्री... जलं निर्वपामीति स्वाहा । [illegible]

काश्मीरकृष्णागुरुगंधसारकर्पूरपंकान्वितचंदनेन ।
निर्मासीरप्रगुणोत्तमानां मंगलाङ्ग्यांजिनुर्ग जिनानाम् ॥ ७२ ॥
ॐ ह्रीं....
गंधं निर्व० ।

मंत्रित कर सब दिशाओंमें फेंके॥ इसप्रकार सकलीकरण विधि समाप्त हुई। अब जिनपूजादि विधान करते हैं—प्रतिष्ठामण्डपमें "णमो अरिहंताणं" इत्यादि दिशाओंमें क्षेपते हुए पुष्पांजलि पढ़े उसके बाद जलादि चढानेके श्लोक बोले॥ "श्रीमत्" इत्यादि श्लोक पढ़कर "ॐ ह्रीं" बोलकर जलधारा चढावे ॥ ७१ ॥ "काश्मीर" और "ॐ ह्रीं" बोलकर चंदन चढावे

[illegible] ॥ ६ ॥ [illegible] ॥ ७ ॥ [illegible] ॥ ८ ॥ [illegible] ॥ ९ ॥ [illegible] ॥ १० ॥ [illegible] ॥ ११ ॥ [illegible]

आमोदमाधुर्यनिधानकुंदसौंदर्यशुंभत्कलमाक्षतानाम् ।
पुंजैः समक्षैरिव पुण्यपुंजैर्विभूषयाम्यग्रभुवं विभूनाम् ॥ ७३ ॥

ओं ह्रीं.... अक्षतं निर्व० ।

सुजातजातीकुमुदाब्जकुंदमंदारमल्लीवकुलादिपुष्पैः ।
मत्तालिमालामुखरैर्जिनेंद्रपादारविंदद्वयमर्चयामि ॥ ७४ ॥

ओं ह्रीं.... पुष्पं निर्व० ।

नानारसव्यंजनदुग्धसर्पिपकान्नशाल्यन्नदधीक्षुभक्ष्म् ।
यथार्हहेमादिसुभाजनस्थं जिनक्रमाग्रे चरुमर्पयामि ॥ ७५ ॥

॥ ७२ ॥ " आमोद " और " ओं ह्रीं " कहकर अक्षत चढावे ॥ ७३ ॥ " सुजात " और " ओं ह्रीं " पढकर पुष्प चढावे ॥ ७४ ॥ " नानारस " और " ओं ह्रीं " बोलकर नैवेद्य चढावे

यज्ञम् ॥ १२ ॥ (ओं विधियज्ञप्रतिज्ञानाय प्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥) चिद्रूपं विश्वरूपव्यतिकरितमनाद्यंतमानंदसांद्रं यत्प्राकैर्विवर्तैर्व्यगतदतिपतद्दुःखसौख्याभिमानैः । कर्मोद्रेकात्तदात्मप्रतिघमलभिदोद्भिन्ननिस्सीमतेजः प्रत्यासीदत्परौजः स्फुरदिह परमब्रह्म यक्षेर्हमाह्वम् ॥ १३ ॥ (ओं परमब्रह्मयज्ञप्रतिज्ञानाय प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।) स्वामिन् संवौषट् कृतावाह्नस्य द्विष्ठांतेनोट्टंकितस्थापनस्य । स्वं निर्नेंकुं ते वषट्कारजाग्रत्सांनिध्यस्य प्रारभेयाष्टधेष्टिम् ॥१४॥ ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरब्रह्म अत्रावतरावतर संवौषट् । अनेनावाहयेत् । ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरब्रह्म अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । अनेन तत्प्रतिष्ठापयेत् । ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरब्रह्म मम संनिहितं भव वषट् । अनेन तद्वत् संनिधापयेत् ॥)

ओं ह्रीं.... नैवेद्यं नि० ।

ओं श्रोतानामदनां भूर्भुवः स्वर्गोकानेकीकृतां ज्ञानशाखा ।
दीपालैः प्रस्फुरत्कीर्तिजालैः पादाम्भोजद्वन्द्वमग्रे यजामि ॥ ७६ ॥

ओं ह्रीं... दीपं नि० ।

श्रीखण्डादिद्रव्यसंपन्नगर्भैः कृष्णागुरुप्रभवैर्दिव्यगन्धैः ।
धूपैः पापध्वान्तविध्वंसनैः सम्यग्भावेनाहं यजामि ॥ ७७ ॥

ओं ह्रीं.... धूपं नि० ।

फलौघेनाम्रादिजम्बीरजम्बूनारिङ्गपूगादिकपित्थपूर्णैः ।
कूष्माण्डमोचप्रमुखैः फलैस्तैः जिनपदयुग्मम् ॥ ७८ ॥

ओं ह्रीं.... फलं नि० ।

वार्गन्धाक्षतपुष्पसिद्धार्थदूर्वानैवेद्यदीपाद्यैरनेकैः ।
हैमे पात्रे प्रस्तुतं निजनाथान् मह्यानन्दाद्यमुद्धारयामि ॥ ७९ ॥

॥ ७५ ॥ " ओं श्रोताना " और " ओं ह्रीं " बोलकर दीप चढ़ावे ॥ ७६ ॥ " श्रीखण्डादि " और " ओं ह्रीं " बोलकर धूप चढ़ावे ॥ ७७ ॥ " फलौघेना " और " ओं ह्रीं " बोलकर फल चढ़ावे ॥ ७८ ॥ " वार्गन्धादि " और " ओं ह्रीं " बोलकर अर्घ चढ़ावे ॥ ७९ ॥ फिर

ओं ह्रीं... अर्घं निर्व० ।

वृषभो वृषलक्ष्मीवानजितो जितदुष्कृतः । शंभवः संभवत्कीर्तिः साभिनंदोभिनंदनः ॥ ८० ॥
सुमतिः सुमतिः पद्मप्रभः पद्मप्रभः प्रभुः । सुपार्श्वः पार्श्वरोचिष्णुश्चंद्रश्चंद्रप्रभः सताम् ॥ ८१ ॥
पुष्पदंतोस्तपुष्पेषुः शीतलः शीतलोदितः । श्रेयान् श्रेयस्विनां श्रेयान सुपूज्यः पूज्यपूजितः ८२
विमलो विमलोऽनन्तज्ञानशक्तिरनंतजित् । धर्मो धर्मोदयादित्यः शांतिः शांतिक्रियाग्रणीः ।८३।
कुंथुः कुंथ्वादिसदयः सुरप्रीतिररप्रभुः । मल्लिर्मल्लिजये मल्लः सुव्रतो मुनिसुव्रतः ॥ ८४ ॥
नमिर्नमत्सुरासारो नेमिर्नेमिस्तपोरथे । पार्श्वः पार्श्वस्फुरद्रोचिः सन्मतिः सन्मतिप्रियः ॥८५॥
एते तीर्थकृतोनंतैर्भूतसद्भाविभिः समम् । पुष्पांजलिप्रदानेन सत्कृताः संतु शांतये ॥ ८६ ॥

पुष्पांजलिः । इति जिनयज्ञविधानं । अथातः सिद्धभक्तिविधानम् ।

प्रक्षीणे मणिवन्मले स्वमहसि स्वार्थप्रकाशात्मके
निर्मग्ना निरुपाख्यमोघचिदमोक्षार्थितीर्थक्षिपः ।

" वृषभो " इत्यादि सात श्लोक पढकर आशीर्वादके लिये पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ ८० ॥ ॥ ८१ । ८२ । ८३ । ८४ । ८५ । ८६ ॥ इसप्रकार जिन (अर्हंत) पूजाविधान हुआ । अब सिद्ध भक्तिकी विधि कहते हैं—" प्रक्षीणे " इत्यादि श्लोक पढकर अर्हंतकी प्रतिमाके आगे

कृत्वाऽन्यापि जन्तुः सन्मयुतो मायागतं विमान ।
सद्रूपीनवगुणांतपनवः सिद्धान भनेत्तीन नः ॥ ८७ ॥

अनेनाद्वितीयविनाशे सिद्धानामर्थं कृत्वा ... स्तुति । ... । ... गुणस्थानानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं ... सिद्धपदियोग्यार्थं ... । ... दर्शनागमित्यादि ... पठित्वा ... सिद्धपरिमिता ... ।

यस्यानुग्रहतो दुराग्रहपरित्यक्तात्मरूपात्मनः
सद्द्रव्यं चिदचित्त्रिकालविषयं स्वैः स्वैरभीक्ष्णं गुणैः ।
सार्थं व्यञ्जनपर्ययैः समनयज्ञानानि बोधः स्वयं
तत्सम्यक्त्वमशेषकर्मभिदुरं सिद्धान परं नौमि नः ॥ ८८ ॥
यस्याभावनिवृत्तयोः सह पृथक् ... दर्शन-
मिदं ... नो ... न ।
यावन्नापि ... -
मामार्थं प्रणमामि नः ... ॥ ८९ ॥

सिद्धोंको अर्घ देवे ॥ ८७ ॥ उनके आठ अतिशयित स्तुति करे । वह इस प्रकार है—प्रथम तो

सत्तालोचनमात्रमित्यपि निराकारं मतं दर्शनं
साकारं च विशेषगोचरमिति ज्ञानं प्रवादीच्छया ।
ते नेत्रे क्रमवर्तिनी सरजसां प्रादेशिके सर्वतः
स्फूर्जंती युगपत्पुनर्विरजसां युष्माकमंगोतिगाः ॥ ९० ॥
शक्तिव्यक्तिविभक्तविश्वविविधाकारौघनिर्भारिता-
नंतानंतभवस्थमुक्तपुरुषोत्पादव्ययध्रौव्यव्ययात् ।
स्वं स्वं तत्त्वमसंकरव्यतिकरं कर्तृन् क्षणं प्रत्यथो
प्रोत्क्षणमन्वयतः स्मरामि परमाश्चर्यस्य वीर्यस्य वः ॥ ९१ ॥
यद्व्याहंति न जातु किंचिदपि न व्याहन्यते केनचि-
द्यान्निष्पीतसमस्तवस्त्वपि सदा केनापि न स्पृश्यते ।
यत सर्वज्ञसमक्षमप्यविषयं तस्यापि चार्थाद्गिरां
तद्वः सूक्ष्मतमं स्वतत्त्वमभि वा भाव्यं भवोच्छित्तये ॥ ९२ ॥
गत्वा लोकशिरस्य धर्मवशतश्चंद्रोपमे सन्मुख-
प्राग्भाराख्यशिलातलोपरि मनागूनैकगव्यूतिके ।

" अर्हत्प्रतिष्ठा " इत्यादि बोलकर " णमो अरहंताणं " इत्यादि दंडक पढकर " थोस्सामि "

गोगोज्ज्वांगद्दशो न भिन्दपि पिणां संसारमेकत्र न-
लब्ध्वानंतमिनोपि निह्य स नः पुन्वोन्नगाहो गुणः ॥ १३ ॥
सिद्धाश्रेद्धत्वो निराश्रनतया भगवत्पगःसिद्न-
चेश्यश्रेतुन्नो केतुल्लादिनश्रेनम्य गैदन नत्रु ।
सिध्यंते गतुगानवानगुत्रपैनेल्युक्ति गुन्नदूते-
नीतोपक्रमणीष्यते गुरुरुत्रुः शुद्धैः कृतं गो गुनः ॥ १४ ॥
गनापक्षयदैनिर्मेरुमनोद्गणैः नगाग थगो
गुणाभिर्निद्गो नगन्गन नद्गवाताप्ततेनद्धुनम् ।
येनोद्गेन्नगुणामृतार्णवनिरानेकाभिषेकोद्भव-
भिक्तायान् कलयाणि नः कलयितुं थाम्यंति योगीश्वराः ॥ १५ ॥
एतेनंतगुणाग्रुणाः स्तुत्यमयोत्सुन्याद्य दिशा भग-
वत्वा भानयितुं ननां नयवहुनिशापान्यवस्वाचितैः ।

इत्यादि स्तुति करकर प्रगे कहे आनेवाली स्तुतिको पढ़े जो कि "यस्यानुपमतां" इत्यादिसे लेकर १६ श्लोक तक जो श्लोकोंमें कही गई है ॥ ८८ ॥ ८९।९०।९१।९२।९३।९४।९५।९६ ॥ जो

एतद्भावनया निरंतरगलद्विकल्पजालस्य मे
स्तादत्यंतलयः सनातनचिदानंदात्मनि स्वात्मनि ॥ ९६ ॥
उत्कीर्णामिव वर्तितामिव हृदि न्यस्तामिवालोकय-
न्नेतां सिद्धगुणस्तुतिं पठति यः शश्वच्छिवाशाधरः ।
रूपातीतसमाधिसाधितवपुः पातः पतद्दुष्कृत-
व्रातः सोऽभ्युदयोपभुक्तसुकृतः सिद्धेत् तृतीये भवे ॥ ९७ ॥

इति सिद्धभक्तिविधानम् । अथातो महर्षिपर्युपासनविधानम् ।

वृषं वृषभसेनाद्याः सिंहसेनादयोऽजितम् । संभवं चारुषेणाद्या वज्रनाभिपुरस्सराः ॥ ९८ ॥
कपिध्वजं चामराद्याः सुमतिं पद्मलांछनम् । ये वज्रचमरमष्टाः सुपार्श्वं वलपूर्वकाः ॥ ९९ ॥
चंद्रप्रभं दत्तमुखाः पुष्पदंतं समाश्रिताः । विदर्भाद्याः शीतलेशमनगारपुरोगमाः ॥ १०० ॥
कुंथुप्रधानाः श्रेयांसं धर्माद्या द्वादशं जिनम् । विमलं मेरुपौरस्त्या जयार्याद्याश्चतुर्दशम् ॥ १०१ ॥
धर्मं त्वरिष्टसेनाद्याः शांतिं चक्रायुधादयः । स्वयंभूप्रमुखाः कुंथुं कुंभार्याद्यास्तवरप्रभम् ॥ १०२

कोई भव्य जीव इस सिद्धगुणस्तुतिको शुद्ध-मन-वचन कायसे करता है वह तीसरे भवमें अवश्य अनंत सुखका स्थान मोक्षको पा सकता है ॥ ९७ ॥ इस प्रकार सिद्धभक्तिकी विधि वर्णन की गई है । अब महर्षियोंकी पूजाविधि कहते हैं—" वृषं " इत्यादि श्लोकसे लेकर

कुंभत्कुम्भनिकाद्ये गुणिकणी भ्रातिसुमैश्रिभिर्
सच्छालापभितां गुणी नव सिद्धार्गीर्वाणमुखिने ।
एकद्रुपनद्राग्निगिपतगि चौदिनो नवेनो नव-
निकुंडीड पट्टे प्रभोगयापिवे दिव्यो रूपं पावनी ॥ १२१ ॥
मुक्ताशेखरपट्टयोनिगणकरैराकम्य नूल्लाञ्छितं
यामो जिनरागरूपण्यनिकरं मौलुं यथावत् इत्यणीः ।
स्फुर्तिवज्रकर्णपूरतनिलोचनेन्द्रगापथमे
मूर्द्धं नन्युद्धं जिनागंमजगदगंदयगापोन्दुरें ॥ १२२ ॥
मालं नमस्त्रजिनत्रनिशाजितार् गतंत्रनस्फुरितात्मोतनः ।
श्रैनगकं चरणचाक भजन् जिनेज्या समपान्नगोभ्यनक्रमितुनिपद्यः ॥१२३॥

कहकर माला पहरे । यह मालाधारणविधि है ॥ १२० ॥ “ कुंभत् ” इत्यादि पढ़-
कर ग्रैवेयकोंको पहरं । यह कण्ठधारण हुआ ॥ १२१ “ मुक्ताशेखर ” इत्यादि पढ़कर
मुकुट धारण करना चाहिये । यह मुकुटधारणविधि जानना ॥ १२२ ॥ “ मालंधनसूत्र ”
इत्यादि पढ़कर यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण करे । यह यज्ञोपवीतविधि हुई ॥ १२३ ॥

१ ग्रैवेयकाद्यपिनद्धः । २ शेखरादिविविधमुकुटोपशोभः । ३ ब्रह्मसूत्रसंस्कारविधिः ।

केपूरांगदकटकैर्दोलास्तंभौ जिनेन्द्रमखलक्ष्म्याः ।
सत्कृत्य भुजौ तद्रसमुन्मुद्रयितुं करेर्पये मुद्राम् ॥ १२४ ॥
छुरिकाछविविच्छुरितं रूपरुचि चुंबनोत्कदाममुखम् ।
सारसनं वद्धांघ्री सकनकमुद्रौ जिनाध्वरे दंधे ॥ १२५ ॥
इदममलिनसम्यग्दर्शनज्ञानदेशव्रतमयचरितात्माकर्मिकब्रह्मचर्यम् ।
स्फुरदरमुपवासेनाद्य रत्नत्रयं मे भवतु भगवदर्हद्यज्ञदीक्षाविशिष्टम् ॥१२६॥
नन्वनहद्युपवीतमर्जुनरुचिमव्यक्तरत्नत्रयं
ख्याताणुव्रतशक्तिपंचवसुमद्धी भूत्करे कंकणम् ।
मौंज्या श्रोणियुजा जिनक्रतुमिति ब्रह्मव्रतं द्योतयन्
यज्ञेस्मिन् खलु दीक्षितोहमधुना मान्योस्मि शक्रैरपि ॥ १२७ ॥

" केयूरांगद " इत्यादि श्लोक पढकर बाजू अंगूठी कडे पहरने चाहिये। यह कडे अंगूठी आदि पहरनेका विधान जानना ॥ १२४ ॥ " छुरिका " इत्यादि श्लोक पढकर करधनी व चरणमुद्रिका पहरे। यह कटिसूत्रादिविधि हुई ॥ १२५ ॥ " इदममलिन " इत्यादि श्लोक पढकर अर्हत्पूजाकी दीक्षाको स्वीकार करे ॥ १२६ ॥ " नन्वनह्य " इत्यादि श्लोक बोलकर

१ केयूरादियुक्तमुद्रिकास्वीकारः। २ कटिसूत्रादिसमेतचरणोर्मिकाधारणं। ३ अर्हद्देवयज्ञदीक्षांगीकारः। ४ दीक्षा चिह्नोद्वहनं।

ओं यज्ञाग्नितये भ्रां ह्रां भ्रः दें नौ क्ष: ह्रं सं सः हंसः संवौषट् । अनेनैर्विधिना स्थानमभिनिवासयेत् ॥ इति यज्ञश्रीभाग्निवासनम् । ओं परमब्रह्मणे नमो नमः स्वस्ति स्वस्ति जीव जीव नंद नंद वर्द्धस्व वर्द्धस्व विजयस्व विजयस्व अनुशाधि अनुशाधि पुनीहि पुनीहि पुण्याहं पुण्याहं मांगल्यं मांगल्यं । पुष्पांजलिः ।

क्षेत्रपालाय यज्ञेस्मिन्नेतत्क्षेत्राधिरक्षिणे । बलिं दिशामि दिश्यग्नेर्वेद्यां विघ्नविघातिने ॥१२८॥

ओं ह्रीं क्रों अत्रस्थक्षेत्रपालाय इदं..................स्वाहा ।

उत्खातभूरिकण्टकीकृतनतकृतार्थां पुण्यात्तमीर भगवन्मखमण्डपोर्व्याम् ।
वास्तर्वेनानिदिशिविकल्पपरानिभागं देवा वजाधि नातिभूरिति वास्तुदेवम्॥१२९॥

पुष्पांजलिः ।

श्रीवास्तुदेववास्तुनामपिशाकुनयानिनाम् । कृत्वानुग्रहं करस्य मान्यो नाम्नीति मान्यतां॥१३०॥

दीक्षाके चिह्न मौंजीबंधन ब्रह्मचर्यादिको धारण करे ॥ १२७ ॥ " ओं परमाधिपतये........वौषट् " इसको बोलकर इक्कीस बार अपनेको मंत्रित करे ॥ इस प्रकार यज्ञदीक्षाविधि जानना । अब मंडपकी प्रतिष्ठाविधि कहते हैं । " ओं परम " इत्यादि कहकर पुष्पोंको क्षेपण करे । " क्षेत्रपालाय " इत्यादि कहकर " ओं ह्रीं " इत्यादि पढ़कर क्षेत्रपालको बल्यादि चढ़ावें ॥ १२८ ॥ " उत्खात " इत्यादि श्लोक पढ़कर पुष्पांजलि दे ॥ १२९ ॥ " श्रीवास्तु "

ओं ह्रीं क्रौं वास्तुदेवाय इदमित्यादि···············स्वाहा ।

आयात भो वातकुमारदेवाः प्रभोर्विहारावसराप्तसेवाः ।
यज्ञांशमभ्येत सुगंधिशीतमृद्धात्मना शोधयताध्वरोर्वीम् ॥ १३१ ॥

ओं ह्रीं वायुकुमाराय सर्वविघ्नविनाशनाय महीं पूतां कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा। दर्भपूलेन भूमिं संमार्जयेत् ।

आयात भो मेघकुमारदेवाः प्रभोर्विहारावसराप्तसेवाः ।
गृह्णीत यज्ञांशमुदीर्णशंपा गंधोदकैः प्रोक्षत यज्ञभूमिम् ॥ १३२ ॥

ओं ह्रीं मेघकुमाराय धरां प्रक्षालय प्रक्षालय अं हं सं वं झं यः क्षः फट् स्वाहा । दर्भपूलोपात्तजलेन भूमिं सिंचेत् ।

आयात भो वह्निकुमारदेवा आधानविध्यादिविधेयसेवाः ।
भजध्वमिज्यांशमिमां मखोर्वीं ज्वालाकलापेन परं पुनीत॥ १३३ ॥

इत्यादि श्लोक तथा "ओं ह्रीं" बोलकर वास्तुदेवको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥१३०॥ "आयात भोः" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वायुकुमारको जलादि चढावे । दर्भकी बुहारीसे भूमिको शुद्ध करे ॥ १३१ ॥ "आयात भो" इत्यादि और 'ओं ह्रीं' इत्यादि कहकर मेघकुमारको बुलावे; फिर दर्भके पूलेसे जल लेकर छिडके ॥ १३२ ॥ "आयातभोः वह्नि"

ओं रं अग्निकुमाराय भूमिं ज्वलय २ अ ई ओं [illegible] स्वाहा। अग्निकुमारेण भूमिं ज्वलयेत्। प्रागैशान्यां ... मेघकुमारस्थापनं।

उत्थाय भो नागकुमारनागाः स्थानादमुष्मात्कुरुतोपकाराः।
मदम्बुनासेन जिनार्चनायां मेघान्मुधापाभमृतापमेन ॥ १३४ ॥

ओं ह्रीं क्रौं नागकुमारमेघकुमारेभ्यो नमः स्वाहा। नागकुमारैर्जलं सिंचेत्।

अतरुण्याने पवमानः कलुधि कृष्णकुमारो पर्णितस्य दर्भा-
सनस्थाइन्द्रयाणं मानवहस्तः सम्पादितस्य तथा।
नागेन्द्रस्यापुनर्नारति नखकमलसत्पुष्पकुसुमोपमान्
दर्भान् येषां न्यसामि न्यनितुमिह जिनाधामनाने क्षोण ॥ १३५ ॥

दर्भन्यासविधानम्। "आभिः पुण्याभिरद्भिरिभिरयोभि भूमिं"। भूमिशुद्धिः।

और "ओं रं" इत्यादि पढ़कर अग्निकुमारका आह्वानन करे। फिर उनके द्वारा हवाके द्वारा आगसे भूमिको तपावे॥ पूर्व तथा ईशानदिशामें नागकुमार आदिका स्थापन करे॥ १३३॥ "उत्थाय" इत्यादि "ओं ह्रीं" इत्यादि पढ़कर नागकुमारको संतुष्ट करे। नागकुमारके पुन करनेके लिये ईशानदिशामें जलको क्षेपण करे॥ १३४॥ "अतरुण्याने" इत्यादि पढ़कर दर्भको स्थापन करे॥ १३५॥ "आभिः पुण्याभिः" इत्यादि पढ़कर मंडपके भीतर चारों तरफ

साष्टारत्निशतेंद्रिवेदिरुचिरं शक्रः कुवेरेण यं
ज्यायांसं मणिमंडपं विरचयत्यर्हत्प्रतिष्ठाकृते ।
अंतर्निर्मितदिविलक्ष्मीकटाक्षोद्भटः
सोयं मंगलमंडपो विजयते जैनेंद्रतिष्ठोत्सवे ॥ १३६ ॥

मंडपांतः समंतात् कुंकुमाक्तपुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

पुण्या एतेन भूपा प्रवचनपठितस्तंभयज्ञांगपात्र
द्वार्भावद्रव्यबीजध्वजकलशदलत्स्राग्वितानादिभावाः ।
स्तोत्राशीर्गीतवाद्यध्वनिनिचितदिशो भक्तिकौघास्तथैते
त्रिःसूत्रैः पंचवर्णैर्बहिरहमवसूत्र्यैनमर्घेण युंजे ॥ १३७ ॥

भूषणादिवस्तुषु पृथक् पुष्पाक्षतं प्रक्षिप्य बहिः पंचवर्णसूत्रेण त्रीन् वारान् वेष्टयित्वा अर्घं दद्यात् ।
कुंकूसे (केशरसे) मिले हुए पुष्प–अक्षतका क्षेपण करे ॥ १३६ ॥ " पुण्या एतेन " इत्यादि
पढकर आभूषण आदि वस्तुओंमें पुष्प अक्षत क्षेपण करके बाहर पांच रंगके डोरेको तिहरा
लपेटकर अर्घ दे ॥ १३७ ॥ " मंडपस्यास्य " इत्यादि बोलकर तोरणके पास दाहिनी तरफ

१ " इंद्रवेद्यपि हस्तानां विज्ञेयाष्टोत्तरं शतम् । शतेंद्रो जिनबिंबानां प्रतिष्ठां कुरुते स्वयम् " ॥ तथाहि–द्वादशारत्निविस्तारं पंचाधिकदशप्रमं । अष्टादशकरायामं सैकविंशतिहस्तकम् । चतुर्विंशतिहस्तं वा दृढसूत्रेण सूत्रयेत् ॥

पंचपल्लवस्य [illegible] कुसुमैर्निननामनात । पुष्पदंतं न [illegible] ॥ १३८॥
[illegible]

मुक्तामालि[illegible] [illegible] गुणैः [illegible]—
[illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] पूजयेत [illegible] ॥ १३९ ॥

ॐ ह्रीं कुसुमलताय [illegible] ह्रं ह्रं ह्रं [illegible] इत्यादि स्वाहा ।

मुक्ता … …. …. …. …. …. ।

[illegible] [illegible] [illegible] ॥ १४० ॥

ॐ ह्रीं अंजनप्रभाय …. …. …. स्वाहा ।

मुक्ता…………………………………………… ।

[illegible] [illegible] [illegible] ॥ १४१ ॥

कुंकुमसे मिले हुए पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ १३८ ॥ " मुक्ता " इत्यादि " ॐ ह्रीं " इत्यादिसे कुसुमलताहारको [illegible] ॥ १३९ ॥ " मुक्ता आदि त्वं " इत्यादि बोलकर तथा " ॐ ह्रीं " पढ़कर अंजनप्रभाको [illegible] करे ॥ १४० ॥ " मुक्ता-मल्य-

ओं ह्रीं वामनप्रतीहार...................................स्वाहा ।

मुक्ता.. ।

स्रक्पुष्पोज्ज्वलपुष्पदंत वलिना तृप्योत्तरद्वाः स्थितः ॥ १४२ ॥

ओं ह्रीं पुष्पदंतप्रतीहार...................................स्वाहा ।

इति मंडलप्रतिष्ठाविधानं । अथातो वेदिप्रतिष्ठाविधानं ।

आदेशावहितान्यवासवपरीवारो विनिर्माप्य यां

दृक्शुद्धिप्रतिवृद्धये प्रयजते सौधर्मपोऽर्हत्मभुम् ।

सोयं वेदिमताल्लिकापरिकरश्चंद्रोपकाद्योप्ययं

सोत्र स्फूर्जति मंगलादिवदिमे ते भांति भांडोचयाः ॥ १४३ ॥

वेद्यां चंद्रोपकादिषु च कुंकुमाक्तं पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

प्रोक्ष्य प्रोक्षणमंत्रपूतपयसा वेदीं वरार्घैः समा

ग्द्वार" इत्यादि और "ओं ह्रीं" इत्यादि बोलकर वामनद्वारपालको प्रसन्न करे ॥१४१॥ "मुक्ता—स्रक पुष्प" इत्यादि "ओंह्रीं" इत्यादि बोलकर पुष्पदंत द्वारपालको अनुकूल करे ॥१४२॥ इस प्रकार मंडलप्रतिष्ठाकी विधि पूर्ण हुई । अब वेदीप्रतिष्ठाकी विधि कहते हैं । "आदेशा" इत्यादि बोलकर वेदीके चंदोए आदिमें कुंकुंसे रंगे हुए पुष्प अक्षत क्षेपै ॥ १४३ ॥

कल्याणवर्णं कनकादिविरचं नीराजनान्तोत्तमे ।
छायाच्छोद्गतसेनायै कनकस्यां परिपागेन।
संपूर्णानलनाटनाथे कनकानस्था पाडेन्द्र च ॥ १२४ ॥
ॐ ह्रां नमः ह्रीं ह्रीं: । इति वेदिस्थापनं । अथ नागमण्डलविधानं ।
नागेंद्रागमने हरिन्मतपत्रं भालानिलानिल।
मुक्ता पन्न भवनीवर्णनिचयैः श्रीवेंद्रचेत्यादिन ।
वेद्यां क्षितिन्तुपुष्पाद्युत्कटानुभवे चतुष्पंतु–
ष्कोणं नागनाग पंचवर्णैः नवाग्निर्वेद्राधिपु ॥ १२५ ॥
ॐ ह्रीं श्रीं नागेंद्रादिनागकृत्यमण्डलपूर्वं स्थापयामि स्वाहा । चूर्णस्थापनमंत्रः ।
चंद्राभचंद्राभविमानमध्यपूर्णसमाना रत्नाकरान् ।
रत्नानुरक्तानुनर्त्तनपूर्णसिद्धी विन्यासस्य निवेद्यपदे ॥ १२६ ॥
ॐ ह्रीं नागराजाधिपतये स्वाहा । चन्द्रचूर्णस्थापनं ।

" मोक्ष " इत्यादि कहकर वेदीपर जल छिड़के ॥ १२४ ॥ यह वेदीस्थापनाकी विधि हुई । इस प्रकार वेदीका स्थापन जानना । अब नागमंडलकी विधि कहते हैं । " नागेंद्र " इत्यादि " ओं ह्रीं " कहकर पांचों रंगका चूर्ण स्थापन करे ॥ १२५ ॥ " चंद्राभ " इत्यादि " ओं ह्रीं " इत्यादि बोलकर नागराजकेलिये मंडल चूर्ण स्थापन करे ॥ १२६ ॥ " हेमाभ " इत्यादि

हेमाभ हेमाभविलेपनस्रग्विमानभूपांशुकयक्षराज ।
हस्तार्पिता रत्नसुवर्णचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेन्द्रयज्ञे ॥ १४७ ॥

ओं ह्रीं हेमप्रभाय धनदाय ठ ठ स्वाहा । पीतचूर्णस्थापनम् ।

हरित्प्रभामर्त्त हरित्प्रभस्रग्वासोविमानाभरणांगराग ।
करात्तगारुत्मतरत्नचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेंद्रयज्ञे ॥ १४८ ॥

ओं ह्रीं हरित्प्रभाय शत्रुमथनाय स्वाहा । हरितचूर्णस्थापनम् ।

रक्तप्रभामर्त्य जपाभभूपास्रग्वर्णकालंकरणाभ्रमाय ।
कराब्जराज कुरुविंदचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेंद्रयज्ञे ॥ १४९ ॥

ओं ह्रीं रक्तप्रभाय सर्ववशंकराय वषट् वौषट् स्वाहा । अरुणचूर्णस्थापनं ।

भृंगाभवृंदारककृष्णवस्त्रविलेपनाकल्पविमानदामन् ।
पाणिप्रणीतासितरत्नचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेंद्रयज्ञे ॥ १५० ॥

ओं ह्रीं कृष्णप्रभाय मम शत्रुविनाशनाय फट् २ घे घे स्वाहा । कृष्णचूर्णस्थापनम् ।

" ओं ह्रीं " इत्यादि बोलकर कुबेरके वास्ते पीले चूर्णको चढावे ॥ १४७ ॥ " हरित्प्रभा " " ओं ह्रीं " इत्यादिसे हरित्प्रभदेवको हरा चूर्ण चढावे ॥ १४८ ॥ " रक्तप्रभा " " ओं ह्रीं " बोलकर रक्तप्रभदेवको लाल चूर्णका स्थापन करे ॥ १४९ ॥ " भृंगाभ " " ओं ह्रीं " इत्यादि कहकर कृष्णप्रभदेवको शत्रुनाशनकेलिये काले चूर्णका स्थापन करे ॥ १५० ॥ " शची "

नत्वीक्ष्याशेषु शरव्यमग्रं त्र्यप्रेण्य [illegible]
करस्फुरत्स्वरतोमरेण कोणेषु तनूणि [illegible] ॥ १५१ ॥

[illegible] । [illegible] । [illegible] ।

इत्यागमनिष्ठ्यपोहनिविधः सम्यग्विजनैस्तादिभिः
कानिस्मानांशुद्धिमाप्य विविधैः गोत्रमंथार्द्धे भजन् ।
कृत्वा मंगलपूजनं जिनगुणे [illegible]
सोत्राम्त्र न योद्धे गुणनिधिः स्तुत्यः जिनाशाधरैः ॥ १५२ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि [illegible] द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इत्यादि बोलकर दिशाओंके कोनोंमें तीर [illegible] स्थापन करे ॥ १५१ ॥ इस तरह [illegible] विधान कहा है। इस प्रकार गुरुआम्नायसे सब जानकर [illegible] निर्णय कर [illegible] मौधर्म समझना हुआ जो प्रतिष्ठाचार्य [illegible] पूजन आदिक [illegible] प्रतिष्ठाविधिका सब जगत् प्रचार करता है वह पुण्यका खजाना प्रतिष्ठाचार्य दोनों लोकोंमें सुख पाता है और मोक्षके जानेवाले गणधर अथवा मुझ आशाधरसे पूजित होता है ॥ १५२ ॥

इस प्रकार पं० आशाधरविरचित प्रतिष्ठासारोद्धारमें [illegible] आदिको कहनेवाला दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥

अथातो यागमंडलपूजाविधानमभिधास्यामः—

निर्ग्रन्थार्याः प्रसादं कुरुत पदमिहायज्ञसद्धर्मदीप्त्यै
देवाः सर्वेच्युतांता विकुरुत सुतनुं क्ष्मामिमामेत शांत्यै ।
क्षप्त्वा कर्मारिचक्रं किमयित दसमस्फूर्जदावर्ज्य तेजः
सोद्यायं शासदीशस्त्रिजगदिह पश्यन् स्थाप्यतेनुग्रहीतुम् ॥ १ ॥

प्रभावकसिंहसान्निध्यविधानाय समंतात् पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

एते वर्षंत्विहाशीमृतमृषिगणाः साधु हूत्वाभिराद्धा
विश्वेदेवाश्च शास्त्रव्रजनपरिजना घ्नंतु विघ्नानिहैते ।
स्थानस्था एव चैनं सह सुरमुनयस्तेऽहामिंद्राः स्तुवंतु
श्रद्धत्तार्यामयाय जिनयजनविधिः प्रस्तुतोधीत्य सिद्धान् ॥ २ ॥

अब याग मंडलकी पूजाकी विधि कहते हैं;—" निर्ग्रंथा " इत्यादि कहकर जिनमतकी प्रभावना करनेवालोंको निकट करके यज्ञमंडपके चारों तरफ पुष्प अक्षत क्षेपै ॥१॥ " एते वर्ष " इत्यादि श्लोक बोलकर साधर्मी भाइयोंके ऊपर पुष्प अक्षतकी वर्षा करे ॥ २ ॥

त्रिभुवनसर्गोत्तमदेवाय गर्भावतारस्थानं लिखेत् ।

दृग्शुद्ध्यादिसमिद्धभक्तिरचनस्थानं कलानोद्धुरं
गर्भावतारशरीरपीठनिचयस्थूलांगदेशाश्रितैः ।
इंद्राद्यैरभिराध्यते नदभिनो दीप्तापि सः स्थाप्यते
न्यस्तानीति गुणान्वितपदमथ्याद्यैर्विनाशनम् ॥ ३ ॥

गर्भावतारनाय कर्णिकामध्ये पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

निर्मूलं निजकर्मपक्षनिकरोन्मूलनाहंतानंदलाहे
यस्मात् नैमैतिनरीत्येनदनिधनद्दुःखसौख्याभिधानैः ।
कर्णादिकाचदात्मनियपक्वाद्विग्नानैःशीर्षैनजः
मत्यासीद्दुरीतः स्फुरद्वि परमस्य यशोदिमाद्यम् ॥ ४ ॥

परमब्रह्मगद्दापतिज्ञानाय कर्णिकाः कुसुमांजलिनारोपेत् । इति प्रस्तावना ॥

"दृग्शुद्ध्या" इत्यादि कहकर गर्भ ग्रहके मानके कर्णिकाके बीचमें पुष्पांजलि क्षेपण करे॥३॥ "निर्मूलं" इत्यादि पढ़कर परमब्रह्म अर्हंतकी पूजाके अभिप्रायसे कर्णिकाके मध्यमें पुष्पोंकी क्षेपण करे ॥ ४ ॥ "स्वामिन्" इत्यादि "ओं ह्रीं" इत्यादि बोलकर आह्वानन स्थापन सन्निधीकरण

स्वामिन् संवौषट् कृतावाहनस्य द्विष्ठांतेनोट्टंकितस्थापनस्य ।
त्वं निर्नेकुं ते वषट्कार जाग्रत् सान्निध्यस्य प्रारभेयाष्टधेष्टिम् ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्म अत्रावतरावतर संवौषट् । अनेन कर्णिकामध्ये पुष्पांजलिं प्रयुज्या-
वाहयेत् । ओं ह्रीं अर्हं श्री परमब्रह्म अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । अनेन तद्वत् प्रतिष्ठयेत् । ओं इत्यादि
मम सन्निहितं भव भव वषट् । अनेन तद्वत्संनिधापयेत् । आह्वानादिपुरस्सरपूजावसरप्रार्थना ।

अथ पूजा ।

चंचद्रत्नमरीचिकांचनकनद्भृंगारनालश्रुत–
श्रीखंडस्फुटिकादिवासितमहातीर्थाम्बुधाराश्रिया ।
हंतं दुःकृतमेतया स्वसमयाभ्यासोद्यतैराश्रिता
सत्कुर्वीय मुदा पुराणपुरुष त्वत्पादपीठस्थलीम् ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री परब्रह्म..............................नीरधारा ।

इमैः संतापार्चिः सपदि जयदक्षैः परिमल–
प्रथामूर्च्छद्घ्राणैरनिपद्गंशुव्यतिकरात् ।

करे फिर पूजा करना आरंभ करे ॥ ५ ॥ " चंचद्रत्न " इत्यादि और 'ओं ह्रीं' कहकर जल-
धारा चढावे ॥ ६ ॥ " इमैः " इत्यादि तथा 'ओं ह्रीं' पढकर चंदन चढावे ॥ ७ ॥ " सुगंधि "

स्फुर[illegible] –
[illegible] ॥ ७ ॥
ॐ ह्रीं..[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥ ८ ॥
ॐ ह्रीं..[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ॥ ९ ॥
ॐ ह्रीं..[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥ १० ॥
ॐ ह्रीं..[illegible] ।

[illegible]

जाड्याधायित्ववैरादिव शशिनमपि स्नेहयुक्तं दहद्भिः
सोदर्यस्वर्णयोगात् पटुतररुचिभिः सोदरत्वादिवाक्ष्णाम् ।
प्रेयोभिस्तत्मतापापहतिमिरहरैर्विश्वलोकैकदीपः
श्राद्धश्चंचद्भिरेभिस्तव पदकमले दीपयेयं मदीपैः ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं..आरार्तिकं ।

धूपानि मानसकृदुद्यदुदीरधूमस्तोमोल्लसन्नयनहृद्दलनेत्रनासान् ।
दुष्कर्मगर्भुदचिरोद्धृतये धुताघ त्वत्पादपद्मयुगमभ्यहमुत्क्षिपेयम् ॥ १२ ॥

ओं ह्रीं.. धूपं ।

शाखापाकप्रणयविलसद्वर्णगंधर्द्धिसिद्ध–
ध्वस्तद्रव्यांतरमधुरसास्वादरज्यद्रसज्ञैः ।
एभिश्चोचक्रमुकरुचकश्रीफलाम्रातकाम्र–
मायैः श्रेयः सुखफलफलैः पूजयेयं त्वदंघ्रीन् ॥ १३ ॥

ओं ह्रीं..फलम् ।

इत्यादि तथा 'ओंह्रीं' कहकर दीप चढावे॥११॥ " धूपा " इत्यादि और 'ओंह्रीं' कहकर धूप चढावे ॥ १२ ॥ " शाखा " इत्यादि तथा 'ओंह्रीं' कहकर फल चढावे ॥ १३ ॥ " जलगंधा-

नकंपासनमप्रनन्दीपनृपकन्योत्पर्व—
दैनिदूर्वाद्विपंगलयुतैः पृपुकानमनावनार्विनैः ।
रनिनार्पितं विनिघ्नीगंनिकहीनि नय नगस्तन
मम्पयनेद्धनघ्युदमनपनर्घ पविश्रियः ते ॥ २४ ॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री परमजिने अनंतानंतज्ञानशक्तये इदं नर्क्तं गंगाजलाद्यं पुष्पाणि गर्ज दीपं धूपं फलं अर्घं च निर्वपामीति स्वाहा । इमान् मंत्रान् पुष्पमालयन् पुष्पं इत्यन् । एवं करोति । इति परमपुष्पांजलिविधानम् ।

नदीनं परमं मर्वान् विमान येनाभिनाभिनं । निहंति पुरुषं राग नस्मै पुष्पांजलिं क्षिपेत् २५

ओं नमो अर्हंतानां ह्रीं स्वाहा । मूलमंत्रपूजा ।

अपापः केवलज्योतिरन्येषाय स्पर्शति मम् । नस्मै केवलिपंचाय पुष्पादिप्युपांजलिम् २६

ओं ह्रीं ऊं अर्हत्सिद्धयोगिकेवलिभ्यः स्वाहा । केवलिमंत्रपूजा ।

सन " इत्यादि तथा " ओंह्रीं " इत्यादि बोलकर अर्घ चढावे ॥ २४ ॥ इसतरह परम पुरुष श्री अर्हंतदेवका पूजन हुआ । " नदीनं " इत्यादि तथा " ओं नमो " इत्यादि बोलकर मूलमंत्रको पुष्पांजलि चढावे ॥ २५ ॥ " अपापः " इत्यादि तथा " ओं ह्रीं " इत्यादि बोलकर केवलिमंत्रको पुष्प चढावे ॥२६॥ " पुष्पश्रीणां " इत्यादि तथा "ओं अर्हं" इत्यादि पढ-

पुण्यश्रेणिशुद्धदृग्वृत्तसेवारागाद्भद्रास्तत्तदैश्वर्यभुक्ता ।
या संहार्याभ्यर्णयत्युग्रबोधिं पुंसो नंद्यावर्तमालां यजे तं ॥ १७ ॥

ओं अर्हं नंद्यावर्तवलयाय स्वाहा । नंद्यावर्तमालार्चनम् ।

शिवपथमनुबध्नतः समाधिं प्रशमवतः सुखपर्वणां प्रबंधम् ।
यववलयमनल्पबुद्धिकाम्यं वरकुसुमांजलिनांजसार्चयामि ॥ १८ ॥

ओं अर्हं यववलयाय स्वाहा । यववलयार्चनम् ।

भित्वा कर्मगिरीन् प्रबुद्धसकलज्ञेयादिसंतः शिवः
पुंसां शुद्धिविशेषतोऽच्छमनसा सेवाविधौ यस्य ताम् ।
सौख्यं लांति दृपार्पणादघहृतेर्ये वा मलं गालयं-
त्यर्घेणोपचरामि मंगलमहत्तानर्हतोऽभ्यर्हितान् ॥ १९ ॥

ओं अर्हन्मंगलार्घम् ।

कर नद्यावर्तमालाको पुष्पोंसे पूजे ॥ १७ ॥ " शिवपथ " इत्यादि तथा ओं अर्हं इत्यादि कहकर यववलयकी पूजा पुष्पोंसे करे ॥ १८ ॥ " भित्वा कर्मगिरी " इत्यादि पढकर अर्हंत मंगलको अर्घ चढावे ॥ १९ ॥ " नामध्वंसा " इत्यादि पढकर सिद्धमंगलको अर्घ चढावे

नापध्वंसा नैजसाद्यम्बरैतात्कर्माणातुमपाद्यापिकाव ।
ये भक्तानां मंगलं लोकमुख्यं मर्त्यानेते नाम मनेऽस्मि सिद्धान् ॥ २० ॥
ओं सिद्धमंगलाय ।
ये पापस्यानारका देवका ये ये नामकं व्यापकाः साधयंति ।
सिद्धिं साधून् मंगलं साधुकानां नाम मनानन्दकल्याणदायी ॥ २१ ॥
ओं साधुमंगलाय ।
स्वोत्पत्तिकेवलज्ञानभूतां भव्याङ्गिनोऽपि जगदुत्तिष्ठो ।
मन्यंगलस्थोपदशानि केवलिप्रज्ञप्तधर्म गुणगोऽस्तु ॥ २२ ॥
ओं केवलिप्रज्ञप्तधर्ममंगलाय ।
निखिल श्रुत्वा नगमेनानुचिन्तन स्वस्याद्या नामस्थापनाद्यभावैः ।
भव्यैः सेव्यंते ये सदा पूजिताम्बैलोकोत्तमोऽर्हल्लोक लोकोत्तमेभ्यः ॥ २३ ॥
अर्हल्लोकोत्तमाय ।

॥ २० ॥ "ये मार्ग" इत्यादि पदकर साधु मंगलको अर्थ दरशावे ॥ २१ ॥ "स्वबोध" इत्यादि पदकर केवलिकथित धर्ममंगलको अर्थ दरशावे ॥ २२ ॥ "निखिल" इत्यादि पदकर अर्हल्लोकोत्तमको अर्थ दरशावे ॥ २३ ॥ "नामादिभि" इत्यादि पदकर सिद्ध लोको-

नामादिभिर्येष्टभिरप्यदुष्टैरिष्टाय संति प्रणिधीयमानाः ।
विन्यस्य नो आगमभावतस्ताल्लोकोत्तमान् साधु यजेत्र सिद्धान् ॥ २४ ॥

सिद्धलोकोत्तमार्घम् ।

त्र्यूना कोट्योनगारर्पियतिमुनिभिदो ये नवोत्कर्पष्टत्त्या
नानादेशान् नृलोके शिवपथमनिशं साधयंतः पुनंति ।
घस्रे घस्रे सनीडी भवदमृतरमासंगमा साधवस्ते
भूता भव्या भवांतो त्रिधिवदपाचिताः पांतु लोकोत्तमा नः ॥ २५ ॥

साधुलोकोत्तमार्घम् ।

श्रद्धाय व्यवहारतत्त्वरुचिधी चर्यात्मरत्नत्रय
प्रादुःष्यतत्परमार्थतत्रयमयस्वात्मस्वरूपं बुधाः ।
सद्युक्तागमचक्षुपो विदधते लोकोत्तमः केवलि-
प्रज्ञसोभ्युदयापवर्गफलदः सोर्घ्येत धर्मोऽनघः ॥ २६ ॥

केवलिप्रज्ञप्तधर्मलोकोत्तमार्घम् ।

त्तमको अर्घ चढावे ॥ २४ ॥ " त्र्यूनाः " इत्यादि पढकर साधुलोकोत्तमको अर्घ चढावे ॥ २५ ॥ " श्रद्धाय " इत्यादि पढकर केवलिप्रणीतधर्म लोकोत्तमको अर्घ चढावे ॥ २६ ॥

सर्वेमार्गिदपागमेन मनसा गुह्यात्मसंवित्गुणा-
थोनस्यात्मनि नक्षितव्य पदमा नम्भतारंतः सन्तु ।
ये मत्याक्षिजन्मक्रियानिलगिरो दमांति पापान् मदा
नानानन्दं मार्गयाय शरणं कर्मान सपर्येतः ॥ २७ ॥

अर्हच्छरणार्चनं ।

सांद्रानंदचिदात्मनि स्वपदतिर्नाति स्फारं स्फुरंतः स्फुटं
पश्यंतो युगपत्रिकालविषयानंतानि भावान्तराम् ।
मद्भावो स्वपदापि पत्यपनिरासकर्तानि मे ध्यायतां
नानर्थेण मनापरः भगवतः सिद्धान् शरण्यानिह ॥ २८ ॥

सिद्धशरणार्चनं ।

आचारं पंचधा ये भवनाक्लिनदियशास्त्रंनगंति
व्याकुर्वांति द्वादशांगी गुणस्थितिनिरता ये च गुप्त्वयाणाम् ।

"सर्वमार्गा" इत्यादि पढ़कर अर्हंतशरणको अर्घ चढावे ॥ २७ ॥ "सांद्रा" इत्यादि पढ़कर सिद्धशरणको अर्घ चढावे ॥ २८ ॥ "आचारं" इत्यादि पढ़कर साधुशरणको अर्घ चढावे

साम्याभ्यासोद्यदात्मानुभवघनमुदो योगिनां घ्नंति वैरं
ते सर्वैर्प्यर्घिता मे त्रिभुवनशरणं साधवः संतु सिद्धयै ॥ २९ ॥

साधुशरणार्घम् ।

सच्छ्रद्धोपग्रहीतमर्तिमथनाहार्यवैराग्यकृत्
सम्यग्ज्ञानमसंगसंगवदधिष्ठानं यदात्मा द्विधा ।
सिद्धः संवरनिर्जराभवशिवाह्लादावहः केवलि-
प्रज्ञप्तः शरणं सतामनुमतः सोर्घेण धर्मोर्च्यते ॥ ३० ॥

केवलिप्रज्ञप्तधर्मशरणार्घम् । ओं चत्तारिमंगलमित्यादिना स्वाहांतेन पूर्ववदत्राप्यधिवासयेत् ।

इत्यर्चिताः परब्रह्मप्रमुखाः कर्णिकार्पिताः । संतु सप्तदशाप्येते सभ्यानां शमशर्मणे ३१

पूर्णार्घम् । इति द्वासप्ततिदलकमलकर्णिकाभ्यर्चनविधानं । अथ षोडशपत्रस्थापितविद्यादेवतार्चनम् ।

॥ २९ ॥ "सच्छ्रद्धो" इत्यादि पढकर केवलिकथितधर्मशरणको अर्घ चढावे ॥ ३० ॥ "ओंचत्तारि मंगलं" यहांसे लेकर स्वाहातक पहलेकी तरह पाठ करे । "इत्यर्चिता" इत्यादि श्लोक बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार बहत्तरि पत्तोंवाले कमलके कर्णिका भागका पूजन हुआ । अब सोलह पत्तोंपर स्थित विद्यादेवियोंका पूजनविधान

विद्या विद्याः षोडश रोहिण्यादि–प्रमुखाः पालितकुशलाः ।
यथायथं साधु निवेश्य विद्या–देवीर्यजे दुर्गपदोद्धुराः ॥ ३२ ॥

विद्यादेवीपुष्पाञ्जलिः [illegible] सद्यो निवेशयेत् । एवं सर्वाणि निवेश्य ।

विद्याः संप्रदाये पूज्याना यान्ति समस्तान्मदाः ।
अशेषविघ्नौघा यो यत्ने धन्येष्वपाद्गतान् ॥ ३३ ॥
भगवति रोहिणि महति प्रज्ञप्ते वज्रशृंखले वज्रांकुशे ।
चक्रांकुशे पुरुषदत्ते जाम्बूनदे [illegible] ॥ ३४ ॥
पुरुषदत्ते कालि महाकालि ।
गौरि वरदे गुणर्द्धे गान्धारि ज्वालिनि मानवि ॥ ३५ ॥

टी० । "विद्याविद्याः" इत्यादि पढ़कर विद्यादेवियोंके समूहकी पूजाके लिये नाम पूजासामग्रीको अर्हंतके चरणकमलोंमें आरती करके स्थापन करें ॥ ३२ ॥ "विद्याः संप्रदाये" इत्यादि पढ़कर आह्वाननादि करे ॥ ३३ ॥ "भगवति" इत्यादि तीन [illegible] पढ़कर आह्वानादिपूर्वक हर एककी पूजाके लिये पत्रोंमें पुष्प अक्षत क्षेपण ॥ ३४ ॥ "विद्योत्य" इत्यादि तथा "ॐ ह्रीं रोहिणि" इत्यादि बोलकर

मानवि देवि शिखंडिनि खंडिनि वैरोटि शुकृच्युतेऽच्युतिके ।
मानासि मनस्विनि रते यशासि महामानसीदमुचितं वः ॥ ३६ ॥

आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

अथ प्रत्येकपूजा ।

विशोध्य यो चेष्टगुणैः सरागो दृष्टिं विरागश्च परां प्रचक्रे ।
स कुंभशंखाब्जफलांबुजस्था—श्रिताच्यसे रोहिणि रुक्मरुक्तम् ॥ ३७ ॥

ओं ह्रीं रोहिणि इदं गंधं पुष्पं धूपं दीपं चरुं बलिं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा ।

दृग्ज्ञानचारित्रतपस्सु सूरिपुरस्सरेष्वप्यकृतादरो यः ।
तद्भाक्तिकां त्वाश्वगतेलिनीलां प्रज्ञप्तिकेर्चामि सचक्रखड्गाम् ॥ ३८ ॥

ओं ह्रीं प्रज्ञप्ते इदं.. स्वाहा ।

रोहिणीको जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ३७ ॥ " दृग्ज्ञान " इत्यादि और ओंह्रीं इत्यादि बोलकर प्रज्ञप्तिको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ ३८ ॥ " व्रतानि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वज्रशृंखलाको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥३९॥ " ज्ञानोपयोगं " इत्यादि, "ओंह्रीं"

अनानि गीत्वानि न जातु यान्ति कामनन्तो वर्द्धिता ना ।
स्कंधेषु स्थापितेर्गन्धाणा पीना न गुर्णं परिमुक्तोऽस्मिन् ॥ ३९ ॥

ओं ह्रीं गतपूर्णाय... ।

आनोपयोगे व्यवहारांश्च धर्मं भजेत् जिनपूज्यानाम् ।
सर्वाङ्गमे न गुणिताणिपुष्पीयाम्बा पंच धर्मे जनानाम् ॥ ४० ॥

ओं ह्रीं गर्वाङ्कुशे.. ।

धर्मं [illegible] न [illegible] महे [illegible] ।
[illegible] पूजनपूजां [illegible] ॥ ४१ ॥

ओं ह्रीं जांबूनदे.. ।

[illegible] ।
[illegible] पूजनगारिके स्थाप् ॥ ४२ ॥

ओं ह्रीं पूजनद्रव्ये.. ।

इत्यादि बोलकर गर्वाङ्कुशको जलादि आठ द्रव्य चढावै ॥ ४० ॥ " धर्मे " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" कहकर जांबूनदको जलादि आठ द्रव्य चढावै ॥ ४१ ॥ " नकृत्यार्थिना " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर पूजनद्रव्यको जलादि आठ द्रव्य चढावै ॥४२॥ " नपांसि " इत्यादि

तपांसि कष्टान्यनिगूढवीर्यश्चरन् जगत्रैधमधश्चकार ।
यस्तन्नतार्चां भज कालि भर्मप्रभा मृगस्था मुशलासिहस्ता ॥ ४३ ॥

ओं ह्रीं कालि.. ।

चक्रे धिकसाधुषु यः समाधिं तं सेवमाना शरभाधिरूढा ।
श्यामाधनुः खड्गफलास्त्रहस्ता बलिं महाकालि जुषस्व शांत्यै ॥ ४४ ॥

ओं ह्रीं महाकालि.. ।

तपस्विना संयमबाधवर्जं प्रतिवधतात्मवदापदो यः ।
गोधागता हेमरुगब्जहस्ता गौरि प्रमोदस्व तदर्चनांशैः ॥ ४५ ॥

ओं ह्रीं गौरि.. ।

तेने शिवश्रीसचिवाय योऽर्हन्, भक्तिं स्थिरां क्षायिकदर्शनाय ।
चक्रासिभृत्कूर्मगनीलमूर्ते गृहाण गांधारि तदंघ्रिगंधम् ॥ ४६ ॥

तथा " ओं ह्रीं " बोलकर कालीको अर्घ चढावे ॥ ४३॥ " चक्रेधिक " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर महाकालीको अर्घ चढावे ॥ ४४ ॥ " तपस्विना " इत्यादि तथा " ओं ह्रीं" बोलकर गौरीको अर्घ चढावे ॥४५॥ "तेने" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर गांधारीको अर्घ चढावे

ओं ह्रीं गांधारि.. ।

मत्सरिभक्ति मनिश्चना यो वैनै यने ज्वालिनि नन्दै त्वाम् ।
शुभ्रां धनुः मेरुकम्बुनकायुधाढ्यां मांडाभिकाम् ॥ ४७ ॥

ओं ह्रीं ज्वालामालिनि.. ।

शुद्धोपयोगिकमलयुताथे यो भक्तिपत्यानन्दुरेषु ।
नं भिन्नतो मानवि गोकिकम्यनीलांछितिशामयानिलां ॥ ४८ ॥

ओं ह्रीं मानवि दिव्ये.. ।

यो स्पष्टेकनिरोधमर्दपत्रमन्तागमधनारम्पन् ।
न्वां सिंहणामानदर्पयतां यजेम वैरोटि मनेधनीन्राम् ॥ ४९ ॥

ओं ह्रीं वैरोटि.. ।

॥ ४६ ॥ "मत्सरि" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" कहकर ज्वालामालिनीको अर्घ चढावे ॥४७॥ "शुद्धोप" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" कहकर मानवीको अर्घ चढावे ॥ ४८ ॥ "यो स्पष्ट" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" कहकर वैरोटीको अर्घ चढावे ॥४९॥ "पांचो" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर अच्युताको अर्घ चढावे ॥ ५० ॥ "मार्ग" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर

पोढौ नयी व्याधिवशोप्यवश्यं नावश्यकं यः समथात्रपेक्षम् ।
धौतासिहस्तां हयगेच्युते त्वां हेमप्रभांतं प्रणतां प्रणौमि ॥ ५० ॥

ओं ह्रीं अच्युते.. ।

मार्गं वृपे निश्चलयन विनेयान् प्राभावयत्रः सुतपः श्रुताद्यैः ।
रक्ताहिगा तत्प्रणताप्रणामसुद्रांन्विता मानसि मेसि मान्या ॥ ५१ ॥

ओं ह्रीं मानसि.. ।

योधात्सधर्मस्वतित्रत्सलत्वं रक्ता महामानसि तत्प्रणांमे ।
रक्ता महाहंसगतेक्षसूत्रवरांकुशस्त्रक्सहितां यजे त्वाम् ॥ ५२ ॥

ओं ह्रीं महामानसि.. ।

सत्पूजावलिदानलालितमनाः स्फारस्फुरद्वत्सली–
भावावेशवशीकृताः कृतधियामिष्टाश्च पूर्णाहुतिम् ।
विद्यादेव्य इमां प्रतीच्छत जिनज्येष्ठाप्रतिष्ठांजसा
निष्ठा मुख्यमनोरथान फलवतः कर्तुं यतध्वं मम ॥ ५३ ॥

मानसीको अर्घ चढावे ॥ ५१ ॥ " योधात् " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर महामानसीको अर्घ चढावे ॥ ५२ ॥ " सत्पूजा " इत्यादि बोलकर सबको पूर्णाहुति दे ॥ ५३ ॥ " एवं

पुष्पांजलिः ।

एवं विद्यादेवताः संस्तुताः षोडशसंख्याः श्रीजिनस्य संस्तुतीः ।
निःशेषोपद्रवनिवारणाय सौम्याकारं सततं पालयंतु ॥ ५४ ॥

इत्यर्पयेत् पुष्पांजलिं शिरेत् । इति विद्यादेवतार्चनविधानं । अथ चतुर्विंशतिजिनमातृ-जिनमात्रर्चनम् ।

मातः गर्भपुरे हरिप्रियविशिष्टाः श्रियाः संस्कृते
दिव्यैः षोडशस्वप्नके जिन निजामानाय शक्तिं परम् ।
उत्कृष्टा गुणमादृशी जिनमाता विलोकिता निष्कला-
स्तासां ये जिनमातृकाः कनकपात्रा चतुर्विंशतिः ॥ ५५ ॥

जिनमातृप्रपूजनार्थं पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

"विद्या" इत्यादि बोलकर इस प्रार्थनाके लिये पुष्पांजलि चढावे ॥ ५४ ॥ इस प्रकार विद्यादेवियोंकी पूजाविधि हुई । अब चौबीस पत्रोंपर स्थित चौबीस जिनमाताओंकी पूजा करते हैं । "मातः" इत्यादि श्लोक बोलकर जिनमाताओंकी पूजाके लिये पत्रोंकी तरफ पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ ५५ ॥ "अंबा" इत्यादि बोलकर आवाहनादिपूर्वक प्रत्येक

अंबाः संशब्दये युष्मानायान सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् ५६

आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

साकेताधिपमन्वनूकतिलक–श्रीनाभिराजप्रिये
सद्वृत्ते पुरदेवसंभवभवद्देवेंद्रसेवोत्सवे ।
त्रैलोक्याप्रपितामहि स्तुतगुणे स्तुत्यैरपीडाभिदां
देवि श्रीमरुदेवि भावयपदं दृष्टिप्रसादेन मे ॥ ५७ ॥

ओं मरुदेव्यै इदं.. ।

मन्विक्ष्वाकुमहोनुबद्धदिनकृद्वंशस्फुरत्कोशला–
स्वामिश्रीजितशत्रुपार्थिवमनोरोलंबराजीविनि ।
विश्वस्वंधुजयप्रदा जितजिनाधीशोद्भवन्यक्कृत–
न्यक्षर्द्धीप्रसवस्मयैव विजये त्वानेन्नभिस्याजगे ॥ ५८ ॥

ओं विजयसेनायै.. ।

पूजाकी प्रतिज्ञा करनेकेलिये पत्रोंमें पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ५६ ॥ "साकेता" इत्यादि तथा 'ओं मरुदेव्यै' इत्यादि बोलकर मरुदेवीको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥५७॥ "मन्विक्ष्वाकु" इत्यादि तथा 'ओं ह्रीं' बोलकर विजयसेनाको अर्घ चढावे ॥५८॥ "स्वावस्ति" इत्यादि

स्वामिन्निपुरेश्वर पुरवंशज ध्वजाङ्क इतरण मगणात् ।
संभवजिनरत्नखानि सुषेणि सुषेणे पत्नीशीले त्वाम् ॥ ५९ ॥

ॐ सुषेणायै..।

साकेतनगरी भवनीपितृणाहुतार स्वर्णरे निरताम् ।
अभिनंदनजिनजननी सिद्धार्थनाम्नि सिद्धार्थाम् ॥ ६० ॥

ॐ सिद्धार्थायै..।

नाभेयवंशनिरतान्द्रिक्रमस्वोक्त्यानान्वयस्य मेघरथभूमिपतेः गृहिणि ।
सैन्याग्रपत्नगुणैः गुणैः तदिति स्वां धन्ये सुमङ्गलपत्नैर्षाणि ॥ ६१ ॥

ॐ सुमंगलायै..।

पनुकुल्यनक्षांदोर्द्वेति कोशलक्षणीत–प्रणाथिनि धरणस्य मानिताख्यस्य ।
भवद्गनिमित्तजैकान्तव्रतवादैन–प्रणिवरणि सुसीमिनान्मनि श्रीरभीषि ॥६२॥

ॐ सुसीमायै..।

"ॐ ह्रीं" बोलकर सुषेणाको अर्घ चढ़ावें॥५९॥ "साकेतनगरी" इत्यादि तथा "ॐ ह्रीं" बोलकर सिद्धार्थाको अर्घ चढ़ावें॥६०॥ "नाभेय" इत्यादि तथा "ॐ ह्रीं" बोलकर सुमंगलाको अर्घ चढ़ावें॥६१॥ "धनुकुल" इत्यादि तथा "ॐ ह्रीं" बोलकर सुसीमाको अर्घ चढ़ावें॥६२॥

इक्ष्वाकुमुख्यकाशीशसुमतिष्ठनृपभिनाम् । त्वां यजे पृथिवीषेणे सुपार्श्वजिनमातरम् ६३

ओं वसुंधरायै.. ।

सूर्यान्वयं चंद्रपुराधिचंद्रं श्रिता महासेनमभेदवृत्त्या ।

चंद्रप्रभेशप्रभवप्रभावात् कस्य प्रतीक्षासि न लक्ष्मणेस्मिन ॥ ६४ ॥

ओं लक्ष्मणायै.. ।

काकंद्यधीशे पुरुदेववंश्ये सुग्रीवराजे निरुपाधिरागाम् ।

त्वा पुष्पदंतप्रसवाभिरामे यजामि यज्ञे जय रामिकेस्मिन ॥ ६५ ॥

ओं रामायै.. ।

त्वां राजभद्र पुरनृप वृषभान्वयदृढरथानुरागरथा ।

शीतलजिनाभिनंद्यं वंदे वंद्ये सतां सुनंदेत्र ॥ ६६ ॥

ओं सुनंदायै.. ।

" इक्ष्वाकु " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर वसुंधराको अर्घ चढावे ॥६३॥ " सूर्यान्वयं " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर लक्ष्मणाको अर्घ चढावे ॥ ६४ ॥ " काकंद्यधीशे " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर रामाको अर्घ चढावे॥६५॥ "त्वां राजभद्र" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर सुनंदाको अर्घ चढावे ॥ ६६ ॥ " प्राणप्रियां " इत्यादि तथा " ओं ह्रीं " बोलकर

नागविना सिद्धार्थनिलयोः नक्षत्रैरिक्ष्वाकुकुलस्य विष्णोः ।
त्वां देवि नैवेद्यनतोऽस्मि नन्दे श्रेयोजननायक ननद ननम ॥ ६७ ॥

ओं विष्णुश्रिये.. ।

नथाऽपि इक्ष्वाकुविमलकर्णवंशाविरर्धनिनुपूरणवल्लभान् ।
श्रीवासुपूज्यमजोपजातजगत्त्रयेशानि अर्चामि नाम् ॥ ६८ ॥

ओं जयायै.. ।

कांता कांपिल्यनाथाकृतवर्मश्रीकृतवर्मणः । नम इयामं प्रणमामि त्वां जननीं विमलेशिनः ६९

ओं सुरामस्यायै.. ।

साकेतनाथकैश्वाकुसिंहसेन नृपः सुताम् । पूजयामि जयश्यामां नामनंतजिनांबाम् ॥७०

ओं सुयशायै.. ।

देवीं भानुमहाराजनाम्नो रत्नपुरेशिनः । कुलवंश्यधर्मजिनानां ज्ञानोमि सुनभे ॥ ७१ ॥

विष्णुश्रीको अर्घं चढावे ॥ ६७ ॥ " तथाहं " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर जयाको अर्घं चढावे ॥ ६८ ॥ " कांता कांपिल्य " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुरामस्याको अर्घं चढावे ॥ " साकेतनाथ " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुयशाको अर्घं चढावे ॥ ७० ॥ " देवीं भानु " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुव्रताको अर्घं चढावे ॥ ७१ ॥ " हस्तिनाग "

ओं ऐरण्यै.. ।

हस्तिनागनगरे कुरुवंशे विश्वसेननृपनेर्दयितायाः ।
शांतिकल्पतरुभोगभुवस्ते प्रार्चयामि चरणद्वयमैरे ॥ ७२ ॥

ओं कमलायै.. ।

कुरुकुलशशांकहास्तिनपुरपरिदृढशूरसेननृपकांताम् ।
श्रीकांते कुंथुजिनप्रसवित्रीं पूजयामि त्वाम् ॥ ७३ ॥

ओं सुमित्रायै.. ।

श्रीहास्तिसेनकुरुपस्य पत्नीं सुदर्शनाद्यस्य सुदर्शनस्य ।
मातः सवित्रीमरतीर्थकर्तुस्त्वां मित्रसेनेत्र महे महामि ॥ ७४ ॥

ओं प्रभावत्यै.. ।

मिथिलारक्षकेक्ष्वाकुप्रभुकुंभाग्रवल्लभाम् । प्रजापति यजे मल्लिजिने त्वां प्रजापतिं ॥ ७५ ॥

इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर कमलाको अर्घ चढावे ॥ ७२ ॥ "कुरुकुल" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुमित्राको अर्घ चढावे ॥ ७३ ॥ "श्रीहास्तिसेनः" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर प्रभावतीको अर्घ चढावे ॥७४॥ "मिथिलार" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर पद्मावती को अर्घ चढावे ॥ ७५ ॥

ॐ पद्मायै..

शशिवंशमुखं गतपद्मावती सुपितृकम् ।
मुनिसुव्रतजिनजननीं सोमां सोमायै पद्मावतीं न्यास् ॥ ७६ ॥

ॐ वप्रायै..

पिप्पलनागपुन्नागारिनवरताम्रलवङ्गकुसुमाढ्यम् ।
संपूजयामि नमिजिनजननीं वप्रां ह वप्रायै ॥ ७७ ॥

ॐ शिवायै..

द्राक्षादिफलैः शुचिभिर्नानाकल्पैर्मनःप्रियकराम् ।
समुद्रविजयमहिषीं शिवदेवीं गत्वा शिवायै न्यास् ॥ ७८ ॥

ॐ वामायै..

काशीशिवनगरीमहितराज्ञीं वामादेवीं सुमङ्गलां पद्माढ्याम् ।
पार्श्वप्रभुप्रभावितजननीं वामायै इति पद्माढ्यं न्यास् ॥ ७९ ॥

"शशिवंश" इत्यादि तथा ॐ ह्रीं पद्मावती सोमाको अर्घ चढ़ावे ॥ ७६ ॥ "पिप्पल" इत्यादि तथा ॐ ह्रीं वप्रादेवीको अर्घ चढ़ावे ॥ ७७ ॥ "द्राक्षादि" इत्यादि और ॐ ह्रीं पढ़कर शिवदेवीको अर्घ चढ़ावे ॥ ७८ ॥ "काशीशिव" इत्यादि तथा ॐ ह्रीं

ओं देवदत्तायै... ।

स्वर्लक्ष्मीमदखंडिकुंडनगरश्रीकाममर्माविधो
नाथानूकाविशेषकस्य माहिषीं सिद्धार्थधात्रीपतेः ।
अंबां दुर्दमदुःषमासहचरद्धर्मश्रुतेः सन्मते-
र्यायाजिम प्रियकारिणि प्रियकरी त्वास्मिन् प्रातिष्ठोत्सवे ॥ ८० ॥

ओं प्रियकारिण्यै इदं... ॥

नाभेयाद्यर्हदंबाः स्वभिहितमरुदेव्यादयः कोशलादि
क्ष्माभृन्नाभ्यादिदिव्यो हृदयसरसिजे भासमानाःसमर्च्य ।
पूर्णार्घं प्राप्यमाणा निजतनुजगुणग्रामगाढानुरागैः
प्रत्याहृत्यांतरायान् प्रथयत जगतां यूयमुच्चैः प्रमोदम् ॥ ८१ ॥

इति पूर्णार्घम् ।

इत्येता जिनमातरः सुदृगनुस्यूताखिलश्रीघना—
श्लेषानंदनिदानपुण्यरचना चार्च्यश्चतुर्विंशतिः ।

बोलकर देवत्ताको अर्घ चढावे ॥ ७९ ॥ " स्वर्लक्ष्मी " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर प्रिय-कारिणीको अर्घ चढावे ॥ ८० ॥ " नाभेया " इत्यादि पढकर पूर्णार्घ चढावे ॥ ८१ ॥

[illegible] मवर्नामिः [illegible]
[illegible] नमितद्विषानन्दराम् ॥ ८२ ॥

[illegible] ।

[illegible]
[illegible] ।
[illegible] —
[illegible] ॥ ८३ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ८४ ॥

[illegible]

" इत्येवा " इत्यादि श्लोक पढ़कर [illegible] नमस्कार करे ॥ ८२ ॥ इसप्रकार जिनमाताओंकी पूजाविधि कही गई है । अब [illegible] देवोंकी पूजा कहते हैं " [illegible] " इत्यादि दो श्लोकोंसे [illegible] देवोंकी [illegible] करनेके लिये पूर्वकी तरह [illegible] करे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ " [illegible] " इत्यादि श्लोक पढ़कर आह्वानन आदि पूर्वक सब [illegible] की पूजा

इंद्राःसंशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपाविशतैतान् वो यजे प्रत्येकमादरात ॥८५

आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रातिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

अथासुरेन्द्रादीनां पृथक् पूजा ।

कोणस्थमग्न्यादिदिशुद्यसप्त कोणाग्र्यनीकं दृढमुद्गरास्त्रम् ।
विशेषपादांबुजसख्यरम्यच्चूडामणिं चारु यजेऽसुरेंद्रम् ॥ ८६ ॥

ओं ह्रीं असुरकुमारेन्द्राय इदं जलं गंधं..।

कूर्मश्रितं सप्तदिगाश्रिनोरु नावादिसैन्यं फणिपाशपाणिम् ।
.जिनांघ्रिपुष्पांकफलांकमौलिं नागेंद्रमुन्निद्रमुदर्चयामि ॥ ८७ ॥

ओं ह्रीं नागकुमारेंद्राय इदं...—..।

ताक्ष्र्यादिकक्षाकुलसप्तदिक्कं धौतासिदंडं द्विरदाधिरूढम् ।
यजे सुपर्णेन्द्रमपास्तमोहविपेंद्रपादाप्तशिरः सुपर्णम् ॥ ८८ ॥

करनेके नियमके लिये पत्तोंपर पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ ८५ ॥ अब सुरेंद्रोंकी जुदी २ पूजा कहते हैं । " कोणस्थ " इत्यादि तथा " ओं ह्रीं " इत्यादि बोलकर असुरेंद्रको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ ८६ ॥ " कूर्मश्रितं " इत्यादि तथा ओं ह्रीं " बोलकर नागकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ८७ ॥ " ताक्ष्र्यादिकक्षा " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुपर्णकुमार इंद्रको

ॐ ह्रीं सुपर्णकुमारेन्द्राय इदं.......................................।

समागमनगमन [illegible] ।

[illegible] ॥ ८९ ॥

ॐ ह्रीं द्वीपकुमारेन्द्राय इदं.......................................।

अनेकपापा [illegible] ।

[illegible] ॥ ९० ॥

ॐ ह्रीं उदधिकुमारेन्द्राय इदं.......................................।

सिंहासिनस्थं [illegible] ।

[illegible] ॥ ९१ ॥

ॐ ह्रीं स्तनितकुमारेन्द्राय इदं.......................................

परागमार्ग [illegible] ।

[illegible] ॥ ९२ ॥

अर्घ चढ़ावे ॥ ८८ ॥ "समागमन" इत्यादि तथा ॐ ह्रीं बोलकर सुपर्णकुमारेन्द्रको अर्घ चढ़ावे ॥ ८९ ॥ "अनेकपापा" इत्यादि तथा ॐ ह्रीं बोलकर द्वीपकुमारेन्द्रको अर्घ चढ़ावे ॥ ९० ॥ "सिंहासिनस्थं" इत्यादि तथा ॐ ह्रीं बोलकर स्तनितकुमारको अर्घ चढ़ावे ॥ ९१ ॥ "परागमार्ग" इत्यादि तथा ॐ ह्रीं बोलकर विद्युत्कुमारको अर्घ चढ़ावे ॥ ९२ ॥ "त्रिशू-

ओं ह्रीं विद्युत्कुमारेंद्राय इदं.. ।

दिक्कुंजरस्थं परिघच्छतारिं सिंहाद्यनेंद्रीचरसप्रचक्रम् ।
नतिक्षणार्हच्चरणांकशंकाकरांकासिंहं पयजे दिगेंद्रम् ॥ ९३ ॥

ओं ह्रीं दिक्कुमारेंद्राय इदं..

स्तंभाधिरोहं शिबिकादिसैन्यव्याप्ताशमुल्कायुधमग्निमौलि ।
अग्नींद्रमर्चामि जिनक्रमाग्रश्रीकुंभलालायितमौलिकुंभम् ॥ ९४ ॥

ओं ह्रीं अग्निकुमारेंद्राय इदं.. ।

कुरंगयुग्यं नगहेतिमश्व प्रष्ठामरानीकपरीतमूर्तिम् ।
चायेनिलेंद्रं नतमस्तकाश्वच्छायैर्जिनांघ्रिस्थलमंकयंतम् ॥ ९५ ॥

ओं ह्रीं वातकुमारेंद्राय इदं.. ।

सैन्यैरश्वरथेभपत्तिकलवाग्वाद्यैः कौणनो
तार्क्ष्ये भास्वरगंडकोष्ठकरटाद्विक्याप्ययानार्वगैः ।

जरस्थं " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर दिक्कुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९३ ॥ " स्तंभादिरोहं " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर अग्निकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९४ ॥ " कुरंगयुग्यं " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वातकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९५ ॥ सैन्यै " इत्यादि दो श्लोक बोल-

सप्ता प्राक्तनसप्तकक्रमहृताश्चूडाश्मदर्वीखगे—
न्द्रेत्यञ्जष्वरुवर्द्धमानकमृगेट्कुंभाश्वमौलिध्वजाः ॥ ९६ ॥
असुरफणिसुपर्णद्वीपवाद्ध्यंष्टविद्युद्दिगनलपवनानां भावनानामधीशाः ।
दशविधपरिवर्गापंकरत्नाढ्यधर्माभरणभवनभाजामस्तु पूर्णाहुतिर्वः ॥ ९७ ॥
पूर्णाहुतिः । इति भावनेंद्रार्चनम् ।

अथेहं सर्वज्ञपदारविंदद्विरेफमभ्युन्नदरेफवेपम् ।
नागायुधं किंनरशक्रमिष्टिमष्टापदाधिष्ठितमर्पयामि ॥ ९८ ॥
ओं ह्रीं किंनरेंद्राय इदं.. ।

नेतुं स्वसंज्ञार्थमिवान्यथात्वं शुश्रूषमाणं पुरुषोत्तमांघ्री ।
आलापये किं पुरुषेन्द्रमुद्यज्जयश्रियसायकमुद्वहंतम् ॥ ९९ ॥
ओं ह्रीं किंपुरुषेंद्राय इदं.. ।

कर पूर्णाहुति दे ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ इसप्रकार भवनवासी इंद्रोंकी पूजाविधि हुई । “ अथेह ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर किन्नरेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९८ ॥ “ नेतुं ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर किंपुरुषेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९९ ॥ “ मुमुक्षु ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर

मुमुक्षुशार्दूलमदूरमुक्ति श्रीमेयसीं प्रश्रयतः श्रयंतम् ।
शार्दूलमारूढमयोग्रपिष्ट द्विष्टं महामहोरगेंद्रम् ॥ १०० ॥

ओं ह्रीं महोरगेंद्राय इदं..

गंधर्ववृंदारकगीयमानशुभ्रोरुकीर्तिश्रितमर्हदीशम् ।
प्रीणामि गंधर्वहरिं मराललीलागतिक्लिष्टमरालपत्र ॥ १०१ ॥

ओं ह्रीं गन्धर्वेन्द्राय इदं.. ।

आराद्वज्ञातनिधिव्रजार्हद्देवक्रमारब्धससंकसेवम् ।
यक्षामि यक्षेंद्रमधिष्ठिताहिपृष्टफणिश्लिष्टनिधीद्धदप्यम् ॥ १०२ ॥

ओं ह्रीं यक्षेन्द्राय इदं.. ।

आनंक्ष्यमाणं क्षपिताक्षरक्षः रक्षैः परं पूरुपमाश्रिताय ।
श्रितोग्रहस्ताय हरिश्रिताय रक्षोधिराजाय वलिं ददामि ॥ १०३ ॥

ओं ह्रीं राक्षसेंद्राय इदं.. ।

महोरगेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०० ॥ "गंधर्व" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर गंधर्वेन्द्रको अर्घ चढावे ॥ १०१ ॥ "आराध्य" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर यक्षेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०२ ॥ "आनक्ष्य" इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर राक्षसेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०३ ॥

भूतेशिने भूतदयामयाय भूतार्थनिष्ठायमुहुर्नमंतम् ।
भूतेंद्रमाक्रांततुरंगराजं बलिप्रदानेन सुखाकरोमि ॥ १०४ ॥

ओं ह्रीं भूतेंद्राय इदं ....|

ध्येयं सतां मोहपिशाचशांत्यै शांतैकनेतारमुपासितारम् ।
हेमांडकोड्डुग्मरदंडचंडं पिशाचशक्रं बलिना धिनोमि ॥ १०५ ॥

ओं ह्रीं पिशाचेंद्राय इदं..|

किन्नरकिंपुरुषगरुडगंधर्वनिधिपनिशाटभूतपिशाचैः ।
प्रतिपन्नशासनानां जिनशासन महिमभासनव्यसनानाम् ॥ १०६ ॥
ताभ्यां द्वाभ्यां प्रियाभ्यामपहृतमनसां द्विद्विदेवीसहस्र-
प्रेमार्द्रार्द्राक्षिभाजां पुरनिकरतताष्टांजनादिक्षितीनाम्
नित्योत्पादादिभौमव्रजविनयसृजां लोकरक्षैकदोष्णां
पूर्णापत्योत्सवानां युगपतिभिरसावस्तु पूर्णाहुतिर्वः ॥ १०७ ॥

" भूतेशिने " आदि तथा ओं ह्रीं बोलकर भूतेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०४ ॥ " ध्येयं सतां " इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर पिशाचेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०५ ॥ " किन्नर " इत्यादि दो श्लोक पढकर पूर्णाहुति दे ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ इस प्रकार व्यंतरेंद्रका पूजन हुआ । " सार्द्ध-

द्वाभ्यां पूर्णाहुतिः । इति व्यंतरेन्द्रार्चनम् ।

सार्द्वचैत्यग्रहांकरम्यनगरोत्तानार्धगोलाकृति—
भव्यासांकमणीद्धमंडलकरव्रातामृतैः प्लावयन् ।
भूलोकं हरिवाहनः परिवृतो भोडुग्रहोपग्रह—
वृद्धैः कृतकरश्चरस्थिरविधूपेतोथ सोमोऽर्च्यते ॥ १०८ ॥

ओं ह्रीं सोमेंद्राय इदं...

हित्वाधो दश योजनानि गगने तारा सदैकाध्वगा
मार्गैर्नित्यनवैश्चरन्निह करोति द्यां निशां यः स्थितिः ।
तप्तस्वर्णभलोहिताक्षपुरभृद्दिवः स सूर्यैश्चरै—
र्नालोकैरपरैः स्थिरैश्च रविभिः सत्रार्चतेर्चे जिनम् ॥ १०९ ॥

ओं ह्रीं सूर्येंद्राय इदं... ।

विंशत्येकयुतानि योजनशतान्येकादशाद्रीश्वरं
मुक्त्वा क्ष्मामपि तच्छतानि विदशान्यष्टौ विमानानि खे ।

चैत्य." इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर सोमेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०८ ॥ "हित्वाधो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सूर्यैंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०९ ॥ "विंशत्येक" इत्यादि तथा ओं ह्रीं

उश्वेतच्छतमाघनोदधिदशोपेतं ततान्याश्रितान्
ज्योतिष्कानुगृह्णतोऽजरवयः पूर्णाहुतिंवोर्पये ॥ ११० ॥

पूर्णाहुतिः । इति ज्योतिरिंद्रार्चनम् ।

एकत्रिंशद्युपटलमितेष्टादशे यास्कनाम्नि
श्रेणीवद्धे सततवसतिः पंचवर्णैर्विमानैः ।
तिस्रः श्रेणीर्वसुगुणचतुर्लक्षसंख्यैरवंतं
सौधर्मं प्राक् स्वरुकामिहार्चाम्यथैरावणस्थम् ॥ १११ ॥

ओं ह्रीं सौधर्मेंद्राय इदं.. ।

तद्वच्छ्रेणीवद्धमास्योदगेकश्रेणींद्रोष्टाविंशति पंचवर्णाः ।
यक्षाः पाति स्वःपुरीर्यो जिनांघ्रिस्रक्चूलं तं यष्टुमीशानमीशे ॥ ११२ ॥

ओं ह्रीं ईशानेंद्राय इदं.. ।

बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ ११० ॥ इसतरह ज्योतिष्कदेवेंद्रका पूजन हुआ। "एकत्रिंश" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सौधर्मेन्द्रको अर्घ चढावे ॥ १११ ॥ "तद्वच्छ्रेणी" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ईशानेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११२ ॥ "सतस्वपाक" इत्यादि तथा ओं

सप्तस्वपाक्द्युपटलेषु सभाह्वमंत्ये श्रेणीनिबद्धमधितिष्ठति षोडशं यः ।
त्रिश्रेणिगद्विपविकृष्णविमानलक्ष-सार्चां नमन् जिनमुपैतु सनत्कुमारः ॥ ११३ ॥

ओं ह्रीं सनत्कुमारेंद्राय इदं.. ।

एकाष्टकृष्णोनविमानलक्षश्रेणीशमर्हत्प्रभुमाभजंतम् ।
महामि माहेंद्र मुदा वसंतं दिव्यास्पदः षोडश एव तद्वतः ॥ ११४ ॥

ओं ह्रीं माहेंद्राय इदं.. ।

पात्या स्थितोऽपाक्पटले चतुर्थे चतुर्दशं ब्रह्मपदं चतस्रः ।
यः कृष्णनीलोनविमानलक्षा ब्रह्मेंद्रमर्चामि तमाप्तभक्तम् ॥ ११५ ॥

ओं ह्रीं ब्रह्मेंद्राय इदं....................................

द्वैतीयैके द्वादशं लांतवाख्यं श्रेणीबद्धं यः श्रितो प्राक्सुचक्रे ।
लक्षार्धं प्राग्भानि भुंक्ते विमानान्यर्हद्भक्तं तं यजे लांतवेंद्रम् ॥ ११६ ॥

ह्रीं बोलकर सनत्कुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११३ ॥ "एकाष्ट" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर माहेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११४ ॥ "पात्या स्थितो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ब्रह्मेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११५ ॥ "द्वैतीयैके" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर लांतवेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११६ ॥ "शुक्रेंद्र" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर शुक्रेंद्रको अर्घ चढावे

ओं ह्रीं लांतवेन्द्राय इदं... ।

शुक्रेंद्रमैकपटलिक चत्वारिंशत्सहस्रपीतासितद्याम् ।
दशममहाशुक्रोदकश्रेणीयद्धास्पदं यजे जिनभक्तम् ॥ ११७ ॥

ओं ह्रीं शुक्रेन्द्राय इदं... ।

पीतार्जुनैकेंद्रकषट्सहस्रविमानभुक्ति जिनपूजनोक्तम् ।
यजे शतारेन्द्रमिहाष्टमेहं स्थितं सहस्रार उदग्विमाने ॥ ११८ ॥

ओं ह्रीं शतारेंद्राय इदं .... ।

सप्तश्वेतांकः शतै : षट् पटल्यां षष्ठ्यां अेकश्रेणिपाये पटल्याम् ।
षष्ठे तिष्ठंत्यादे दक्षिणोदक्श्रेण्योश्चाये तांश्चतुःकल्पशक्रान् ॥ ११९ ॥

तत्रानतेंद्रं जिनमाग्रहस्य संस्कारनिद्रावितमोहतंद्रम् ।
अप्यद्भुतैर्भोगसुखैरलुप्तश्रापण्यशर्मस्मृतियर्चयामि ॥ १२० ॥

ओं ह्रीं आनतेंद्राय इदं... ।

॥ ११७ ॥ " पीतार्जुन " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर शतारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११८ ॥
" सतश्वेतौ " इत्यादि दो श्लोक और ओं ह्रीं बोलकर आनतेंद्रको अर्घ चढावे ॥११९॥१२०॥

स्वभोगवर्गप्रसृताक्षवर्गोप्युदीच्यदेहाक्षसुखैः प्रसक्तः ।
अर्हत्प्रभौ व्यक्तविचित्रभावो भजत्विमां प्राणतजिष्णुरिज्याम् ॥ १२१ ॥

ओं ह्रीं प्राणतेंद्राय इदं..।

स्थितोपि मौले वपुषि प्रदेशैस्तनूमुदीचीमनुसंदधानः ।
भजत्यनंतर्हितवाञ्छिनं यस्तं प्रीणम्यर्हणयारणेंद्रम् ॥ १२२ ॥

ओं ह्रीं आरणेंद्राय इदं..।

कदाचिदप्यस्युतमुच्यतेशभक्तेश्चतेर्दुश्चुरितात्परीतम् ।
एकान्नषष्टयग्रशतं विमानान्यधीशितारं प्रयतेच्युतेंद्रम् ॥ १२३ ॥

ओं ह्रीं अच्युतेंद्राय इदं...।

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेंद्रवासवब्रह्मेंद्रा
लांतवशुक्रशतारानतशक्रा प्राणतारणाच्युतशक्राः ।

" स्वभोगवर्ग " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर प्राणतेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १२१ ॥ " स्थितोपि " इत्यादि और ओं ह्रीं बोलकर आरणेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १२२ ॥ " कदाचिद " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर अच्युतेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १२३ ॥ " सौधर्मे " इत्यादि दो श्लोक बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ " इत्थं " इत्यादि श्लोक कहकर इष्टप्रार्थनाके

वालाग्रातरमेरुचूलिकपयोवायूभयोस्तभूतिभूपांगनाः
कल्पेंद्राः प्रददामि वोर्धितजिना यज्ञेत्र पूर्णाहुतिम् ॥ १२४ ॥
ये चत्वारिंशतेंद्रैर्भवनदिविपदां व्यंतराणां द्वियुक्त—
त्रिंशत्संख्यैर्युधाम्ना त्रिगुणवमुतैः सिंहसम्राट् शशीनैः ।
अप्यर्च्यंते चतुर्भिः समवसृतिपितैस्तन्मखारंभमुख्या
दद्यां पूर्णाहुतिं वो भवनवनसुरज्योतिरुद्धामरेंद्राः ॥ १२५ ॥

द्वात्रिंशत्पूर्णाहुतिः ।

इत्थं यथोचितविधिमतिपत्तिपूर्वयज्ञांशदानभृशदीपितपक्षपाताः
सर्वज्ञयज्ञपरिपूर्तिदुरीहितं मे मुख्यानुषंगिकफलैः प्रथयंतु शक्राः ॥ १२६ ॥
इष्टप्रार्थं नाथ पुण्यांजलिंक्षिपेत् । इति द्वात्रिंशादिंद्रार्चनविधानं

अथ पत्रांतरालस्थापितचतुर्विंशतियक्षार्चनम् ?

नाभेयाद्यपसव्यपार्श्वविहितन्यासांस्तदाराधका
अव्युत्पन्नदृशः सदैहिकफलप्राप्तीच्छयार्चंति यान् ।
आमंत्र्य क्रमशो निवेश्य विधिवत्पत्रांतरालेषु तान्
कृत्वारादधुना धिनोमि वलिभिर्यक्षांश्चतुर्विंशतिम् ॥ १२७ ॥

लिये पुष्पांजलिको क्षेपण करे ॥ १२६ ॥ इस तरह बत्तीस इंद्रोंकी पूजनविधि पूर्ण ...

गोमुखादिचतुर्विंशतियक्षसमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात् ।

यक्षाः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः।अत्रोपविशतैतान् वो यजे प्रत्येकमादरात् १२८

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रांतरालेषु पुष्पांजलिं क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

सव्येतरोर्ध्वकरदीप्रपरश्वधाक्षसूत्रं तथा धरकरांकफलेष्टदानम् ।
प्राग्गोमुखं वृषमुखं वृषगं वृषांकभक्तं यजे कनकभं वृषचक्रशीर्षम् ॥ १२९ ॥

ओं ह्रीं गोमुखयक्षाय इदं.................................... ।

चक्रत्रिशूलकमलांकुशवामहस्तो निस्त्रिंशदंडपरशूग्रवराण्यपाणिः ।
चामीकरद्युतिरिभांकनतो महादियक्षोऽर्च्यतो जगतश्चतुराननोऽसौ ॥ १३० ॥

पत्रके मध्यमें स्थापन किये गये चौवीस यक्षोंकी पूजाविधि कहते हैं। “नाभेयाद्य” इत्यादि श्लोक बोलकर गोमुखादि चौवीस यक्षोंकी समुच्चयपूजामें पहलेकी तरह विधि करे ॥ १२७॥ “यक्षाः सं” इत्यादि श्लोक बोलकर आवहनादि पूर्वक हरएककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञा करनेके लिये पत्रके मध्यमें पुष्प अक्षतोंको डाले ॥ १२८ ॥ अब हरएककी पूजा कहते हैं– “सव्येतरो” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर गोमुख यक्षको अर्घ चढावे ॥ १२९ ॥ “चक्र त्रिशूल” इत्यादि ओं ह्रीं बोलकर महायक्षको अर्घ चढावे ॥ १३० ॥ “चक्रासि” इत्यादि

ओं ह्रीं महायक्षाय इदं.. ।

चक्रासिशृण्युपगसव्यसयोन्यहस्तैर्दंडत्रिशूलमुपयन् शितकार्तिकाच ।
वाजिध्वजमभुनतः शिखिगोंजनाभ–रुयक्षः प्रतीक्षतु वार्लि त्रिमुखाख्ययक्षः ॥ १३१ ॥

ओं ह्रीं त्रिमुखाख्याय इदं.. ।

मेंखद्धनुःखेटकवामपाणिं सकंकपत्रास्यपसव्यहस्तम् ।
श्यामं करिस्थं कपिकेतुभक्तं यक्षेश्वरं यक्षमिहार्चयामि ॥ १३२ ॥

ओं ह्रीं यक्षेश्वरयक्षाय इदं.. ।

सर्पोपवीतं द्विपपन्नगोर्द्धकरं स्फुरद्दानफलान्यहस्तम् ।
कोकांकनम्रं गरुडाधिरूढं श्रीतुम्बरं श्यामरुचिं यजामि ॥ १३३ ॥

ओं ह्रीं तुम्बरयक्षाय इदं.. ।

तथा ओं ह्रीं बोलकर त्रिमुखयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३१ ॥ "मेंखद्धनुः" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर यक्षेश्वरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३२ ॥ "सर्पोपवीत" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर तुंबरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३३ ॥ "मृगारूढं" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर

मृगारूढं कुंतकरांपसव्यकरं सखेटा भयसव्यहस्तम् ।
श्यामांगमब्जध्वजदेवसेव्यं पुष्पाख्ययक्षं परितर्पयामि ॥ १३४ ॥

ओं ह्रीं पुष्पयक्षाय इदं.. ।

सिंहाद्रिरोहस्य सदंडशूलसव्यान्यपाणेः कुटिलाननस्य ।
कृष्णत्विषः स्वस्तिककेतुभक्तेर्मातंगयक्षस्य करोमि पूजाम् ॥ १३५ ॥

ओं ह्रीं मातंगयक्षाय इदं.. ।

यजे स्वधित्युग्यफलाक्षमाला वरांकवामान्यकरं त्रिनेत्रम् ।
कपोतपत्रं प्रभयाख्यया च श्यामं कृतेंदुध्वजदेवसेवम् ॥ १३६ ॥

ओं ह्रीं श्यामयक्षाय इदं.. ।

सहाक्षमाला वरदानशक्तिफलाय सव्यापरपाणियुग्मः ।
स्वारूढकूर्मो मकरांकभक्तो गृह्णातु पूजामजितः सिताभः ॥ १३७ ॥

पुष्पयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३४ ॥ " सिंहादि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर मातंगयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३५ ॥ " यजेस्वधि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर श्यामयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३६ ॥ सहाक्षमाला " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर अजितयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३७ ॥ " श्रीवृक्ष " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ब्रह्म यक्षको अर्घ चढावे ॥ १३८ ॥

सनागपाशोर्ध्वकरद्वयोधः करद्वयात्तेषु धनुः सुनीलः ।
गंधर्वयक्षः स्तभकेतुभक्तः पूजामुपैतु श्रितपक्षियानः ॥ १४५ ॥

ओं ह्रीं गंधर्वयक्षाय इदं.. ।

आरभ्योपरिमात्करेषु कलयन् वामेषु चापं पविं
पाशं मुद्गरमंकुशं च वरदः षष्ठेन युंजन् परैः ।
बाणाभोजफलस्रगच्छपटलीलीलाविलासाखिदक्
षड्ऋष्टगरांकभक्तिरसितः खेंद्रोच्यर्यते शंखगः ॥ १४६ ॥

ओं ह्रीं खेन्द्रयक्षाय इदं.. ।

सफलकधनुर्दंडपद्म खड्गमदरसुपाशवरप्रदाष्टपाणिम् ।
गजगमनचतुर्मुखेन्द्रचापद्युतिकलशांकनतं यजे कुबेरम् ॥ १४७ ॥

ओं ह्रीं कुबेरयक्षाय इदं.. ।

जटाकिरीटोष्ठमुखस्त्रिनेत्रो वामान्यखेटासिफलेष्टदानः ।
कूर्मांकनम्रो वरुणो वृषस्थः श्वेतो महाकाय उपैतु तृप्तिम् ॥ १४८ ॥

अर्घ चढावे ॥ १४५ ॥ "आरभ्यो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं पढकर खेंद्रयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४६ ॥ "सफलक" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर कुबेरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४७ ॥ "जटाकिरीटो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वरुणयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४८ ॥ "खेटा-

ओं ह्रीं वरुणयक्षाय इदं.................................. ।

खेटासिकोदंडशरांकुशाब्ज–चक्रेष्टदानोल्लसिताष्टहस्तम् ।
चतुर्मुखं नंदिगमुत्पलाकभक्तं जपाभं भृकुटिं यजामि ॥ १४९ ॥

ओं ह्रीं भृकुटियक्षाय इदं.................................. ।

श्यामस्त्रिवक्रो द्रुघणं कुठारं दंडं फलं वज्रवरौ च बिभ्रत् ।
गोमेदयक्षः क्षितशंखलक्ष्मा पूजां नृवाहोऽर्हतु पुष्पयानः ॥ १५० ॥

ओं ह्रीं गोमेदयक्षाय इदं.................................. ।

ऊर्ध्वद्विहस्तधृतवासुकिरुद्भटाधः सव्यान्यपाणिफणिपाशवरप्रणंता ।
श्रीनागराजककुदं धरणोऽभ्रनीलः कूर्मश्रितो भजतु वासुकिमौलिरिज्याम् १५१

ओं ह्रीं धरणयक्षाय इदं.................................. ।

मुद्गप्रभो मूर्धनि धर्मचक्रं बिभ्रत्फलं वामकरेथ यच्छन् ।
वरं करिस्थो हरिकेतुभक्तो मातंगयक्षोंगतु तुष्टिमिष्ट्या ॥ १५२ ॥

सि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर भृकुटि यक्षको अर्घ चढावे ॥ १४९ ॥ " श्यामस्त्रि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं पढकर गोमेदयक्षको अर्घ चढावे ॥ १५० ॥ " ऊर्ध्वद्विहस्त " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर धरणयक्षको अर्घ चढावे ॥ १५१ ॥ " मुद्गप्रभो " इत्यादि तथा ओं ह्रीं

ओं ह्रीं मातंगयक्षाय इदं...................................... ।

इत्थं योग्योपचारव्यतिकरपरमो जागरान् गृहाग्रव्यापाराः
शश्वदर्हत्प्रभुंसमयमहस्तायिनो यक्षमुख्याः ।
तद्भक्तोद्धर्षहर्षाप्लुतजलधिनिरुच्छ्वासलीलावगाह
प्रत्यूहापोहकृच्चः सृजतु परमसौपर्चपूर्णाहुतिर्वः ॥ १५३ ॥

पूर्णाहुतिः । इति चतुर्विंशतियक्षार्चनविधानम् । अथ चतुर्विंशतिपत्राग्रस्थापितशासनदेवतार्चनम् ।

संभावयंति वृषभादिजिनानुपास्य तद्वामपार्श्वनिहिता वरलिप्सवो याः ।
चक्रेश्वरीप्रभृतिशासनदेवतास्ताः द्विर्द्वादशादलमुखेषु यजे निवेश्य ॥ १५४ ॥

चतुर्विंशतिशासनदेवतासमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात् ।

यक्ष्यः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् १५५

बोलकर मातंगयक्षको अर्घ चढावे ॥ १५२ ॥ "इत्थं योग्यो" इत्यादि श्लोक पढकर पूर्णार्घ दे ॥१५३॥ इसप्रकार चौवीस यक्षोंकी पूजाका विधान हुआ । अब चौवीस पत्रोंके अग्रभागमें स्थापित शासनदेवताओंकी पूजा कहते हैं । "संभावयान्ति" इत्यादि श्लोक पढकर चौवीस शासनदेवताओंकी समुदायपूजाकेलिये पूर्व कही हुई विधि करे ॥ १५४ ॥ "यक्ष्यः" इत्यादि

आवहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्राग्रेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

भर्माभाद्य करद्वयालकुलिशा चक्रांकहस्ताष्टका
सव्यासव्यशयोल्लसत्फलवरा यन्मूर्तिरास्तेंबुजे ।
तार्क्ष्ये वा सह चक्रयुग्मरुचकत्यागैश्चतुर्भिः करैः
पंचेष्वास शतोन्नतप्रभुनतां चक्रेश्वरीं तां यजे ॥ १५६ ॥

ओं ह्रीं अप्रतिहतचक्रे देवि इदं.. ।

स्वर्णद्युतिशंखरथांगशस्त्रा लोहासनस्थाभयदानहस्ता ।
देवं धनुः सार्धचतुःशतोच्चं वंदारुवीष्टामिह रोहिणीष्टेः ॥ १५७ ॥

ओं ह्रीं अजितदेवि इदं.. ।

पक्षिस्थार्धेंदुपरशुफलासीढीवरैः सिता । चतुश्चापशतोच्चार्हद्भक्ता प्रज्ञप्तिरिज्यते ॥ १५८ ॥

श्लोक बोलकर आवाहन आदि पूर्वक हरएककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञाके लिये पत्रके अग्रभागमें पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ १५५ ॥ अब प्रत्येककी पूजा कहते हैं–" भर्मा " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर चक्रेश्वरी देवीको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ १५६ ॥ "स्वर्णद्युति" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर अजितादेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १५७ ॥ "पक्षिस्था"

ओं ह्रीं नम्रे देवि इदं.. ।

सनागपाशोरुफलाक्षसूत्रा हंसाधिरूढा वरदानुयुक्ता ।
हेमप्रभार्धत्रिधनुः शतोच्चतीर्थेशनम्रा पविशृंखलार्चाम् ॥ १५९ ॥

ओं ह्रीं दुरितारि देवि इदं.. ।

गजेंद्रगावज्रफलोद्यचक्रवरांगहस्ता कनकोज्ज्वलांगी ।
गृह्णातु दंडत्रिशतोन्नतार्हन्नतार्चनां खड्गवराच्यते त्वम् ॥ १६० ॥

ओं ह्रीं मोहिनि देवि इदं.. ।

सिता गोष्टपगा घंटां-फलशूलवराष्टताम् । यजे काली द्विको दंडशतोच्छ्रायजिनाश्रयाम् ॥

ओं ह्रीं मानवि देवि इदं.. ।

चंद्रोज्ज्वलां चक्रशरासपाश चर्मत्रिशूलेषुझषासिहस्ताम् ।

इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर नम्रादेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १५८ ॥ "सनाग" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर दुरितारि देवीको अर्घ चढावे ॥ १५९ ॥ "गजेंद्र" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर मोहिनी देवीको जलादि. चढावे ॥ १६० ॥ "सिता." इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर मानव देवीको जलादि चढावे ॥ १६१ ॥ "चंद्रो" इत्यादि

श्रीज्वालिनीं सोर्धधनुःशतोच्चजिनानतां कोणगतां यजामि ॥ १६२ ॥

ओं ह्रीं ज्वालामालिनीदेवि इदं............................ ।

कृष्णा कूर्मासनाधन्वशतोन्नताजिनानता । महाकालीज्यते वज्रफलमुद्गरदानयुक् ॥ १६३ ॥

ओं ह्रीं भृकुटि देवि इदं.................................. ।

झपदामरुचकदानोचितहस्तां कृष्णकालगां हरितांम् ।
नवतिधनुस्तुगाजिनप्रणतामिह मानवीं प्रयजे ॥ १६४ ॥

ओं ह्रीं चामुंडे देवि इदं.................................. ।

समुद्राब्जकलशां वरदां कनकप्रभाम् । गौरीं यजेशीतिधनुः प्राशु देवीं मृगोपगाम १६५

तथा "ओंह्रीं" बोलकर ज्वालामालिनीदेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १६२ ॥ "तृष्णा" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" पढकर भृकुटि देवीको जलादि चढावे ॥ १६३ "झप" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" कहकर चामुंडा देवीको जलादि चढावे ॥ १६४ ॥ "समुद्र" इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर गोमेधकिदेवीको जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ १६५ ॥ "सपद्म" इत्यादि

पीतां विंशतिचापोच्चस्वामिकां बहुरूपिणीम् । यजे कृष्णाहिगां खेटफलखड्गवरोत्तराम् १७४॥
ओं ह्रीं सुगंधिनि देवि इदं.............................. ।

चामुंडा यष्टिखेटाक्षसूत्रखड्गोत्कटा हरित् । मकरस्थाचर्यते पंचदशदंडोन्नतेशभाक् ॥ १७५ ॥
ओं ह्रीं कुसुममालिनि देवि इदं.............................. ।

सव्येकद्युपगप्रियंकर सुतुक् प्रीत्यै करे बिभ्रतीं
दिव्याम्रस्तबकं शुभंकरकराश्लिष्टान्यहस्तांगुलिम् ।
सिंहे भर्तृचरे स्थितां हरितभामाम्रद्रुमच्छायगां
वंदारुं दशकार्मुकोच्छ्रयजिनं देवीमिहाम्रां यजे ॥ १७६ ॥
ओं ह्रीं कूष्मांडिनि देवि इदं.............................. ।

येष्टुं कुर्कटसर्पगात्रिफणकोत्तंसा द्विषो यात षट्
पाशादिः सदसत्कृते च धृतशंखास्यादिदो अष्टका ।
तां शांतामरुणां स्फुरच्छृणिसरोजन्माक्षव्यालांबरां
पद्मस्थां नवहस्तकप्रभुनतां यायज्मि पद्मावतीम् ॥ १७७ ॥

" ओंह्रीं " बोलकर सुगंधिनिदेवीको जल आदि चढावे ॥ १७४ ॥ " चामुंडा " इत्यादि तथा
' ओंह्रीं बोलकर कुसुममालिनीको जल आदि चढावे ॥ १७५ ॥ " सव्ये " इत्यादि तथा
' ओंह्रीं बोलकर कूष्मांडिनी देवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ १७६ ॥ " येष्टुं " इत्यादि

ॐ ह्रीं पद्मावतीदेवि इदं.............................. ।

सिद्धायिकां सप्तकरोच्छ्रितांगजिनाश्रयां पुस्तकदानहस्ताम् ।
श्रितां सुभद्रासनमत्र यज्ञे हेमद्युतिं सिंहगतिं यजेऽहम् ॥ १७८ ॥

ॐ ह्रीं सिद्धायिनि देवि इदं.............................. ।

इत्यावर्जितचेतसः समुचितैः सन्मानदानैः स्फुरन्
स्यात्कारध्वजशासनद्विपदपक्षेपोच्छलघुत्कपः ।
यक्ष्यं संघनृपादिलोकविपदुच्छेदादिहार्हन्महे
कुर्वाणाः सहकारितां समिमां गृह्णंतु पूर्णाहुतिम् ॥ १७९ ॥

पूर्णाहुतिः । इति शासनदेवतार्चनविधानम् । अथ द्वारपालानुकूलनम् ।

सोमयमवरुणधनदा जिनदेवीद्वारपालननियुक्ताः ।
स्वं स्वमिहेत्य नियोगं कुर्वद्भ्यः को न वः स्पृहयेत् ॥ १८० ॥

सोमादिद्वारपालसांमुख्यविधानाय दिक्षु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

तथा "ओंन्हीं" बोलकर पद्मावती देवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥१७७॥ "सिद्धायिकां इत्यादि तथा "ओंह्रीं" बोलकर सिद्धायिनी देवीको जल आदि आठ द्रव्य चढावे १७८॥ "इत्यावर्जित" इत्यादि श्लोक कहकर आठ द्रव्यसे सबको पूर्णार्घ दे ॥ १७९ ॥ इस प्रकार

कोदंडकांडस्फुटदृष्टिमुष्टिमरुद्घटोऽन्यकथानुरक्तम् ।
वेद्याः पुरो द्वारमिमामवंतं सोमोपगृह्णाम्युचितैर्भवंतम् ॥ १८१ ॥
ओं धनुर्धराय अर अर त्वर त्वर हूं सोम आगच्छागच्छ इदं जलं............ ।

द्विड्वर्गदंडोद्यतचंडदंडं प्रचंडसामाजिकसंकथास्थम् ।
वेदिप्रतीहारमपाच्यमेतं पांतं यम त्वामनुकूलयामि ॥ १८२ ॥
ओं दंडधराय अर २ त्वर २ हूं यम आगच्छागच्छ इदं..................... ।

विषाक्तजिह्वायुगलीढसृक्कस्फुलिंगवांत्युग्रभुजंगरज्जुः ।
प्रतीच्यवेदीमुखद्वास्थभृत्यवृत्तः प्रचेतः कुरु चारुचेतः ॥ १८३ ॥
ओं पाशधराय अर २ त्वर २ हूं वरुण आगच्छागच्छ इदं............ ।

शासनदेवताओंका पूजन समाप्त हुआ । अब द्वारपालोंको अनुकूल करते हैं । "सोम" इत्यादि श्लोक बोलकर उन सोम आदिको सन्मुख करनेके लिये दिशाओंमें पुष्प अक्षतको वखेरै ॥ १८० ॥ "कोदंड" इत्यादि तथा "ओंधनु" इत्यादि बोलकर सोमको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥१८१॥ "द्विड्वर्ग" इत्यादि तथा "ओं दंड" इत्यादि बोलकर यमको जल आदि चढावे ॥ १८२ ॥ "विषाक्त" इत्यादि तथा "ओं पाश" इत्यादि बोलकर वरुणको जल आदि चढावे ॥ १८३ ॥ "इतस्ततो" इत्यादि तथा "ओं गदा" इत्यादि बोलकर

इतस्ततो नाभिगिरेः सगर्भा गदां सलीला भ्रमयन्नुदीच्ये ।
द्वारे निषण्णोनुचरैर्वितर्दैः कुबेर वीरानुसरोपचार ॥ १८४ ॥

ओं गदाधराय अर २ त्वर २ हूं कुबेर आगच्छागच्छ इदं........... ।

एवं प्रियाकृताः सोमप्रमुखा द्वास्थकुंजराः। क्षुद्रान् क्षिपंतो विशतः सलुनु मन्वताम्॥१८५॥

पुष्पांजलिः । इति द्वारपालानुकूलनाविधानम् । अथ दिक्पालानुकूलनम् ।

इंद्राग्निश्राद्धदेवाः शरपतिवरुणस्पर्शनश्रीदरुद्राः
पूर्वाद्याशासु वेधास्त्रिजगदधिपतेः प्रासरक्षाधिकाराः ।
तद्यज्ञेस्मिन्नवात्मप्रयाति विहरतामेत्य पल्यादियुक्ता
विघ्नंतो यथास्वं वितनुत समयोद्योतमौचित्य कृभ्याः ॥ १८६ ॥

इंद्रादिदिक्पालानामावाहनादिपुरस्सरार्घ्यपणाय दिक्षु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अथ पृथगिष्टिः ।

रूप्याद्रिस्पार्द्धिघंटायुगपटुकटुटंकास्लनानिशुंभ—
त्रूषासख्यातिचित्रोज्ज्वलविलसल्लक्ष्मवर्ष्मद्वयस्थं ।

कुबेरको जल आदि चढावे ॥ १८४ ॥ " एवं प्रिया " इत्यादि बोलकर पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ १८५ ॥ इसतरह द्वारपालोंको अनुकूलकरनेकी विधि हुई । अब दिक्पालोंको प्रसन्न करनेकी विधि कहते हैं । " इंद्रादि " इत्यादि श्लोक बोलकर इंद्र आदि दिक्पालोंका आवाहन आदि करनेके लिये चारोंतरफ पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ १८६ ॥ अब इनकी जुदी जुदी पूजा

इप्यत्सामानिकादित्रिदशपरिवृतं रुप्यसंच्यादि देवी
लोलाक्षं वज्रभूषोद्भटसुभगरुचं प्रागिहेंद्रं यजामि ॥ १८७ ॥

ओं ह्रीं इन्द्र आगच्छागच्छ इंद्राय स्वाहा..................।

रुक्मारुग्घुर्घुरस्त्रग्गलचद्धुलपृथुमायभृंगाभतुंग—
स्थं रौद्रपिंगेक्षणयुगममलं ब्रह्मसूत्रं शिखाग्रम् ।
कुंदी वाममकोष्ठे दधतमितरपाण्यांत पुण्याक्षसूत्रं
स्वाहान्वीतं धिनोमि श्रुतिमुखरसभं प्राच्यपाच्यंतरेऽग्निम् ॥ १८८ ॥

ओं ह्रीं अग्ने आगच्छागच्छ अग्नये स्वाहा ।

कल्पांताब्दोधजेत्र त्रिगुणफणिगुणोद्ग्राहितग्रैवघंटा
टंकारात्युग्रशृंगक्रमहतभधरव्रातरक्ताक्षसंस्थं
चंडार्चिः कांडदंडोद्भुमरकरमतिक्रूरदारादिलोकं
कार्ण्योद्रेकं नृशंस प्रथममथ यम दिश्यपाच्यां यजामि ॥ १८९ ॥

कहते हैं ॥ "रुप्याद्रि" इत्यादि तथा "ओंह्रीं" बोलकर इंद्रको पूजाद्रव्य चढावे ॥१८७॥
"रुक्मा" इत्यादि तथा "ओंह्रीं" इत्यादि बोलकर अग्निको पूजाद्रव्य चढावे ॥ १८८ ॥
"कल्पांता" इत्यादि तथा "ओंआं" इत्यादि बोलकर यमको पूजाद्रव्य चढावे ॥ १८९ ॥

ओं आं क्रौं ह्रीं यमागच्छागच्छ यमाय स्वाहा ।

आरूढं धूमधूम्रायतविकटसटास्ताग्रादिक्रूक्षरूक्षमा

लक्षाक्षावशिष्टास्फुटरुदितकला योद्रमाभांगमृक्षम् ।

क्रूरक्रव्यातपरीतं तिमिरचयरुचं मुद्गरक्षुण्णरौद्र—

क्षुद्रौघं त्रात याम्या परहरतमहं नैर्ऋतं तर्पयामि ॥ १९०

ओं आं क्रौं ह्रीं नैर्ऋत्यागच्छागच्छ नैर्ऋत्याय स्वाहा ।

नित्यांभः क्रोलिपाङ्गुत्कटकापिलविशच्छेदसोदर्यदंत—

प्रोत्फुल्यरपभ्रखेलत्करकारिमकरव्योमयानाधिरूढम् ।

प्रेंखन्मुक्ताप्रवालाभरणभरमुपस्थाद्दाराहृतासं

स्फूर्जद्भीमाहिपासं वरुणमपरादिग्रक्षणं प्रीणयामि ॥ १९१ ॥

ओं आं क्रौं ह्रीं वरुणागच्छागच्छ वरुणाय स्वाहा ।

वलगच्छृंगाग्रभिन्नांबुदपटलगलत्तोयपीतश्रमाभ्र

प्लुत्यस्तस्वांतरंहः खुरकषितकुलग्रावसारंगयुग्यम् ।

"आरूढं" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर नैर्ऋत्यको अर्घ चढावे ॥ १९० ॥
नित्यांभ" इत्यादि तथा "ओं आं" इत्यादि पढकर वरुणको अर्घ चढावे ॥ १९१ ॥" वल्ग"

व्यालोलद्दात्रयंत्रं त्रिजगदसुधृ ति ग्र ग्रद्रुमास्त्रं
सर्वार्थानर्थसर्गप्रभुमनिलमुदक् प्रत्य तः प्रणौमि ॥ १९२ ॥
ओं आं क्रों ह्रीं अनिलागच्छागच्छ अनिलाय स्वाहा ।

हांसोघो नाह्यमानं पवननरिनृतत्केतुपंक्ति विमानं
स्वारूढः पुष्पकाख्यं क्रमसखरसनाऽऽपमुक्ताकलापः ।
अग्राम्योद्दामवेषः सुललितधनदेव्यादिवक्त्राब्जभृंगः
शक्तीभिन्नारिमर्मा भजतु बलिमुदग्भुक्तिवीरः कुवेरः ॥ १९३ ॥
ओं आं क्रों ह्रीं कुवेरागच्छागच्छ कुवेराय स्वाहा ।

सास्नावाचालकिंकिण्यनणुरणनझणत्कारमंजीरसिंजा
रम्योद्यच्छृंगहेलाविहरदुरुशरच्चंद्रशुभ्रर्षभस्थम् ।
भास्वद्भूपाभुजंगभुजगासितजटाकेतकार्द्धेंदुचूलं
दधत्शूलं कपालं सगणवामिहार्चामि पूर्वोत्तरेशम् ॥ १९४ ॥
ओं आं क्रों ह्रीं ईशानागच्छागच्छ ईशानाय स्वाहा ।

इत्यादि तथा "ओं आं" इत्यादि बोलकर वायुको अर्घ चढावे ॥१९२॥ "हांसो" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि पढकर कुवेरको अर्घ चढावे ॥ १९३ ॥ "सास्ना" इत्यादि तथा "ओं" इ-

इत्यर्हन्मदुसामवायिकनयाह्वानादियोग्यक्रमं—
दिक्पालाः कृततुष्टयः परिजनोत्कृष्टाश्रियोष्टाप्यमू ।
द्रष्टा कामदमर्हदध्वरमरं दिक्चक्रमाक्रामतो
भव्यान् संदधतः शुभैः सह भजंत्वेतर्हि पूर्णाहुतिम् ॥ १९५ ॥

पूर्णाहुतिः । इति दिक्पालार्चनविधानम् । अथ दिक्चतुष्टयनिविष्टप्रभावनोद्भटयक्षानुकूलनम् ।

प्रभुं भक्तुमिहागत्य प्राचीं चिन्वान्निजाश्रिया । बलिं विजययक्षेश मंत्रपूतां स्वसात्कुरु ॥१९६॥

ओं ह्मल्व्र्यूं विं विजययक्ष बलिं गृहाण गृह्ण गृह्ण स्वाहा ।

अत्रापाचीमलंकृत्य भजमानो जगत्पतिम् । यथार्हबलिसंतुष्टो वैजयंत जयंत नु ॥ १९७ ॥

ओं ह्मल्व्र्यूं वैं वैजयंत बलिं........................ ।

देवाधिदेवसेवायै प्रतीचीं दिशमास्थितः । बलिदानेन संप्रीतो जयंत जय दुर्जयान् ॥ १९८॥

ॐ ह्मल्व्र्यूं जं जयंत बलिं.................................. ।

त्यादि कहकर ईशानको अर्घ चढावे ॥ १९४ ॥ "इत्यर्ह" इत्यादि बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ १९५ ॥ इसतरह दिक्पालोंकी पूजाविधि पूर्ण हुई । अब चारों दिशाओंके यक्षोंका सत्कार करते हैं । "प्रभुं" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर विजययक्षको अर्घ चढावे ॥ १९६ ॥ "अत्रापा" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर वैजयंतको अर्घ चढावे ॥ १९७ ॥ "देवाधि इत्यादि तथा "ओं"इत्यादि बोलकर जयंतको अर्घ चढावे ॥ १९८ ॥ " उदीची " इत्यादि

उदीचीं भूषयन् भूत्या सर्वज्ञोपासनोत्सुकः । अपराजित यक्ष त्वं प्रीयस्व बलिनामुना॥१९९॥

ॐ झ्म्ल्व्र्यूं अं अपराजित बलिं.. ।

एवं संमानिता यूयं जिनेंद्रसमये रताः । प्रतिष्ठासमयेऽमुष्मिन् यतध्वं विश्वशांतये ॥ २०० ॥

पूर्णाहुतिः । इति विजयादियक्षानुकूलनविधानम् । अथैशानदिश्यनावृतार्चनम् ।

जंबूवृक्षस्य नानामणिमयवपुषः प्राच्यजंबूद्रुतस्य
प्राक्शाखामावसंतं नवजलदरुचं पक्षिराजाधिरूढम् ।
कुंडीशंखाक्षमालारथचरणकरं त्राणनिःशेषजंबू—
द्वीपश्रीकं यजेस्मिन् विधुरविधुतयेनावृतं व्यंतरेंद्रम् ॥ २०१ ॥

ओं दशदिशाधिनाथं त्रैलोक्यदंडनायकं जंबूद्वीपाधिपतिं गरुडपृष्ठमारूढं स्निग्धभिन्नांजनाभमक्षसूत्रकमंडलुन्यग्रहस्तं चतुर्भुजं शंखचक्रविधृतभुजादंडं यक्षिणीसहितं सपरिजनं सपरिवारमनावृतं देवं समाह्वयामीह स्वाहा हे अनावृतागच्छागच्छ अनावृताय स्वाहा अनावृतपरिजनाय स्वाहा ।

तथा "ओं" इत्यादि बोलकर अपराजितको अर्घ चढावे ॥१९९॥ "एवं संमा" इत्यादि श्लोक बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ २०० ॥ इस प्रकार विजयादि यक्षोंका सत्कार हुआ । अब ईशानदिशाके अनावृत यक्षकी पूजा कहते हैं । "जंबूवृक्ष" इत्यादि तथा "ओं दश" इत्यादि पढकर जल आदि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ २०१ ॥ "व्रतांते" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर

ब्रह्मांते दिक्षु रुद्राद्यधिपतिषु समाग्न्यामसूर्याभपूर्व—
द्विद्विस्वर्भूगणैकोत्तरभूतिषु वसंत्यष्ट सारस्वताद्याः ।
यद्वर्गास्ते स्वतंत्राः क्षतविषयतृषो भाविजन्माप्यमोक्षाः
पूर्वज्ञा मेघ लौकांतिकसुरमुनयस्तीर्थकृच्छंसिनोऽर्च्याः ॥ २०२ ॥

ओं ह्रीं लौकांतिकदेवेभ्यः पुष्पांजलिं निर्वपामीति स्वाहा । ब्रह्मेंद्रोपरि देवर्षिपुष्पांजलिः ।

मुख्योपचारिकचरित्रचितोरुपुण्यपाकाक्षयस्थसितरत्नविमानवासान् ।
अर्हत्प्रतिष्ठितिमिमामनुमोदमानान् संमानयामि कुसुमांजलिनाहमिंद्रान् ॥ २०३ ॥

ओं ह्रीं अहमिंद्रदेवेभ्यः पुष्पांजलिं निर्वपामीति स्वाहा । अच्युतेंद्रोपरि अहमिंद्रपुष्पांजलिः ।

अथ विधिशेषम् ।

पूर्वादिदिक्षु वेद्या मंगलशांतिकजयेष्टसिद्ध्यर्थम् ।
मंगलशस्त्रपताकाकलशानथ योजयेष्टशः क्रमशः ॥ २०४ ॥

मंगलादिस्थापनाप्रतिज्ञानाय दिक्षु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

लौकांतिक देवोंके लिये पुष्पोंको चढावे ॥ २०२ ॥ "मुख्यो" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर अहमिन्द्र देवोंके लिये पुष्पांजलि चढावे ॥ २०३ ॥ अब शेष विधान कहते हैं । "पूर्वादि" इत्यादि श्लोक पढकर मंगल आदि आठ द्रव्योंकी स्थापनाके लिये दिशाओंमें पुष्प अ-

प्राग्वत् प्रार्च्यं तथा दलेष्वनुदिशं देवीर्जयाद्याः पृथक्—
जंभाद्याश्च विदिग्दलेषु धिनुयां दिग्द्वाररैराक्षिणः ॥ २१४ ॥

बहिर्मंडलपूजाप्रतिज्ञानाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् । अत्रापि पूर्ववत् कर्णिकाः परब्रह्मादिपदैः पूरयित्वा तत्पद्मदलेषु पूर्वादिदिक्षु ओं जये स्वाहा, ओं विजये स्वाहा, ओं अजिते स्वाहा, ओं अपराजिते स्वाहा । आग्नेय्यादिविदिक्षु च ओं जंभे स्वाहा, ओं मोहे स्वाहा, ओं स्तंभे स्वाहा, ओं स्तंभिनि स्वाहा इति लिखित्वा बहिश्चतुर्द्वारचतुष्कोणमंडलं विलिख्य तद्बहिः पूर्ववद्दिक्पालान् द्वारपालान् यक्षदेवांश्च संस्थाप्य चिद्रूपं विश्वरूपेत्यादिविधिना कर्णिकार्चनं संक्षेपेण कृत्वा जयादिदेवीर्दिक्पालान् द्वारपालान् यक्षांश्च पूजयेत् । अथ जयादिदेवतार्चनम् ।

जयाद्याः शब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् २१५

काष्ठासन (पट्टा) स्थापित करे ॥ २१३ ॥ अब चार पीठोंकी पूजा कहते हैं । "तद्वेदीं" इत्यादि श्लोक कहकर बाह्यमंडलकी पूजाके लिये पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २१४ ॥ यहांपरभी पहलेकी तरह कर्णिकामें अरहंत आदि पदोंको लिखकर उस कमलपत्रपर पूर्व आदि दिशाओंमें "ओं जये" इत्यादि चार पद लिखे । फिर आग्नेयी आदि विदिशाओंके पत्तोंपर "ओं जंभे" इत्यादि चार पद लिखे । उसके बाद बाहरके चार दरवाजोंपर चौकोन मंडल लिखकर उसके बाहर पहलेकी तरह दिक्पाल, द्वारपाल और यक्षदेवोंको स्थापन करके "चिद्रूपं" इत्यादि कही हुई विधिसे कर्णिकाकी संक्षेपसे पूजा करे । फिर जयादि देवी, दि-

आवाहनाद्दिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रातिज्ञानाय पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

जये जयाद्ये विजये विजैनि जैने जितपराजितेस्मिन् ।
जंभेवमोहनेस्ति भाः स्तंभिनि रक्ष रक्षास्मान ॥ २१६ ॥

स्वोपग्रहाय पत्रेषु पुष्पाक्षतानि क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

इहार्हतो विश्वजनीनवृत्तेः कृतौ कृताराातिजये जये त्वाम् ।
सद्गंधपुष्पाक्षतदीपधूपफलादिसंपादनया धिनोमि ॥ २१७ ॥

ओं ह्रीं जये देवि आगच्छागच्छ इदं.................................. ।

जिनाधिराजे विजयैकविद्ये जगद्विजेतुः कुसुमायुधस्य ।
विजेतरि स्फारितभूरिभक्ति त्वामत्र यज्ञे विजये यजेहम् ॥ २१८ ॥

ओं ह्रीं विजये देवि.. ।

कपाल, द्वारपाल, और यक्षोंको पूजे ॥ अब जया आदि देवताओंकी पूजा कहते हैं । जया इत्यादि श्लोक बोलकर आवाहनादिपूर्वक हर एककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञाके लिये पुष्प-अक्षतोंको क्षेपण करे॥ २१५॥ "जये" इत्यादि श्लोक बोलकर अपने उपकारके लिये पत्रोंपर पुष्प अक्षतको क्षेपण करे ॥ २१६ ॥ अब प्रत्येककी पूजा कहते हैं। "इहा" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर जया देवीको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ २१७ ॥ "जिना" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर विजयाको अर्घ चढावे ॥ २१८ ॥ "जग" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं"

जगज्जयोज्जागरिणां कषायद्विषां न केनापि जितं जिनेंद्रम् ।
आवर्जयंतामृजितोर्जितोजामूर्जासये त्वामजितेर्चयामि ॥ २१९ ॥

ओं ह्रीं अजिते... ।

पराजितारेरपराजिताख्रैरप्याश्रितस्यारिपराजयाय ।
जगत्प्रभोरत्र महे महामि पराजिते त्वामपराजितेत्र ॥ २२० ॥

ओं ह्रीं अपराजिते... ।

व्यामोहनिद्रां भुवनानि जंभ विशंत्युद्धरतो जिनस्य ।
वितन्वतां यज्ञप्रजन्यहंत्रीं त्वा देवि जंभे परिपूजयामि ॥ २२१ ॥

ओं ह्रीं जंभे... ।

चिरं जगन्मोहविषेणसुप्तं स्याद्वादमंत्रेण विबोधयंतम् ।
श्रीबुद्धमाराधयतां हि मोहे त्वां मोहयंतीमहितान्महामि ॥ २२२ ॥

ओं ह्रीं मोहे... ।

बोलकर अजिताको जलादि चढावे ॥ २१९ ॥ "पराजि" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर अपराजिताको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ २२० ॥ "व्यामोह" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर जंभा देवी पर जलादि चढावे ॥ २२१ ॥ "चिरं" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर

जिनं महाभव्यविशुद्धिभावप्रासादसुस्तंभमुपास्ति यस्तम् ।
प्रकुर्वतं स्तंभयतां स्तभंतं स्तंभे सृजंतीं भवतीं यजामि ॥ २२३ ॥

ओं ह्रीं स्तंभे देवि.. ।

प्रवादिनां स्तंभयतोत्र मानस्तंभेन दूरादपि मंक्षु मानम् ।
जिनेस्य यज्ञेर्चनया सपत्नधीस्तंभिनि स्तंभिनि संस्तुवे त्वाम् ॥ २२४ ॥

ओं ह्रीं स्तंभिनि देवि.. ।

इत्येताः पृथुयशसो जयादिदेव्यो देशामभिरुचिते जिनेंद्रयज्ञे ।
पूर्णाहुतिमिह लंभिताः प्रपूज्य श्रेयांसि प्रददतु भव्यभाक्तिकेभ्यः॥ २२५ ॥

पूर्णाहुतिः ।

प्राच्याद्याग्नेयकोणादिपत्रेष्विष्टाः क्रमादिमाः। अष्टौ जयादिजंभादिदेव्यः शांतिं वितन्वताम् ॥

इष्टप्रार्थना । इति जयादिदेवतार्चनाविधानम् । अथ दिक्पालान् द्वारपालान् यक्षांश्च संक्षेपेण सत्कुर्यात् । इति बहिर्मंडलचतुष्टयार्चनविधानम् ।

मोहा देवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२२ ॥ "जिनं" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर स्तंभादेवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२३ ॥ "प्रवादि" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर स्तंभिनीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२४ ॥ "इत्येताः" इत्यादि श्लोक बोलकर स-

इत्थं निष्ठितपूज्यपूजनविधिः शक्रो महार्घेण तां
त्रिर्वेदीमवतार्य भूतिभरतो भक्त्या परीत्यानतः ।
सद्धूपाश्चतुरोऽपि वा सुकुसुमैस्तं जापयन् प्रतस—
द्रूपं मंत्रमनादिसिद्धमुरुधीरीशानवेदीं यजेत् ॥ २२७ ॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं। चत्तारि मंगलं अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहुमंगलं केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगोत्तमा अरहंतलोगोत्तमा सिद्धलोगोत्तमा साहुलोगोत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारिसरणं पव्वज्जामि अरहंतसरणं पव्वज्जामि सिद्धसरणं पव्वज्जामि साहुसरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ह्रौं स्वाहा। अनादिसिद्धमंत्रः। इति मूलवेदिकार्चनविधानम्। अथोत्तरवेदिकार्चनम्।

वेद्यां चान्यां सुरगिरिशिलावेदिरत्कर्णिकायां
माग्वन्मंत्रानथ कजदलेष्वष्टसु श्र्यादिदेवीः ।

धको पूर्णार्घ देवे ॥ २२५ ॥ "प्राच्या" इत्यादि श्लोक बोलकर इष्टवस्तुकी प्रार्थना करे ॥ २२६ ॥ इसतरह जया आदि देवताओंकी पूजा हुई। इसके बाद दिक्पाल, द्वारपाल और यक्षोंका संक्षेपसे सत्कार करे ॥ इसप्रकार बाह्य मंडलचतुष्ककी पूजाविधि जानना। "इसप्रकार" वह इंद्र पूजाविधि करके अनादि सिद्ध मंत्रको जपता हुआ ईशानवेदीको पूजे ॥ २२७ ॥ "णमो" इत्यादि स्वाहातक अनादिसिद्ध मंत्र जानना ॥ इसतरह मूलवेदी-

अष्टेंद्रादीन् क्षितिपुरबहिर्दिक्षु देवीजयाद्या
न्यस्य द्वारेष्वनु च चतुरो यक्षदेवान् यजामि ॥ २२८ ॥

ईशानवेद्यां यागमंडलपूजाप्रतिज्ञानाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् । अथ पूर्वविधिना कर्णिकांतःस्थापितां परब्रह्मादिपूजां विधाय पद्मदलेष्वष्टौ श्र्यादिदेवीः पूजयेत् । तथाहि ।

याः सामानिकपर्षदंबुजपरीवारान्वया ध्रुवंभू
पद्मादिह्रदपुष्करेंद्वुत्रिंशदप्रासादवासा मुदा ।
सेवंते बहुधा जिनेंद्रजननीं श्र्यादीन्नयंत्यो गुणान्
भांती पुष्पमुखैः करात्तकलशैस्ताः श्र्यादिदेवीर्यजे ॥ २२९ ॥

श्र्यादिदेवीसमुदायपूजाविधानाय पत्राष्टके कुंकुमालुलितपुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अथ पृथगिष्टिः ।

की पूजाविधि हुई । अब उत्तरवेदीकी पूजा कहते हैं । "वेद्यां" इत्यादि श्लोक पढकर ईशानवेदीमें यागमंडलकी पूजा करनेके लिये पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २२८ ॥ अब पहले कही हुई विधिके अनुसार कर्णिकाके मध्यमें स्थापित अरहंत आदि परमेष्ठीकी पूजा करके आठ कमलपत्रोंपर श्री आदि आठ देवियोंकी पूजा करे । उसीको कहते हैं । "याःसामा" इत्यादि श्लोक बोलकर श्रीआदि देवीयोंके समूहकी पूजा करनेके लिये आठ पत्तोंपर केशरसे लेपे हुए पुष्पअक्षतोंको क्षेपण करे ॥ २२९ ॥ अब जुदी जुदी पूजा कहते हैं । "श्र्याद्याः"

पाशाः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः। अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात्॥२३०॥

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

क्षोण्या पार्श्वततेंद्रकार्मुकतडिद्दंडद्युतिं तन्वतो
हिम्याद्रेरुपरित्यमुज्ज्वलयतः पद्मह्रदं पुष्करात् ।
यत्यद्रव्यवरैः सुरालहृदतैर्गर्भं विशोध्य श्रियं
तन्वाना जिनमातरं भजति या सा श्रीस्तडिद्धार्च्यते ॥ २३१ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते श्रीदेवि आगच्छागच्छ इदं जलं........ ।

नानारत्नमयूखपार्श्वखचितक्षीरादवेलाक्षिपो
मूर्द्धन्युल्लसतो महाहिमवतः पद्मान् महापाशिके ।
संविद्वालसखीमुपेत्य विनयाल्लज्जां दृशोर्व्यंजती
यार्हन्मातुरुपासनां वितनुते सा ह्रीर्जपाभार्च्यते ॥ २३२ ॥

इत्यादि श्लोक बोलकर आवाहनादिपूर्वक हरएककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञा करनेके लिये पत्तोंपर पुष्प और अक्षत क्षेपण करे ॥ २३० ॥ "क्षोण्या" इत्यादि तथा "ओं सुवर्ण" बोलकर श्रीदेवीको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ २३१ ॥ "नानारत्न" इत्यादि तथा "ओं रक्त" इत्यादि बोलकर ह्री देवीको अर्घ चढावे ॥ २३२ ॥ "उद्यंत" इत्यादि तथा "ओं

ओं रक्तवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते ह्रीदेवि इदं........................ ।

उद्यंतं सहतोभितो हरिधनुष्कीर्णां रविं सीकरै—
मूर्ध्नोर्वीं निषधस्य चुंबति महापद्मादपि ज्यायसी ।
कंजादेत्य तिगिंछ एधितरुचेर्धैर्यं परं पुष्यतीं
या जैनां भजतोंबिकामुपहरे तां चीनवर्णां धृतिम् ॥ २३३ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते धृति देवि इदं..................... ।

पार्श्वोद्भासिविचित्ररत्नरुचिरां वैडूर्यगात्रीं गदां
द्वीपेनेव धृतां पुनात्युपरिमे नीलाचलं नीरजात् ।
भातः केसरिणि श्रियेत्य विधिवद्या सज्जयंती स्तुतौ
रुक्माभा वरिवस्यतीशजननीं तां कीर्तिमर्चाम्यहम् ॥ २३४ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते कीर्तिदेवि इदं.................... ।

भास्वद्भक्तिविचित्रितोभयवपुर्भोगेंद्रनागप्रती—
क्षिष्णो रुक्मिगिरेर्महांतमुपरित्यं पुंडरीकं श्रितात् ।

स्व" इत्यादि बोलकर धृति देवीको जलादि चढावे ॥ २३३ ॥ "पार्श्वो" इत्यादि तथा "ओं स्व" इत्यादि बोलकर कीर्ति देवीको अर्घ चढावे ॥ २३४ ॥ "भास्वद्भ" इत्यादि तथा "ओं स्व" इत्यादि बोलकर बुद्धिदेवीको जलादि चढावे ॥ २३५ ॥ "रत्नाढ्य" इत्यादि तथा "ओं

याज्जादेत्य हिरण्यरुक्परिचरत्यर्हत्सवित्रीं जग—
द्योघं कंदलयंत्यलं बलिमहं तस्यै ददे शुद्धये ॥ २३५ ॥
ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते शुद्धिदेवि इदं.................... ।

रत्नांशुच्छुरितोभयांतकनकश्रोणींध्रशृंगास्निहः
रकुर्वाणमधित्यकां शिखरिणो यत्पुंडरीकं श्रिया ।
आवभाति ततोंबुजादुपरतावायै भवोद्भासिनी
भर्माभा जुपतेंविका जिनपतेर्लक्ष्मीं यजे तामहम् ॥ २३६ ॥
ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते लक्ष्मी देवि इदं............ ।

दृश्यादृश्यवपुर्भिरस्फुटशची साक्षात्सुखं श्यादिभि—
स्तत्तन्मंगलधारणादिविधाभिर्देव्या यदुद्भाव्यते
तत्मत्यूहवाहिष्कृतं विदधती तस्या मनोनिर्वृतिं
कांचित्कांचनकांतिरुत्किराति या शांतिर्मया सार्च्यते ॥ २३७ ॥
ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते शांति देवि इदं........... ।

सु" इत्यादि बोलकर लक्ष्मीदेवीको अर्घ चढावे ॥ २३६ ॥ "दृश्यादृश्य" इत्यादि तथा "ओं
सु" इत्यादि बोलकर शांतिदेवीको जलादि चढावे ॥ २३७ ॥ "संक्रांते" इत्यादि तथा "ओं

संक्रांतेंदु यथामुखीनवलवक्षार्क्षि जिनाध्यासितं
विभ्रत्यावपुषीश्वरे गुणगणे भोगेषु भक्तेषु च ।
देव्याः पुष्टिमनुक्षणं प्रगुणयंत्यन्यासु या स्तभ्यते
गांगेयांगरुगर्हतोर्हति महे सा पुष्टिरिष्टिं न काम् ॥ २३८ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते पुष्टिदेवि इदं.................. ।

इत्यष्टौता दिक्कुमारीर्जिनांवापरिचारिकाः। प्रसाद्य हविषां पूर्णाः पूर्णाहुत्यो विदध्महे ॥२३९॥

पूर्णाहुतिः ।

एवं संभाविताः कर्तुर्जिनजन्ममहोत्सवम् । श्रीमुख्यदेवतास्त्वष्टास्तुष्टये संतु यज्वनाम् ॥२४०॥

इष्टप्रार्थनाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् । एवं श्र्यादिदेवीरभ्यर्च्य दिक्पालादीन् पूर्ववत्क्रमेण पूजयेत् । इत्युत्तरवेदिकार्चनविधानम् ।

ऐतिह्यादिति यागमंडलमहं निर्वर्त्य वेदीविधिं
चिकृत्यं शुभभावसंपतिपरां निर्माप्य भव्यात्मनाम् ।

सु" इत्यादि बोलकर पुष्टि देविको जलादि चढावे ॥ २३८ ॥ "इत्यष्टे" इत्यादि श्लोक बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ २३९ ॥ "एवं" इत्यादि श्लोक बोलकर इष्ट वस्तुकी प्रार्थनाकेलिये

दृष्ट्वामृश्य च सर्वशः प्रतिकृतीराशाधरोंतश्चरन्–
कीर्तिः सोत्तरसाधकोनुरहसं गच्छेत्पुरा कर्मणे ॥ २४१ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि यागमंडलपूजाविधानीयो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

हे हुए क्रमसे पूजे । इस तरह उत्तर वेदीकी पूजा विधि हुई । मैंने (आशाधरने) यह वेदीका विधान शास्त्रके अनुसार कहा है । जो कोई इस विधीको जानकर और विचार कर करेगा वह मुमुक्षु भव्यजीव उत्तम सुखको अवश्य प्राप्त होगा ॥ २४१ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें यागमंडलकी पूजाविधी कहनेवाला तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥



अथो विविक्तदेशस्थः प्रतिष्ठाचार्यकुंजरः । प्रतिष्ठाविधये कुर्यात् परिकर्मेदमादृतः ॥ १ ॥

प्रागेकां सुखसंचार्यां प्रातिहार्यादिशालिनीम् । पुरोधाय सुरम्यार्च्यां प्रतिष्ठेयं निरूपयेत्॥२॥

शस्ताशस्तात्मभावार्जितवृषवृजिनच्छेददृप्यत्परा यः
स्वर्गाच्छ्वभ्रादथैत्य त्रिजगदुपकृतिव्यक्तिमाहात्म्यसंपत् ।
शक्राद्यैर्योऽतिरागादहमहमिकया सेव्यते सिद्ध्यधीशः
पश्यंत्यज्ञास्तदर्चां स्वचितामिह नये स्थाप्यतेऽर्हत्स तेभ्यः ॥ ३ ॥

अब चौथा अध्याय कहते हैं । याग मंडलकी पूजाके बाद उत्तम प्रतिष्ठाचार्य एकांतस्थानमें प्रतिष्ठा विधिके लिये इस आगे कहेजानेवाली क्रियाको करे ॥ १ ॥ सबसे पहले एक प्रतिमाको लावे । जोकि अच्छीतरह अपनेपर चल सके, प्रातिहार्य आदि सहित हो और देखनेमें बहुत अच्छी हो ॥ २ ॥ " शस्तां " आदि श्लोकोंमें जैसा प्रतिमाका वर्णन कि-

कल्याणैः श्रितभूतभाविसुनयत्रित्वैभयेः पंचाभि-
श्चित्तं वित्तमशेषमोहमथनाद्धासत्यविद्याभिदि ।
मत्यग्ज्योतिषि तीर्थकृत्वनियतं निर्वीजयोगे स्फुरद्
ध्यात्वार्चां स्थिरचित्क्षणाष्टकपदे यो क्षेत्रवीजाक्षरम् ॥ ४ ॥
द्रव्यैः स्वैः सुनयार्जितैर्जिनपतेर्विम्बं स्थिरं वा चलं
ये निर्माप्य यथागमं सुदृपदाद्यात्मात्मनान्येन वा ।
लग्ने वाल्गुनि लंभयंति तिलकं पश्यंति भक्त्या च ये
ते सर्वेपि महोदयांतमुदयभव्यां लभंतेऽद्भुतम् ॥ ५ ॥

प्रतिष्ठेयनिरूपणा । अथ सकलीकरणम् । अत्रादावनेन मंत्रेण स्वहस्तौ पवित्रयेत् । ओं णमो अरहंताणं णमो केवलिणे सुअंगदेवि पसत्थ हत्थेहिं हुं फट् स्वाहा । हस्तद्वयपवित्रकरणमंत्रः । ततः

भव्यजीव उत्तमपदको पाते हैं ॥ ३ । ४ । ५ । यह प्रतिमाका वर्णन हुआ । अव सकली-करण क्रिया कहते हैं । उसमें पहले "ओं णमो" इत्यादि मंत्रसे अपने हाथ पवित्र करे । उसके वाद सुरभिमुद्रा धारण करके इस आगेकी पवित्र विद्याको सात वार चिंतवन करे । वह विद्या "ओं णमो" से लेकर स्वाहा तक कही है। उसके वाद अंगन्यास करे वह [illegible]

सुरभिमुद्रां धृत्वा इमां शुचिविद्यां सप्तवारान् न्यसेत्। ओं णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आगासगामीणं णमो विज्झायाणं णमो सव्वोसाहिपत्ताणं णमो सयं बुद्धाणं णमो केवलिणे स्वाहा । इमा च। ओं अर्हन्मुखकमलवासिनि पापात्मक्षयंकरि श्रुतज्वालासहस्रप्रज्वलिते सरस्वति मम पापं हन हन क्षां क्षीं क्षु क्षौं क्षः क्षीरधवले अमृतसंभवे वं वं हूं स्वाहा । शुचीकरणमंत्रौ । ततः सकलीकुर्यात् । ओं अं नमः सुहृदये, ओं सिं स्वाहा शिरसि, ओं आं वषट् शिखायां, ओं ओं घे घे कवचं, ओं सां हूं फट् स्वाहा अस्त्रं, ओ हौं वषट् नयनयोः । पुनः ओं ह्रां णमो अरहंताणं स्वाहा हृदये, ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं स्वाहा ललाटे, ओं ह्रूं णमो आइरियाणं स्वाहा शिरोदक्षिणे, ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं स्वाहा पश्चिमे, ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं स्वाहा वामे । पुनस्तान्येव पदानि ललाटे मूर्ध्नि दक्षिणे पश्चिमे वामे चेति न्यसेत् । सकलीकरणमंत्रः । ततः ।

ओं " उसहाइजिणं पणमामि सया अमलो विरजो वरकप्पतरु ।
सवकामदुहा मम रक्ख सदा पुरु विज्जणही पुरु विज्जणिही ॥ ६ ॥

"ओं" इत्यादि पहला मंत्र बोलकर हृदय स्थानको स्पर्श करे । दूसरेसे मस्तकको, तीसरेसे चोटीको चौथेसे कवचको पांचवेंसे अस्त्रको. और छठेमंत्रसे नेत्रोंको छुए। अथवा "ओं ह्रीं" इत्यादि पहले मंत्रसे हृदयका स्पर्श करे, दूसरेसे मस्तकका, तीसरेसे शिरके दाहिनी तरफका, चौथेसे पश्चिमकी तरफका, पांचवेसे बांई तरफका स्पर्श करे। इन्हीं पदोंको बोलकर मस्त-

ओं " अट्ठेव य अट्ठसया अट्ठसहस्सा य अट्ठकोडीओ ।
रक्खंतु ते सरीरं देवासुरपणमिया सिद्धा ॥ ७ ॥ स्वाहा ।

अनेन स्वस्यांगप्रत्यंगपरामर्शः कार्यः । ततः ओं धनु धनु महाधनु । स्वाहा । इमां धनुर्विद्यां वामकरांगुलिपर्वसु विन्यस्य प्रतिमाग्रे वामपादांगुष्ठेन सरेफाग्रपुरस्सरं धनुरालिख्य वामपादेनाक्रम्य कायोत्सर्गेण स्थितः सन् ओं णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं थंभेइ जल जलण चिंतियमित्तेण पंचणमोकारो अरि मारि चोर राउल घोरुवसग्गं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः विणासेइ स्वाहा । इदं सप्तवारान् ह्युच्चार्य अष्टोत्तरशतं धनुर्विद्यामावर्तयेत् । इति सकलीकरण विधानं । अथ प्रतिष्ठा ।

करके दक्षिण पश्चिम और वांयें भागमें स्थापन करे ॥ यह सकलीकरण मंत्रकी क्रिया हुई । उसके बाद छठे सातवें दो श्लोकमंत्र पढकर अपने अंग उपांगोंको छुए ॥ ६ ॥ ७ ॥ उसके पीछे "ओंधनु" इत्यादि धनुषविद्याको वांयें हाथकी उंगलियोंके पोरुओंमें स्थापनकर प्रतिमाके आगे वांयें पैरके अंगूठेसे रेफ सहित बाणयुक्त धनुषको लिखकर बांये पैरसे आच्छादितकर खड्गासनसे "ओं णमो" इत्यादि स्वाहा पर्यंत मंत्रको सातवार मनमें बोलकर एकसौ आठवार धनुषमंत्रको जपै । इसतरह सकलीकरण क्रियाका कथन किया । अब प्रतिष्ठा करनेकी विधि कहते हैं;—सकलीकरणादि कर्म करनेके बाद प्रतिष्ठाचार्य वेदीके पूर्वसिंहासनके

कृतकर्माधुनावेदीं प्राच्यपीठाग्रभूतले । इह गंधांबुसंसेकसत्पुष्पप्रकारांचिते ॥ ८ ॥
भद्रासनं निवेश्यात्र विश्वकर्मसमक्षतः । गर्भावतारकल्याणं स्थापयापीदमर्हताम् ॥ ९ ॥

ओं मूलवेद्याः पूर्वस्यां दिशि जयादिपीठस्य पुरस्ताद्भद्रासनं निवेशयामीति स्वाहा । भद्रासननिवेशनम् ।

वंशक्षायिकदृक्सामिद्धसुधियां योस्मिन्मनूनामभू-
द्ये चेक्ष्वाकुकुरूग्रनाथहरियुग्वंशाः पुरोवेधसा ।
आधानादिविधिप्रबंधमहिताः सृष्टास्तदुत्थार्यभू-
भर्तृस्वामिकजीविता सुकुलजा जैन्यो जयंत्यंबिकाः ॥ १० ॥

भूत्यादित्रयदृग्विशुद्ध्यनुगचित्सत्कर्मणोआगम-
द्रव्यो गोतमगोत्रभागभिजनो नेमिस्तथा सुव्रतः ।
तद्वत्काश्यपगोत्रिणस्तदितरे णोकर्मनोआगम-
द्रव्योत्रेष्वभवन् स्वयं यदुदरेष्वंबाः प्रसीदंतु ताः ॥ ११ ॥

आगेकी जगहको गंधोदकसे छिडककर पुष्पोंको क्षेपण कर उस जगह पर कारीगरके सामने उत्तम सिंहासन रखे और "मैं अर्हत्प्रभुका गर्भकल्याणक स्थापन करता हूं" ऐसा कहे। उस समय "ओं मूल" इत्यादि मंत्र बोलना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ "वंश" इत्यादि दो श्लोक बोलकर जिनमाताओंकी स्तुती करे ॥ १० ॥ ११ ॥ अब जिनमाताओंके नाम कहते है ;—

मरुदेवीं वृषस्यांबा विजयामजितस्य च । सुषेणां संभवेशस्य सिद्धार्थां नंदनप्रभोः ॥१२॥
सुमंगलाह्वां सुमतेः सुसीमां पद्मरोचिषः । वसुंधरां सुपार्श्वस्य लक्ष्मणां चंद्रलक्ष्मणः॥१३॥
रामां श्रीपुष्पदंतस्य सुनंदां शीतलार्हतः । विष्णुश्रियं श्रेयसश्च वासुपूज्यप्रभोर्जयाम् ॥१४॥
सुशर्मलक्ष्मीं विमलार्हतोऽनंतस्य सुव्रताम् । ऐरिणीं धर्मनाथस्य कमलां शांत्यधीशिनः १५
सुमित्रां कुंथुनाथस्य अरभर्तुः प्रभावतीम् । मल्लेः पद्मावतीं वप्रां सुव्रतस्य मुनीशिनः॥१६॥
विनतां नमिनाथस्य शिवां नेमिजिनेशिनः। देवदत्तां च पार्श्वस्य वीरस्य प्रियकारिणीम्॥१७॥
चतुर्विंशतिमप्येताः सवित्रीस्तीर्थकारिणाम् । स्थापयामीह तद्गर्भपवित्रितजगत्त्रयाः॥ १८ ॥

ऋषभनाथकी मरुदेवी अजितकी विजया, संभव नाथकी सुषेणा, अभिनंदनकी सिद्धार्था, सुमतिजिनकी सुमंगला, पद्मप्रभकी सुसीमा, सुपार्श्वकी वसुंधरा, चंद्रप्रभकी लक्ष्मणा, पुष्पदंतकी रामा, शीतलनाथकी सुनंदा, श्रेयांसनाथकी विष्णुश्री और वासुपूज्य प्रभुकी जया है ॥ १२ ॥ ॥१३॥१४॥ विमलनाथकी सुशर्मलक्ष्मी, अनंतनाथकी सुव्रता, धर्मनाथकी ऐरिणी, शांतिनाथकी कमला, कुंथुनाथकी सुमित्रा, अरनाथकी प्रभावती, मल्लिनाथकी पद्मावती, सुव्रतप्रभुकी देवदत्ता और महावीरप्रभुकी प्रियकारिणी—इन चौवीस जिनमाताओंकी स्थापना इस जगह करता हूं । इन्हींके गर्भसे तीन जगत पवित्र होता है । १५।१६।१७।१८ ॥ "ओं"

ओं मरुदेव्यादिजिनेंद्रमातरोत्र सुप्रतिष्ठिता भवंत्विति स्वाहा । जिनमातृस्थापनार्थं भद्रपीठस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

षण्मासान् भुवमेष्यतां नवदिवश्चाजग्मुपामर्हतां
पित्रोः सौधमपीद्धमुत्सृजाति या रैदो महेंद्राज्ञया ।
स्वर्णा गावधुतामरद्रुमफलासारभ्रमं कुर्वतीं
व्यक्तुं तामिह रत्नवृष्टिमुचितं मुंचामि पुष्पोच्चयम् ॥ १९ ॥

ओं धनाधिपते अर्हत्पितासौधे रत्नवृष्टिं मुंच मुंचेति स्वाहा । कनकशलाका रत्नपंचकविमिश्रचित्रकुसुमांजलिं भद्रपीठस्याग्रतः प्रकिरेत् । रत्नवृष्टिस्थापनं ।

सर्वर्तुकामिवरवस्त्रफलप्रसूनशय्यासनाशनाविलेपनमंडनानि ।
तत्तत्क्रियोपकरणानि तथेप्सितानि तीर्थेभशातुरुपदीकुरुतां धनेशः ॥ २० ॥

इत्यादि बोलकर जिनमाताओंकी स्थापनाके लिये सिंहासनके ऊपर पुष्पोंको क्षेपण करे । "षण्मासान्" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर सोनेकी सलाई पांच तरहके रत्न—इनसे मिले हुए पुष्पोंको सिंहासनके आगे वखेरे । इस तरह रत्नवर्षाका स्थापन हुआ॥१९॥ "सर्वर्तु" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर उत्तम कपड़े अंगूठी हार फल पत्र पुष्प आदिको सिंहासनके आगे रखे । इन सब वस्तुओंको शिल्पी ग्रहणकरे ॥ २० ॥ उसके बाद

ओं निधीश्वर जिनेश्वरमात्रे भोगोपभोगांगान्युपनयोपनयेति स्वाहा । चारुवस्त्रमुद्रिकाहारफलपत्रपुष्पादिकं पीठाग्रे प्रतिष्ठयेत् । तच्च सर्वं विश्वकर्मा गृह्णीयात् ।

माताको सोलह स्वप्नोंका देखना। गर्जताहुआ सफेद ऐरावत हाथी १ बैल २ सिंह ३ देव हस्तियोंसे स्नान कराई गई लक्ष्मी ४ लटकतीं दो फूलोंकी मालायें ५ चांदनीयुक्त पूर्णचंद्रमा ६ ऊगता हुआ सूर्य ७ कमलोंसे ढके हुए सुवर्णमई कलशे ८ सरोवरमें क्रीडा करता मछलियोंका जोड़ा ९ दिव्य सरोवर १० चंचल लहरोंवाला समुद्र ११ रत्नजड़ा सिंहासन १२ मणियोंसे जटित विमान १३ नागेंद्रका भवन १४ प्रकाशमानरत्नोंकी राशि १५ धूमरहित जलती हुए अग्नि १६—ये सोलह स्वप्न हैं इनको देखकर माताको जगना । उसके बाद अपने पतिसें स्वप्नोंका फल सुनना । वह इस तरह है—पहले स्वप्नमें सफेद ऐरावत हाथी देखनेसे उत्तम पुत्रका होना, बैलके देखनेसे तीन लोकका गुरु होना, सिंह देखनेसे अनंत बलसहित होना, स्नान कराई गई लक्ष्मीके देखनेसे इंद्रोंकर सुमेरु पर्वतपर अभिषेक होना, पुष्पमाला देखनेसे धर्मतीर्थका प्रवर्तक होना, पूर्णचंद्रमा देखनेसे संसारको आनंदित करना, सूर्यके देखनेसे तेजस्वी होना, दो सुवर्णके घड़े देखनेसे रत्नादिकी खानिका स्वामी होना, मछलियोंका जोड़ा देखनेसे बहुत सुखी होना, सरोवर (तालाव) देखनेसे शुभलक्षणों सहित होना, समुद्रके देखनेसे केवलज्ञानी होना, सिंहासनके देखनेसे बड़े भारी राज्यका अधिकारी होना, विमान देखनेसे स्वर्गसे आकर जन्म होना, नागेंद्रका भवन देखनेसे अवधिज्ञानी

मंद्रं गर्जतमैन्द्रं द्विपमुडुपशयं तत्सगंधं गवेंद्रं
सिंहं शैलेन दंतं जलरुहि कमलां स्नाप्यमानां सुरेभैः ।
दाम्नी खे लंबमाने भ्रमदलिपटले चंद्रिकाकीर्णदिक्कं
चंद्रं प्रद्योतमर्कं सरसि झषयुगं क्रीडदन्योन्यरक्तम् ॥ २१ ॥
कुंभौ हेमौ सुधाढ्यौ स्फुटकमलमुखौ छन्नमच्छाप्सरोब्जै-
श्चंचद्रत्नोर्मिमब्धिं तडिदुचितमरुच्चापजित्सिंहपीठम् ।
कांत्यान्योन्यं हसंत्या सुरफणिसदने द्यां करैः रंजयंतं
रत्नौघं प्रज्वलंतं ज्वलनमपि निशातुर्ययामे द्विरष्टौ ॥ २२ ॥
स्वप्नान् दृष्ट्वा प्रबुद्धा झटिति घटितमुच्छ्रृण्वती तूर्यनादान्
पत्युः प्रीतात्तदुक्त्या सुतनु सुतमिभस्ते स तादृग्महांतम् ।
सूते विश्वाग्रिमं गौः करिकुलकपितानंतवीर्यं रमेंद्रै-
र्मेरौ स्नाप्य द्विमालं वृषसमयकरग्लौः प्रजाह्लादहेतुम् ॥ २३ ॥
भास्वान् दीप्रं विशारिद्वयमतिसुखिनं कुंभयुग्मं निधीशं
कासारो लक्ष्मसारं परविदमुदधिर्विष्टरं प्राज्यराज्यम् ।

होना, रत्नराशिके देखनेसे अनेक गुणोंका खजाना होना, निर्धूम अग्निके देखनेसे कर्मरूपी ईंधनका जलाना—ये स्वप्नोंको फल है ॥ २१ । २२ । २३ । २४ ॥ स्वप्नोंको देखना स्थापन

घरेतारं सुरौकः फणिगृहमवधिज्ञानिनं सद्गुणाब्धि
रत्नौघोद्दीप्तमग्निः स्तमितिविदितसतत्फलैषार्हदंबा ॥ २४ ॥

षोडश सत्पुष्पाणि तावंत्येव च सत्फलानि परिवर्त्य पीठाग्रतः स्थापयेत् । स्वप्नावलोकनस्थापनम् ।

श्री ह्री धृते कीर्तिमती च लक्ष्मि शांते च पुष्टे च सहेत्य जिष्णोः ।
आज्ञानियोगेन तथा स्वभक्त्या पित्रे निवेद्यात्ततदभ्यनुज्ञाः ॥ २५ ॥
विशोध्य गर्भं सुपवित्रदिव्यद्रव्यैर्यथास्थाननियोगमेनाम् ।
सुभक्त्या गूढमुपास्यमानां शच्या भजध्वं पुरुदिक्कुमार्यः ॥ २६ ॥

ओं दिक्कुमार्यो जिनमातरमुपेत्य परिचरत परिचरतेति स्वाहा । सद्वस्त्रालंकारा अष्टौ वरकुमारीमंगलतांबूलहस्ताः संनिधाप्य पीठं परितः सकुंकुमरंजितपुष्पाक्षतं क्षिपेत् । गर्भशोधनपूर्ववद्दिक्कुमारीपरिचर्यास्थापनं ।

करनेकेलिये सोलह उत्तम पुष्पोंको तथा सोलह उत्तम फलोंको सिंहासनके आगे स्थापन करे । श्री ही धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी शांति पुष्टि—इन देवियोंकर गर्भ शोधन करना ॥ २५ । २६ ॥ आठ कुमारी कन्यायें स्वच्छ वस्त्र आभूषणोंको पहनके हाथमें फल आदि मंगलीक द्रव्य लेकर सिंहासनके पास आके केशर मिले हुए पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे । य-

सर्वौषधिचंदनपंचमृद्भिर्विलिप्य तीर्थोदकपंचकेन ।
विशोध्य पीठं जिनमब्जगर्भे गर्भोपमेस्मिन्नवतारयामि ॥ २७ ॥

तामेव रहसि पुरा निरूपितप्रतिष्ठेयामर्हत्प्रतिमां नूतनसितनासितसद्वस्त्रप्रच्छादितां पुरस्सरटंकिकाकरविश्वकर्मसौधर्मेन्द्रौ महोत्सवेनानीय सुविशुद्धभद्रासनगर्भपद्मे निवेशयेतां ।

यो गंगांबुसुरत्नपुष्पकृतभूपस्कारामिंद्रासन—
द्रकूपं प्रमदाकुलीकृतजगद्गर्भं प्रविश्योत्तमे ।
लग्ने त्वामतिरंजयन् रविरिह प्राची परानुग्रह-
ग्राहाद्यन्द्युतिवर्द्धतेस्म सुदृशां सोऽयं जिनस्तन्मुदे ॥ २८ ॥

ओं णमोर्हते केवलिने परमयोगिने शुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धकर्मेन्धनाय सौम्याय शांताय वरदाय

ह गर्भशोधन और दिकुमारियोंकी सेवाविधि स्थापन कीजाती है । सर्वौषधि चंदन आदिसे सिंहासनको पवित्र करके कारीगर और सौधर्मेंद्र दोनों उत्तम वस्त्रसे ढकी हुई प्रतिष्ठेय प्रतिमाको महान उच्छवके साथ लाकर शुद्ध सिंहासनके भीतर कमलपत्रमें स्थापित करें ॥ २७ ॥ उसके वाद " यो गंगां " इत्यादि तथा " ओंणमो " इत्यादि बोलकर कुंकुसे रंगे हुए चमेलीके पुष्प तथा अक्षतोंको मूलनायक और दूसरी प्रतिमाओंके ऊपर क्षेपण करें ॥ २८ ॥ गर्भावतार विधि कहते हैं । "दृक् " इत्यादि दो श्लोक बोलकर

अष्टादशदोषविवर्जिताय स्वाहा। जात्यकुंकुमपिंजरितजातिपुष्पाक्षतं तस्या अन्यासां च प्रतिष्ठेयमानानामुपरि क्षिपेत्। गर्भावतारणं।

दृक्शुद्ध्यादिविशेषवद्धसुकृतस्कंधप्रसर्गांगिक-
स्फूर्जच्छुष्मणि विश्वकर्माणि निजव्यापारयोग्यं वपुः।
सद्गुमस्तभरात्रिबोधरुचिभागास्येन योर्कान्दवद्
गर्भे मातुरिभाकृतिर्वसति वै सोत्रावतीर्णः प्रभुः॥ २९॥
इत्युक्त्वा प्रणतामहत्तरिकया निर्दिश्यमाना पृथक्
स्थानाख्यादिभिदा जिनेंद्रजननीमभ्यर्च्य नुत्वा स्फुटं।
नाथं पत्रमुदाभिनीय पितरं चापृच्छ्य जग्मुः पदं
स्वं शक्राः स जयत्ययं जिनपतेर्गर्भावतारोत्सवः॥ ३०॥

जिनमातृपूजनार्थं भद्रासनगर्भनिवेशितप्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

अथेंद्रैः सिद्धचारित्रशांतिभक्तिभिरादरात्। गर्भावतारकल्याणक्रिया तत्यास सूरिभिः॥३१॥

जिनमाताके पूजनके लिये सिंहासन (भद्रासन) में स्थापित प्रतिमाके आगे पुष्पांजलि क्षेपण करे॥ २९।३०॥ उसके बाद वे इंद्र सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति शांतिभक्ति—इन तीनोंको करके गर्भावतार कल्याणकी समाप्ति करें॥ ३१॥ इस तरह गर्भावतार कल्याणककी विधि

इति गर्भावतारकल्याणस्थापना । अथ जन्मकल्याणस्थापना ।

देवानां नमयन् शिरांसि समनांस्याकंपयन्नासना-
न्यभ्रं निर्मलयन् सदिक्सुमनसो देवद्रुमैर्वर्षयन् ।
जन्यन् शीतसुगंधिमंदमनिलं यः सिंधुमुद्वेल-
माधुन्वन् स धराधरां च निरगात् कुक्षेः शुभेक्षोपसः ॥ ३२ ॥

वस्त्रापनयनम् ।

किं तां सवित्रीमिह वर्णयामि किं चर्चये लग्नमथास्पदं तत् ।
यदेष देवो भुवनत्रयैकगुरुः स्वयं स्वमसवेधिचक्रे ॥ ३३ ॥
पुण्याहमद्याद्य मनोरथा नः पूर्णा जगंत्यद्य सनायकानि ।
प्रमोदते कोद्य न चेतनोस्मिन्नृजेपि जन्मालयमिदं प्रपन्ने ॥ ३४ ॥

जिनजन्मस्थापनाय तस्या अन्यासां च प्रतिष्ठेयप्रतिमानामुपरि पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

पूर्ण हुई । अब जन्मकल्याणककी स्थापना कहते हैं । “ देवानां ” इत्यादि श्लोक पढ़कर वस्त्रको अलग कर देना ॥ ३२ ॥ “ किं तां ” इत्यादि दो श्लोक बोलकर जिन भगवानके जन्मकी स्थापना करनेके लिये मूलप्रतिमा तथा अन्य प्रतिष्ठेय प्रतिमाओंके ऊपर पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ३३।३४ ॥ पसेवरहित शरीर १ मलरहित शरीर २ सम चतुरस्र

निःस्वेदत्वमनारतं विमलता संस्थानमाद्यं शुभं
तद्वत्संहननं भृशं सुरभिता सौरूप्यमुच्चैः परम् ।
सौलक्षण्यमनंतवीर्यमुदितिः पथ्याप्रियासृक्च यः
शुभ्रं चातिशया दशेह सहजाः संत्वर्हदंगानुगाः ॥ ३५ ॥

सनवव्यंजनशतैरष्टाग्रशतलक्षणैः । विचित्रं जगदानंदि याज्जिनांगं तदस्त्विदं ॥ ३६ ॥

सहजदशातिशयस्थापनार्थं प्रतिमोपरि दशपुष्पीमावपेत ।

भृंगाराब्दातपत्रोज्ज्वलचमररुहाण्युद्वहंत्योष्टशो या
द्वात्रिंशद्दिक्कुमार्यो जिनजनुषि भजंत्यंविकायाश्चतस्रः ।

संस्थान ३ वज्रवृषभनाराच संहनन ४ सुगंधमय शरीर ५ अत्यंत सुंदर शरीर ६ शुभ एक हजार आठ लक्षणवाला शरीर ७ अतुल बल ८ हितमित वचन ९ दूधके समान सफेद लोहू १० ये दश अतिशय जन्मके साथ स्वभावसे ही उत्पन्न होते हैं ॥ ३५ ॥ जिनेंद्रका शरीर नौसौ व्यंजन और एकसौ आठ लक्षण सहित होता है वह यही है ॥ ३६ ॥ ऐसा कहकर स्वभावसे उत्पन्न दश अतिशयोंकी स्थापनाकेलिये प्रतिमाके ऊपर दस पुष्प रखे । "भृंगारा" इत्यादि तथा " ओं रुचक " इत्यादि कहकर भद्रासनपर विराजमान प्रतिमाके चारों तरफ कुंकुसे रंगे हुए पुष्प अक्षतोंको बखेरै ॥३७॥ यह विजयादि देवताओंका सत्कार स्थापन

गेहं विद्युत्कुमार्यो रुचकवरनगाग्रास्पदा द्योतयंते
या चाष्टौ जातकर्मा दधाति तदनुगास्ताः स्फुरंत्वत्र धरन्याः ॥ ३७ ॥

ओं रुचकवरगिरींद्रशिखरनिवासिन्यो विजयादिदेव्यो यथास्वमर्हत्प्रभुमिहेदानीं परिचरंत्विति स्वाहा । पीठस्थप्रतिमां सर्वतः कुंकुमरंजितपुष्पाक्षतं विकिरेत् । विजयादिदैवतोपास्तिस्थापनं ।

दिव्यद्रव्यविशुद्ध एव जवरे यो रत्नवृष्टिं क्षण—
प्रीतायाः पयसीव पद्मभवसन्मातुः स्वयं शुद्धिमान् ।
यन्नामापि विशुद्धयेस्ति जगतो ध्यायंति यं योगिन—
स्तस्याप्याकरशुद्धिमेष विधिरित्यातन्वतां देवताः ॥ ३८ ॥

आकरशुद्धिविधानख्यापनार्थं तीर्थोदकाप्लुतपुष्पाणि प्रतिमोपरि निदध्यात् ।

घंटासिंहासनकजलरुहां निःस्वनैरदेयोस्त्रै—
ज्ञात्वातुल्यजिनजनिमुपेत्योच्चकैः स्वस्वभूत्या ।

किया । " दिव्य " इत्यादि श्लोक पढकर आकरशुद्धिकी विधि दिखलनेकेलिए तीर्थ जलसे धोयें हुए पुष्पोंको प्रतिमाके ऊपर क्षेपण करे ॥ ३८ ॥ " घंटा " इत्यादि श्लोक बोलकर इंद्र और यजमान आदिकोंके ऊपर उन अमुक नामवाले इंद्रादि भावोंको स्थापनकेलिए सौधर्म प्रतिष्ठाचार्य पुष्प और अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ३९ ॥ उसके वाद " अयं "

कल्पज्योतिर्वनभवनगीर्वाणनाथाः स्वयं यत्
तत्कल्याणं यधुराभिनयत्यत्रतं नाम तेमी ॥ ३९ ॥

इंद्रयजमानादिषु तत्तदिंद्रादिभावस्थापनाय सौधर्मः पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

अयं शच्या गुप्तं कृतवति नुतिं छद्मशयना—
न्निमील्यांबा मायातनयमुपहृत्यार्हति ते ।
समागत्यश्र्यादित्रजमनुव्रजंत्याक्षिकरणीः
शिरो निधानाद्यैः सफलयति सेंद्रोभ्रगगजः ॥ ४० ॥

इंद्राण्या भद्रासनादुद्धृत्य समर्थमाणां प्रतिमां जय जयेति वदन् प्रणतिशिराः करकमलाभ्यां गृहीत्वा सर्वसंघसमन्वित इमानि वृत्तानि पठन्नुत्तरवेदीं नीत्वा जन्माभिषेकोत्सवाय स्नपनपीठे निवेशयेत् ।

यः श्रीमदैरावणवाहनेन निवेशितोंके विधृतातपत्रः ।
ईशानशक्रेण सनत्कुमारमाहेंद्रसच्चामरवीज्यमानः ॥ ४१ ॥

इत्यादि श्लोक बोलकर इंद्राणी भद्रासनसे प्रतिमाको उठाकर जय जय शब्द करती हुई मस्तक नवाकर हस्तकमलोंपर रखती हुई सब जनसंघके साथ आगे कहे जानेवाले श्लोकोंको पढती हुई उत्तर वेदीपर ले जाकर जन्माभिषेक उत्सव करनेके लिए स्नान करनेके आसनपर रखे ॥ ४० ॥ फिर “ यः श्री ” इत्यादि आठ श्लोकोंको तथा “ ओं ह्रीं ” इत्यादिको

शच्यादिभिः श्र्यादिभिरप्युदारं देवीभिरात्तोज्ज्वलमंगलाभिः ।
पुरस्सरंतीभिरिवाप्सरोभिरग्रे नटंतीभिरुपास्यमानः ॥ ४२ ॥
शेषैस्तु शक्रैर्जय जीव नंद प्रसीद श्वश्वत्प्रतप क्षिपारीन् ।
इत्यादि वागुल्वणितप्रमोदैर्मुहुः प्रसूनैरुपहार्यमाणः ॥ ४३ ॥
सुरैः स्फुटास्फोटितगीतनृत्यवादित्रहास्योल्लुतवालितानि ।
समंगलाशीर्धवलस्तुतीनि स्वैरं सृजद्भिः परिचार्यमाणा ॥ ४४ ॥
अहो प्रभावस्तपसां सुदूरमपि व्रजित्वा प्रतिमास्त्वपीक्ष्यः ।
यः सैष साक्षाद्ध्रुवमीक्षितोर्हन्नभेद्यनादिः स्वयमात्मबंधः ॥ ४५ ॥
सविस्मयानंदमिति ब्रुवाणैरालोक्यमानोभिमुखागतैः खे ।
देवार्पिभिः स्पर्धितदेवयुग्मं नभोगयुग्मैरपि सेव्यमानः ॥ ४६ ॥
प्रदक्षिणाध्वव्रजनेन नीत्वा पूर्वोत्तरस्यां दिशि मेरुशृंगम् ।
निवेश्य तत्रत्यशिलोग्रपीठे क्षीरोदनीरैः स्नापितः सुरेन्द्रैः ॥ ४७ ॥
तं देवदेवं जिनमद्य जातं शय्यास्थितं लोकपितामहत्वम् ।
इमं निवेश्योत्तरवेदिपीठे प्राग्वक्रमस्मिन् विधिनाभिषिंचे ॥ ४८ ॥

बोलकर पांडुकशिलाके ऊपर सिंहासनपर विराजमान करे ॥ ४१।४२।४३।४४।४५।४६।४७।४८ ॥ उसके वाद आकर शुद्धिके अभिषेक स्वरूप जन्मभिषेकको दिखलाते हैं । "रत्न"

ओं ह्रीं अर्हं श्रीधर्मतीर्थाधिनाथ भगवान्निह पांडुकाशिलापीठे तिष्ठ तिष्ठेति स्वाहा । उत्तरवेदिकास्नपनपीठे प्रतिमानिवेशनमंत्रः । अथातः आकरशुद्ध्यभिषेकरूपेण जन्माभिषेकमनुक्रमिष्यामः ।

रत्नस्वर्णमयोत्तरीयरसनासंव्यानमौलिप्रभै—
मेरुर्भाति वनैः सहस्ररहितं यो योजनान्युच्छ्रितः ।
लक्षं सोयमियं च पांडुकशिला दीर्घा शतं स्फाटिकी
साष्टौ चार्धशतं तात्र सुरभिः श्रेष्टार्द्धचंद्राकृतिः ॥ ४९ ॥
सोत्रायं पृथुमंडपोत्युपकृतो देव्योर्घहस्ता इमा—
स्तास्तान्याप्सरसाममूनि नटितान्यास्येतता योजनम् ।
निम्नाश्चाष्ट सुरैः पयोर्णवजलैर्भृत्वार्णमाणा इमे
ते कुंभाः स जिनोऽयमस्मि स हरिस्तत्काप्यहो संभृतिः ॥ ५० ॥

अभिषेकप्रकरणसज्जीकरणाय समंतात्पुष्पाक्षतं विकिरेत् । प्रस्तावना । ओं ऋषभादिदिव्यदेहाय सद्योजाताय महाप्रज्ञाय अनंतचतुष्टयाय परमसुखप्रतिष्ठिताय निर्मलाय स्वयंभुवे अजरामरपदप्राप्ताय चतुर्मुखपरमेष्टिने अर्हते त्रैलोक्यनाथाय त्रैलोक्यपूज्याय अष्टदिव्यनागप्रपूजिताय देवाधिदे-

---

इत्यादि दो श्लोक कहकर अभिषेक आरंभकी तयारी करनेके लिये चारों तरफ पुष्प अक्षत बखेरे ॥ ४९।५० ॥ " ओं ऋषभा " इत्यादि " स्वाहा " तक मंत्र बोलकर प्रतिमाके अंग

वायै परमार्थसन्निहितोस्मि स्वाहा । अनेन प्रतिमाया अंगप्रत्यंगानि परमामृशन् सप्तवारानभिमंत्र्य सकलीं कुर्यात् । ततो दशापि लोकपालानावाहनादिविधिनोपचरेत् । तथाहि ।

इंद्रा मिथाद्धदेवा शरपतिवरुणाधाररै देशनाग्रे धिष्णोशा दिक्षु वेद्या ? ॥५१॥

इंद्रादिदिक्पालानामावाहनादिपुरस्सराध्येपणाय समस्तहव्यद्रव्यं जुहोमीति स्वाहा ।

अथ पृथगिष्टिः ।

दिगीशाः शब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैतान्वो यजे प्रत्येकमादरात्॥५२॥

दिक्षु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अत्र रूप्याद्रिस्पर्द्धीत्यादि वृत्ताष्टकं प्रागुक्तमेव वक्ष्यमाणमंत्रोपेतं प्रयुंजीत । तथाहि ।

उपांगोंको छूकर सातवार मंत्रितकर सकलीकरण क्रिया करे । उसके बाद दश लोकपालोंका आवाहन आदि विधिसे सत्कार करे । वह इस तरहसे है-" इंद्रा " इत्यादि तथा " इंद्रादि " बोलकर हवन करनेकी सामग्रीसे अवाहनादि पूर्वक इंद्रादिका सत्कार करे ॥ ५१ ॥ अब वेदीपूजा कहते हैं । " दिगीशा " इत्यादि श्लोक बोलकर दिशाओंमें पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ ५२ ॥ यहांपर " रूप्याद्रि " इत्यादि पहले कहे हुए आठ श्लोकोंका मंत्र पूर्वक प्रयोग करे । वह इस प्रकार है । " रूप्याद्रि " इत्यादि तथा " हे इंद्र " इत्यादि

रूप्यादि………………………………॥ ५३ ॥

हे इंद्र आगच्छागच्छ इंद्राय स्वाहा, इंद्रपरिजनाय स्वाहा, इंद्रानुचराय स्वाहा, अग्नये स्वाहा, अनिलाय स्वाहा, वरुणाय स्वाहा, सौमाय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा ओं स्वाहा भूः स्वाहा स्वः स्वाहा, ओं इंद्राय स्वगणपारिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं गंधं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा ।

रुक्मारु………………………………॥ ५४ ॥

हे अग्ने आगच्छगच्छ अग्नये स्वाहा…………… ।

कल्पांताः………………………………॥ ५५ ॥

हे यम आगच्छागच्छ यमाय स्वाहा…………… ।

आरूढं………………………………॥ ५६ ॥

हे नैऋत्य आगच्छागच्छ नैऋत्या स्वाहा………… ।

मंत्र बोलकर इंद्रको जल आदि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ५३ ॥ " रुक्मारु " इत्यादि तथा " हे अग्ने " इत्यादि बोलकर अग्निकुमारदेवोंको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ ५४ ॥ " कल्पांता " इत्यादि तथा " हे यम " इत्यादि बोलकर यमदेवको जल आदि चढावे ॥ ५५ ॥ " आरूढं " इत्यादि तथा " हे नैऋत्य " इत्यादि बोलकर नैऋत्य दिक्पालको अर्घ चढावे ॥ ५६ ॥

नित्यांभ .... ॥ ५७ ॥

हे वरुण आगच्छागच्छ वरुणाय स्वाहा.......................... ।

वलाच्छ.. ॥ ५८ ॥

हे पवन आगच्छागच्छा पवनाय स्वाहा.......................... ।

हंसौघे.. ॥ ५९ ॥

हे धनदागच्छागच्छ धनदाय स्वाहा.......................... ।

साज्ञावा.. ॥ ६० ॥

हे ईशान आगच्छागच्छ ईशानाय स्वाहा.......................... ।

वक्षौजस्तर्जिपृष्ठश्वसनसमतरः कूर्मराजाधिरूढं

क्षुद्रछीवेभकुंभाक्रमणचणसृणिस्फारणव्यग्रपाणिम् ।

“ नित्यांभ ” इत्यादि श्लोक तथा “ हे वरुण ” बोलकर वरुणको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ ५७ ॥ “ वलाच्छं ” इत्यादि तथा “ हे पवन ” इत्यादि बोलकर पवन कुमारको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ ५८ ॥ “ हंसौघे ” इत्यादि तथा “ हे धनद ” इत्यादि बोलकर कुवेरको अर्घ चढावे ॥ ५९ ॥ “ साज्ञावा ” इत्यादि तथा “ हे ईशान ” इत्यादि बोलकर ईशानको जलआदि आठ द्रव्य चढावे ॥ ६० ॥ “ वक्षौज ” इत्यादि तथा “ हे धरणेंद्र ”

सांश्लिष्टं दृक्सहस्राद्वितयघृणिफणारत्नरुक्तप्रवाल-
व्रश्मौघापीडमर्हच्छ्रितमहि यमधौचांमि पद्मासमेतम् ॥ ६१ ॥

हे धरणेंद्र आगच्छागच्छ धरणेंद्राय स्वाहा........................ ।

वैरिस्तंवेरमास्रोल्लसदरुणसटाटोपशुभ्रांगभीक्—
द्वालेंदुस्पार्द्धदंष्ट्रोत्क्रमखरनखरारक्तदृक् सिंहसंस्थम् ।
कुंतास्त्रं रोहिणीष्टं कुवलयसुमनः स्रक् श्रितां शंभयुक्तं
ज्योत्स्ना पीयूषवर्षं यज यजनपरं सोममर्घं महामि ॥ ६२ ॥

हे सोम आगच्छागच्छ सोमाय स्वाहा............................ ।

एवं सत्कृत्य दिक्पालानेभ्यो मंत्रैः पुनर्ददे । अप्कुंडे सप्तशः सप्तधान्यमुष्टिभिराहुतीः ॥६३॥

ओं आं क्रौं इंद्राय स्वाहा । अनेन जलपूर्णकुंडे सप्तमे सप्तधान्यमुष्टिभिरिंद्राहुतिं दद्यात् ।

इत्यादि बोलकर धरणेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ६१ ॥ " वैरिस्तं " इत्यादि तथा " हे सोम " इत्यादि बोलकर सोम दिक्पालको जलआदि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ६२ ॥ " एवं " इत्यादि तथा " ओं आं " इत्यादि बोलकर जलसे भरे हुए कुंडमें सातवार सात धान्योंकी मुठी भरकर आहुतियां दे ॥ ६३ ॥ इसीतरह अग्नि आदिके कुंडमेंभी जानना । उसके बाद फिर

एवमन्यादिभ्योपि । अथ पुनस्तामेव प्रतिमां जिनमंत्रेण सप्तवारानाभिमंत्र्याकरशुद्धिं विदध्यात् । जिनमंत्रो यथा । ओं अर्हद्भ्यो नमः, पादानुसारिभ्यो नमः, कोष्ठबुद्धिभ्यो नमः, बीजबुद्धिभ्यो नमः । सावधानिभ्यो नमः,परमावधिभ्यो नमः, ओं ह्रौं वल्गु २ निवल्गु २ महाश्रवण । ओं ऋषभादिवर्धमानेभ्यो वषट् वौषट् स्वाहा ॥ अथाभिषेकः ।

पूरं पूरमयस्तदावधिपयः सिंधोपसृत्यामरै—
र्हस्ताहस्तिकयार्पितैर्गलल्लुलन्मुक्ताफलस्रग्भरैः ।
श्रीखंडद्रवचर्चितैः परिदिनश्रीकर्मणा भर्मणात्
कृष्णैः साष्टसहस्रमानकलितैः कुंभैः सिताब्जाननैः ॥ ६४ ॥
आतोद्यध्वनिगीतमंगलरवैः सहर्षहर्षप्लुतां
देवानां नटदप्सरोगणवपुः श्रीभिश्च कीर्णांवरे ।
पार्श्वेन्द्रासनभासि पांडुकशिलासिंहासने प्राङ्मुखं
सौधर्मप्रमुखा निवेश्य जिनपं जन्मन्यसिंचत् किल ॥ ६५ ॥

उसी प्रतिमाको जिनमंत्रसे सातवार मंत्रित करके आकरशुद्धि करे । वह जिनमंत्र " ओं अर्हं " यहांसे लेकर " स्वाहा " तक है ॥ अब अभिषेक वर्णन करते हैं । " पूरं " इत्यादि तीन श्लोक पढकर कलशोंपर पुष्प अक्षत और जलको क्षेपण करे ॥६४।६५।६६॥ "गोवृश्रृं"

धूलीपल्लवमंगलौषधिफलत्वग्मूलसर्वौषधी
संपृक्ताखिलतीर्थवारिसुभृतैर्मंत्रातिपूतैः कुटैः ।
अष्टाभिः स्वपदे स्थितं स्थिर मुदा वेधांचलं चारु तद्
बिंबं चाकरशुद्धिसेचनमिदं तज्जातकर्मार्पये ॥ ६६ ॥
एतत्त्रयं पठित्वा कलशेषु पुष्पाक्षतोदकं क्षिपेत् ।
गोवृंदशृंगतो गजपतेर्दंतान्महातीर्थतः
शैलेंद्रा नृपतोरणादुरुसरित्तीराच्च पद्माकरात् ।
आनीताभिरुपस्कृतेन शुचिभिर्मृद्भिः सुतीर्थांभसा
पूर्णेन स्नपयामि हेमकलशेनार्च्यां जिनार्चां मुदा ॥ ६७ ॥
शिल्प्यादीन् संमान्य सूत्रधारेण धूलीकलशाभिषेकः । कुल्याभिषेकः ।
कुल्याभिः शुचिभिः सतोः स्वसुरपो पित्रोश्च पत्यात्मजैः
संयुक्ताभिरशलिपकाभिरानिशं सक्ताभिरर्हन्मते ।

इत्यादि बोलकर कारीगर आदिका सत्कार करके शुद्धवालु आदिसे अभिषेक करे ॥ ६७ ॥ " कुल्याभिः " इत्यादि बोलकर उत्तम कुलकी स्त्रियोंसे प्रोक्षण (जलसे अभिषेक) करावे ॥ ६८ ॥ इन्हीं स्त्रियोंसे प्रतिष्ठा योग्य उवटना करावे। वेल, ऊमर, चंपा, आम, वकुल,

सिद्धार्थाक्षतसत्फलोद्गमनिशादूर्वादिमैत्रीयुषा
कांडमुखोद्धृतेन जिनपं संप्रोक्षयामि श्रियै ॥ ६८ ॥

प्रोक्षणकप्रणयनम् । एताभिरेव च स्त्रीभिः प्रतिष्ठायोग्यमूलादिवर्तनं कारयेत् ।

बिल्वोदुंबरचंपकाम्रबकुलन्यग्रोधनीपार्जुन—
प्लक्षाशोकपलाशपिप्पलदलप्रच्छादितश्रीमुखैः ।
पुण्याशोष्यसरित्तडागसरसीपूर्वोक्ततीर्थाम्बुभिः
पूर्णैः पूर्णमनोरथैरिव कुटैः कुर्वे निषेकं विभोः ॥ ६९ ॥

ओं णमो अरहंताणं सव्वसरीरावच्छिदे महाभूप आय २ गिण्ह २ स्वाहा । एप मंत्र उत्तरत्रापि योज्यः । द्वादशपल्लवाभिषेकः ।

दूर्वापद्मकदनागुरुयवश्रीखंडवर्हिस्तिलै—
र्नंद्यावर्तकजातिकुंदकुसुमैः स्वर्णार्जुनव्रीहिभिः ।
भूम्यप्राप्तपवित्रगोमयनदीकूलोद्यमृद्रोचना—
सिद्धार्थैश्च समं भृतैः सुपयसा कुंभैः प्रभुं स्नापये ॥ ७० ॥

वड़, कदंब, अर्जुन, पाकर, अशोक, ढाक, पीपल इन बारह वृक्षोंके पत्तोंसे ढके हुए जलके कलशोंसे " ओं णमो " इत्यादि मंत्र बोलकर अभिषेक करे ॥ ६९ ॥ यह द्वादश पल्लवका

अष्टादशमंगलद्रव्याभिषेकः ।

श्यामाशमींदीवरभृंगविष्णुक्रांतागुडूची सह देविकाभिः ।
मिश्रैः पवित्रैः सलिलैः सुपूर्णैरोघैर्जिनार्चां स्नपयामि कुंभैः ॥ ७१ ॥

सप्तौषधस्नपनम् ।

लवंगभल्लातकबिल्वजातीफलाम्रकाम्रामलवारिपूर्णैः ।
शुभ्रैर्घटैरिष्टफलाप्तिहेतोः संस्नापये स्नातकनाथबिंबम् ॥ ७२ ॥

फलपंचकस्नपनम् ।

उदुम्बराश्वत्थशमीपलाशन्यग्रोधकल्कव्यातिकीर्णमर्णः ।
तैर्थं वहद्भिः कलशैर्विलक्षैर्भक्त्याभिषिंचामि जिनेंद्रमूर्तिम् ॥ ७३ ॥

अभिषेक हुआ। "दूर्वा" आदि बोलकर दूव आदि अठारह मंगलीक वस्तुओंसे मिले हुए जलके घड़ोंसे अभिषेक करे ॥ ७० ॥ यह मंगल द्रव्याभिषेक हुआ। "श्यामा" इत्यादि बोलकर उसमें कथित श्यामा आदि सात वनस्पतियोंसे मिले हुए जलपूर्णकलशोंसे अभिषेक करे ॥ ७१ ॥ "लवंग" इत्यादि बोलकर उसमें कहे हुए लवंग, भल्लातक, बेल, जायफल, आम-इन पांच उत्तम फलोंसे मिश्रित निर्मल जलसे भरे हुए घड़ोंसे प्रतिमाका अभिषेक करे ॥ ७२ ॥ यह फलपंचक स्नपन हुआ ॥ "उदुंबरा" इत्यादि बोलकर उसमें कथित

क्षीरिपंचकस्नपनम् ।

व्याघ्री गुडूची सहदेवि सिंही वरी कुमारी शतमूलिकानाम् ।
मूलैर्वलायाश्च युतेन सर्वैः कुंभांभसाहं स्नपये जिनार्चाम् ॥ ७४ ॥

दिव्यौषधिमूलाष्टकस्नपनम् ।

कक्कूलैला जातिपत्रलवंगश्रीखंडोग्रा कुष्ठसिद्धार्थमय्या ।
सर्वौषध्यावासितैस्तीर्थतोयैः कुंभोद्गीर्णैः स्नापयाम्यर्हदर्चाम् ॥ ७५ ॥

सर्वौषधिस्नपनम् । एवं जन्माभिषेकस्थानीयमाकरशुद्ध्यभिषेकं विधायानेन मंत्रेण जिनार्चामधिवासयेत् । ओं णमो भयवदो वड्ढमाणस्स रिसहस्स जस्स चक्कुजलंतं गच्छइ आयासं पायालं लोयाणं भूयाणं जूए वा विवादे वा रणांगणे वा गयंगणे वा थंभणे वा मोहणे वा सव्वजीवसत्ताणं अपराजिदो भवदु मे रक्ख रक्ख रक्ख स्वाहा । श्रीवर्धमानमंत्रः ।

ऊमर, पीपल, शमी, ढाक, वड़–इन पांचोंकी छालसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे स्नपन करे ॥ ७३ ॥ " व्याघ्री " इत्यादि बोलकर उसमें कथित व्याघ्री (एरंड) गिलोइ, आदि आठ उत्तम औषधियोंके मूलसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे अभिषेक करे ॥ ७४ ॥ " कक्कूलै " इत्यादि बोलकर उसमें कही गई औषधियोंसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे

यस्योन्मील्य निसर्गजे श्रवणयोर्वज्रेण रंध्रे हरिः
शच्यासेचनकं वपुस्त्रिजगतां भक्त्याभिसंस्कारयेत् ।
त्रैवर्ण्योज्ज्वलसूत्रदुग्धयवमात्सिद्धार्थरत्नाश्रिय—
श्चर्चा चारुभुजेस्य भूषणमयं बध्नंतु ताः कंकणम् ॥ ७६ ॥

इंद्रकरहारकक्तकर्णवेधादनंतरं प्रोक्षणकाधिकृतनारीभिर्जात्यकुंकुमश्रीखंडागरुकर्पूरचर्चनपूर्वकं दक्षिणभुजे षोडशाभरणात्मककंकणविधानम् ।

गृह्णंति यस्य समयामृतधौतचित्ता नामानि कोटिमृषयः कलुषक्षयाय ।
मेरौ महेंद्र इव संव्यवहारहेतोस्तं व्याहरेहमिह यष्टमतेन नाम्ना ॥ ७७ ॥

अभिषेक करे । यह सर्वौषधिस्नपन विधि हुई ॥ ७५ ॥ इसीप्रकार जन्माभिषेकके स्थानरूप आकार शुद्धिका भी अभिषेक करके आगे कहे जानेवाले मंत्रसे जिन प्रतिमाका संस्कार करे ॥ " ओं णमो " इत्यादि " स्वाहा " तक श्रीवर्धमानमंत्र है । " यस्यो " इत्यादि बोलकर कर्णवेध करके स्त्रियोंसे केशर चंदन अगुरु कपूरकर लेप किये गये सोलह आभूषणोंके साथ दाहिनी भुजाकी तरफ कंकण बांधे ॥ ७६ ॥ " गृह्णंति " इत्यादि बोलकर प्रभुका नाम रखनेके लिये कुंकुसे रंगे हुए पुष्प अक्षतोंको प्रतिमाके ऊपर क्षेपण करे ॥७७॥

नामकरणार्थं कुंकुमाक्तपुष्पाक्षतं प्रतिमोपरि क्षिपेत् । अथानंदस्तवः ।

जय देव प्रसिद्धेन स्वनाम्ना गां पुनीहि मे । जय शुद्ध नय स्वांतं स्वभक्त्या मेऽनुरंजय ७८
जय दिव्यांगगात्राणि स्वनत्या मे कृतार्थय । जय तेजोनिधे स्वामिन् नेत्राब्जे मे विनिद्रय ७९
यद्दर्शनविशुद्ध्यादिभावना दैवतं विभो । तपस्तप्त्वा जगज्ज्योतिस्तज्ज्योतिस्ते तानिष्यति ८०
यात्वयज्ञा हतैः पुण्यैस्तद्रागद्वारसंगतैः । त्वयि प्रयुज्यते कोपाल्लक्ष्मीस्तान्येव हंति सा॥८१॥
सा चेयं च विभूतिस्ते कापीश जगतां दृशः। लब्धा विशुद्धया तद्वृद्ध्या स्वस्याहान्त्रयशुद्धताम्॥
भुंजानोभ्युदयं चार्हन् जनैर्भोगीव लक्ष्यते । बुधैर्योगीव तत्त्वं तु जानाति त्वादृगेव ते॥८३॥
नमस्तेऽचिंत्यचरित नमस्ते त्रिजगद्गुरो । नमस्ते त्रिजगन्नाथ नमस्तेत्यंतानिस्पृह ॥ ८४ ॥
नमस्ते केवलज्ञान नमस्ते केवलेक्षण । नमस्ते परमानंद नमस्तेऽनंतविक्रम ॥ ८५ ॥
एवमानंदतः स्तुत्वा शक्रः पूर्ववदादरात् । जन्माभिषेककल्याणक्रियां कृत्वा स्फुटं नटेत् ॥८६॥

उसके बाद आनंदस्तुतिका पाठ "जय देव" इत्यादिसे लेकर पचासीवें श्लोकतक पढे ॥७८॥ ७९।८०।८१।८२।८३।८४।८५॥ इसप्रकार वह इंद्र आनंदसे भक्तिपूर्वक स्तुतिकरके और जन्माभिषेक कल्याणकी क्रिया करके अच्छीतरह तांडवनृत्य करे ॥ ८६ ॥ यह जन्माभिषेककी

इति जन्माभिषेकविधानम् ।

अथोद्धृत्य निजस्कंधे तामर्हत्प्रतिमां मुदा । आरोप्य व्यंजयन्निंद्रस्तमैंद्रं परमोत्सवम् ॥८७॥
संधेन महता युक्तः प्राप्य तां मूलवेदिकाम् । त्रिःपरीत्य पठन्मंत्रमिमं न्यस्येत्तदासने ॥८८॥

ओं " एतद्राजांगणं तत्सुरकृतसुपमं सिंहपीठं तदेतत्
देवोयं जातकर्मोद्यत इयममरीसेव्यमाना प्रबोध्य ।
देवी साचोपनीता प्रमदवरवशा सेवमानास्तथैते
देवाः सर्वेर्हतीमं परिकरमयमेवेत्यमुं स्थापयेऽस्मिन् ॥ ८९ ॥

ओं नमोर्हते केवलिने परमयोगिने अनंतविशुद्धपरिणामपरिस्फुरच्छुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धकर्मबीजाय प्राप्तानंतचतुष्टयाय सौम्याय शांताय मंगलाय वरदाय अष्टादशदोषरहिताय स्वाहा । मूलवेदीमध्यस्थापितभद्रासने प्रतिमानिवेशनमंत्रः । अथ जिनमातृस्नपनम् ।

विधि हुई । उसके बाद इंद्र उस अर्हत्प्रभुकी प्रतिमाको हर्षके साथ अपने कंधेपर रख परम उत्सवको दिखाता हुआ बहुत साधर्मियों सहित उस मूलवेदीमें लेजाकर तीन परिकमा देके इस आगे कहे जानेवाले मंत्रको पढता हुआ उस सिंहासन पर विराजमान करे ॥८७॥८८॥ वह मंत्र " ओं एतद्रा " इत्यादि श्लोकसे लेकर स्वाहा तक है । इससे मूलवेदीके भद्रासनपर

अंव प्रसीद दृशमेषु चतुर्निकायगीर्वाणभर्तृषु निधेहि सनम्रवत्सु ।
एतास्वपीद्रदयितासु ललाटघृष्टपादाग्रभूषु मुदमुल्वणयस्मितेन ॥ ९० ॥
नित्याश्रियेभ्युदयदुर्मदिनां त्वयीशे त्वज्ज्योतिरेतदपि नः परमक्तवत्याम् ।
कर्मस्विहाभ्युदयिकेषु मतेति कोत्र प्राच्याशयोस्तमयपाक्युदयार्कसूतेः ॥९१॥
मग्नाः निमज्जंति जगंत्यमूनि मंक्ष्यंति वा मोहार्णवे कः ।
इहोपगृह्णाति भवादृशीदृक् सर्वज्ञवीजं यदि न प्रसूते ॥ ९२ ॥
त्वं कल्याणी त्रिभुवनजनन्येकमूरस्यासि त्वं
कीर्तिर्ज्योत्स्ना किरयति सदा क्षालयंती जगत्ते ।
स्त्रीसर्गाग्रे गणयति शिवांगेष्वपि स्वं त्वमेव
त्वत्पूताः स्मो नियतमधुना विश्वमान्ये नमस्ते ॥ ९३ ॥
पीठिकायां कुंकुमाक्तकुसुमानि क्षिप्त्वा प्रणमेत् ।

जिनदेवीं जिनाभ्यर्णा स्तुत्वा दिव्यांवरादिभिः। प्रसाद्यानंदनाट्येन स्वयं चाराध्य तं पुनः ९४

प्रतिमाको रखा जाता है ॥ ८९ ॥ अब जिनमाताके अभिषेककी विधि कहते हैं- " अंव प्रसीद " इत्यादिसे लेकर तिरानवे तक श्लोक बोलकर वेदीमें कुंकुमसे मिले हुए फूलोंको डालकर प्रणाम करे ॥९०।९१।९२।९३॥ उसके वाद जिनदेवीको उत्तम वस्त्रादिसे पूज तथा

रक्षायां तस्य दिग्नाथान् देवताः परिकर्मणि । भोगसंपादने श्रीदं क्रीडने शक्रपुत्रकान् ९५
अंगुष्ठे चामृतं स्तन्यलौल्यच्छेदाय वासवः । यद्वदस्थापयत्तद्वदर्चायां स्थापयाम्यहम् ॥९६॥

दिव्यवस्त्रगंधभूषणस्वस्तिकशाल्यक्षीरान्नविचित्र-भक्ष्यपक्वान्नदुग्धदधिघृतशर्कराचारुपुष्पफलपत्र-दीपधूपादि भोज्यवस्तुजातं कांचनभाजने विरचय्य शिलायां निवेशयेत् ।

सिद्ध्युद्वाह महोत्सुकोपि तदलंकर्माणकालाप्तये
निर्ग्रंथं परपर्वनृत्यविधिना धर्मेण शासद्धराम् ।
यः सम्राडिति लक्ष्यते त्रिजगतीनाथोसतीवेश्वरं
यो भक्तेति कुमार एव च भजन् भोगान्यसाम्यत्र तम् ॥ ९७ ॥

स्तुतिकर प्रभुकी रक्षाके लिये दिक्पालोंको, देवताओंको सेवाके लिये, भोगादि सामग्रीके लिये कुवेरको, खेलनेकेलिये इंद्रपुत्रोंको, दूध पीनेकी लालसाको दूर करनेकेलिये अंगूठेमें अमृतको जैसे पहले इंद्रने प्रभुके पास रखा था उसी तरह मैं भी इस प्रभुकी प्रतिमाके सामने स्थापित करता हूं ॥ ९४।९५।९६ ॥ ऐसा कहकर उत्तम वस्त्र सुगंधित पदार्थ आभूषण (गहने) सातिया खीर अनेक पक्वान्न दूध दही घी मिश्री उत्तम फूल फल पत्ते दीप धूप आदि भोगोंकी सामग्री सोनेके पात्रमें रखकर शिलापर रखे । " सिद्ध्यु " इत्यादि बोलकर पुण्यके उदयसे प्राप्त राज्य संपदा आदि उपभोगोंकी स्थापना करनेके

पुण्यविपाकसंपादितसौराज्यसंपदुपभोगस्थापनाय कुंकुमारुणितपुष्पाणि प्रतिमोपरि विकिरेत् ।

एवं वैषयिकैः सुखैः सुरनराधीशामपि प्रार्थितैः
शश्वत्प्रीतमनाः सुराधिपनृपैः राज्ञार्थिभिः सेवितः ।
कालैकक्षपणीयमोहमहिमाव्याधूतिसंसूचक—
प्रेक्षातंकिततीर्थकृच्छिवरतोप्यास्ते द्वितीयाश्रमे ॥ ९८ ॥

देवोपनीतभोगोपभोगानुभवनाय प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । इति जन्मकल्याणस्थापना ॥ २ ॥ अथ निष्क्रमणकल्याणं ।

प्राप्ते सामज्वरवदणुता वृत्तमोहे विवेक—
ज्योतिष्युद्यत्यथ किमपि तत्कारणं वीक्ष्य मंक्षु ।
निर्विण्णोर्हत्समरससुधास्वादनोकः सहैत्य
प्रीत्यानत्य सततदुपथैनिभ्यनंदत्सुरर्षीन ॥ ९९ ॥

लिये केशरसे रंगे हुए पुष्पोंको प्रतिमाके ऊपर बखेरै ॥ ९७ ॥ "एवं" इत्यादि श्लोक बोलकर देवोंसे लाये गये भोग उपभोगोंका अनुभव दिखानेके लिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ ९८ ॥ इस प्रकार जन्मकल्याणकी स्थापना हुई ॥ (२) ॥ अब तपकल्याणकका वर्णन करते हैं । "प्राप्ते" इत्यादि श्लोक बोलकर शमसुखके एक स्वादी होनेकी स्थापनाके

प्रशमसुखैकरासिकत्वस्थापनार्थं जिनोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

विजयस्व जिनाधीश स्वयंभूरद्य खल्वसि। वाक्ति स्वायंभुवं ज्योतिः शिवप्रस्थानमेव नः१००
दुग्धां कामामियं चित्तं सुद्रव्यादिचतुष्टयी। एनामेवेयमन्वेतु सुष्ठूत्साहोयमेधताम् ॥ १०१ ॥
जृंभतां तत्परं ज्योतिः प्रीयंतां प्राणिनोऽखिलाः। भव्यात्मानः प्रबुध्यंतां छिद्यंतां कर्मशृंखलाः
निर्मलोन्मुद्रितानंतशक्तिचेतयितृत्वतः। ज्ञानं निःसीमशर्मात्मन् विंदन् प्रतपत्पदे ॥ १०३ ॥
इमं विधिं नियोगेन साधर्मप्रणयेन वा। वाचालयेमहि कृत्ये तु त्वादृशो जाग्रयुः स्वयम् १०४
इति स्तुतो शिवोद्योगं लौकांतिकसुरैः सुरैः। कृतनिःक्रमकल्याणं स्थापयाम्यत्र तं प्रभुम् १०५

निःक्रमणकल्याणोपक्रमस्थापनाय चंदनालुलितपुष्पाक्षतं प्रतिमोपरि क्षिपेत् ।

न्यग्रोधो मदगंधि सर्जमुशनश्यामे शिरीषोर्हता-
मेते ते किल नागसर्जजटिनः श्रीतिंदुकः पाटलः ।
जंब्वश्वत्थकपित्थनंदकविठाम्रावंजुलश्चंपको
जीयासु बकुलोत्र वांशिकधवौ शालश्च दीक्षाद्रुमाः ॥ १०६ ॥

लिये भगवानके ऊपर पुष्पोंकी अंजलि क्षेपण करे। ९९ ॥ उसके बाद प्रभुके वैराग्य होनेके समय लौकांतिक देवोंकर " विजयस्व " इत्यादि छह श्लोकोंसे स्तुति करना। १००।१०१ १०२।१०३।१०४।१०५ ॥ फिर तपकल्याणका आरंभ स्थापन करनेके लिये चंदनसे मिश्रित

ओं णमो अरहंताणं जिनदीक्षावनवृक्षा अत्रावतरंत्विति स्वाहा । जिनदीक्षावनवृक्षस्थापनाय मूलवेद्या प्रत्यग्निवेशितायाः प्रतिष्ठेयमहाप्रतिमायाः पुरस्तात्पुष्पाणि प्रकिरेत् ।

कल्पांतार्णववीचिविभ्रमनिपानाक्रांतदिकं प्रभुः
शक्रैरेत्य कृता स्तवादिकाविधिः स्वं वर्गमापृच्छ्यमां ।
त्यक्ता भूपखगामरोढाशिविकामारुह्य गत्वा वनं
पर्यंकस्य उदग्मुखो नतशिवो वा प्राङ्मुखः प्रव्रजेत् ॥ १०७ ॥
सोयं मुक्तिपुरीं प्रयान् विजयतां स्तादस्य पंथाःशिवो
नंद्यादस्य मनो विशुद्धैरनिशं सैद्धा गुणाः पांत्वमुम् ।
क्रोधादिप्रतिरोधिनोस्य सुतपःशस्त्रैः पतंतु क्षताः
संतश्चैनमनारतं परिचरंत्वेतत्पदं प्रेप्सवः ॥ १०८ ॥

पुष्प अक्षतोंको प्रतिमाके ऊपर क्षेपण करे । " न्यग्रोधो " इत्यादि तथा " ओं णमो " इत्यादि बोलकर भगवानके वड़ सप्तपर्ण आदि दीक्षावनवृक्ष स्थापन करनेकेलिये मूलवेदीके पश्चिमकी तरफ स्थापित प्रतिष्ठेय महाप्रतिमाके आगे पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ १०६ ॥ " कल्पांता " इत्यादि श्लोक बोलकर मूलवेदकि सिंहासनसे प्रतिमाको उठाकर उत्तम पालकीमें वैठाकर महान उच्छवके साथ लेजाकर पहले स्थापनकिये गये दीक्षावन वृक्षके

एतत्पठन् मूलवेदीपीठात् प्रतिमामुत्क्षिप्य दिव्यशिविकामारोप्य महोत्सवेन नीत्वा पूर्वस्थापितदीक्षावनवृक्षतले निवेशयन्निमं मंत्रं पठेत् । ओं नमो सिद्धाणं भगवान् स्वयंभू रत्न सुनिविष्टो भवत्विति स्वाहा । अनेनैव मंत्रेण शेपप्रतिमास्वपि निष्क्रमणकल्याणस्थापनाय पुष्पाणि क्षिपेत् ।

स्वस्त्यस्मै वनशाखिने द्रपदियं स्ताचांद्रकांती मुदे ।
ये दीक्षागामिनो न्यधान्नम इमान् राज्ञः समं दीक्षितान् ।
शक्रः सतत्त्वधियोधिरत्नपटलौ मत्यग्रहीत्तत्कचा-
स्तीर्थेषु प्रतपत्वलं तदुपदा द्दष्नोर्णवः पंचमः ॥ १०९ ॥
ममेदमहमस्येति मतिं भित्वार्हतोज्झिताः ।
पुनंतु विश्वस्त्रग्वस्त्रभूषाः संपूजिताः सुरैः ॥ ११० ॥

ओं नमो भगवतेर्हते सद्यः सामायिकप्रपन्नाय कंकणमपनयामीति स्वाहा । कंकणमपनीय दीक्षाविस्थापनाय प्रतिमादिषु पुष्पाणि क्षिपेत् । वनप्रस्थानप्रव्रज्याग्रहणाद्विस्थापनं ।

नीचे स्थापन करे और उस समय " ओं णमो " इत्यादि स्थापनमंत्र बोले ॥ १०७।१०८ ॥ इसी मंत्रसे अन्य प्रतिमाओंमें भी तपकल्याण स्थापन करनेकेलिये पुष्पोंको क्षेपण करे " स्वस्त्यस्मै " इत्यादि दो श्लोक तथा " ओं नमो " इत्यादि बोलकर कंकणादिको उतार कर दीक्षास्थापनकेलिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंको क्षेपण करे । इस तरह वनमें जाना,

स्वामीसिद्धप्रभुगुणरतः सर्वसावद्ययोग-
व्यावृत्तात्मा स्खलितविमुखस्तत्क्षणादुद्गतेन ।
तस्मै बोधत्रय इव मनःपर्ययेणोपगूढो
व्युत्कृष्टांगः स्वरसविलसद्भावनो देदिवीति ॥ १११ ॥

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययाख्यसम्यग्ज्ञानचतुष्टयस्थापनाय चतुर्वर्तिदीपावतारणं विदध्यात् ।

अथेंद्राः सिद्धचारित्रयोगशांतिभक्तिभिः । जिननिष्क्रमणकल्याणक्रियां कुर्युः ससूरयः ११२

स्वं विंदन् स्वतया परंपरतया तीव्रैस्तपोभिर्भवान्
कृष्ट्वा पाकमवाप कष्टव्यनिशं कर्मांशतः शातयन् ।
आकैवल्यपदाद्यथोत्तरविशुद्धयुद्धिद्यमानात्मवित्
सांद्रानंदरसं स्वयं पिबति यः सोयं जगत्त्रायताम् ॥ ११३ ॥

दीक्षा ग्रहण करना, केशलोंच करना आदिका स्थापन हुआ ॥ १०९।११० ॥ " स्वामी " इत्यादि बोलकर मतिश्रुत अवधि मनःपर्यय-इन चार ज्ञानोंको बतलानेके लिये चार बत्तियोंवाला दीपक जलावे ॥ १११ ॥ उसके बाद वे इंद्र सिद्ध चारित्र शांति आदि भक्तिको करके भगवानके तपकल्याणकी क्रियाको करें ॥ ११२ ॥ " स्वं विंदन् " इत्यादि बोलकर

विशिष्टतपोनुष्ठानप्रातिष्ठार्थे प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।
ततोर्चां तां पुनर्वेदीं नीत्वा ताभिः सद्यांजसाऽध्यानावतारितजिनां योजयेत् तिलकादिना ११४
एष क्रमश्चलार्चानां विस्तरेण प्ररूपितः । स्थिराणांतु यथास्थाने सर्वमेनं प्रकल्पयेत्॥११५॥

किंच—गर्भावतारादिविधिः समस्तं स्थानस्थिता चाल्याजिनेन्द्रबिंबे ।
संकल्प्य सिंहासनपादपीठमध्येस्य हैमीं निदधे शलाकाम् ॥ ११६ ॥

श्रीपादपीठसिंहपीठयोर्मध्ये सुवर्णशलाकानिवेशनम् । इति निःक्रमणकल्याणस्थापना ।
अथातस्तिलकदानविधानं । तत्रादौ तावकल्याणपंचकरोपणमनुवर्णयिष्यामः ।

यद्गर्भावतरे गृहे जनयितुः प्रागेव शक्राज्ञया
षण्मासान्नव चानु रत्नकनकं वित्तेश्वरो वर्षति ।

विशेषतपस्या स्थापन करनेकेलिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करें ॥ ११३ ॥ उसके बाद उस प्रतिमाको वेदीपर लेजाकर तिलकादि क्रियासे युक्त करे ॥ ११४ ॥ यह क्रम चल प्रतिमाओंका विस्तारसे कहा गया है परंतु स्थिर प्रतिमाओंका उसी स्थान पर कल्पना करे ॥ ११५ ॥ " गर्भाव " इत्यादि बोलकर भद्रासनोंके मध्यमें सोनेकी सलाई रक्खे। यह निष्क्रमण कल्याणकी स्थापना हुई ॥ ११६ ॥ अब तिलकदानविधि कहते हैं । उसमें सबसे पहले पांच कल्याणोंका स्थापन कहते हैं । जिस प्रभुके गर्भमें आनेके पहलेही छह

भत्युर्वी मणिगर्भिणी सुरसरिन्नीरोक्षिता पोडश-
स्वप्नेक्षामुदितां भजंति जननीं श्रीदिक्कुमार्योऽसि सः ॥ ११७ ॥

प्रच्छन्नं जननीमुपास्य शयनादानीय शच्यार्पितं
यं तत्वास चतुर्णिकायविबुधः श्रीमत्करींद्राश्रितः ।
सौधर्मांकनिवेशितं सुरगिरिं नीत्वाभिषिच्यावया
संयोज्योपचरत्यजस्रमसमैर्भोगैः स भास्येष नः ॥ ११८ ॥

किं कुर्वाण सुरेंद्ररुद्धविषयानंदाद्विरक्तस्तुतो
यो लौकांतिकनाकिभिः शिविकया निःक्रम्य गेहान्महैः ।
दिव्यैः सिद्धनतीद्धयावनतरुं पूत्वा परादीक्षया
भुंक्ते शुद्धनिजात्मसंविदमृतं स त्वं स्फुरस्येष नः ॥ ११९ ॥

महिने तथा आनेके वाद नौ महीने इस तरह पंद्रह महीने इंद्रकी आज्ञासे कुवेरने पिताके घर रत्न आदिकी वर्षा की तथा सोलह उत्तम स्वप्नोंके देखनेसे हर्षित जिनमाताकी दिक्कुमारियां सेवा करती हुईं ॥ ११७ ॥ जिसके जन्म कल्याणकमें इंद्राणिने माताको निद्रामें मग्न करके प्रभु वालकको लाकर इंद्रको सौंप दिया, फिर उसे ऐरावत हाथी-पर विठाके सुमेरु पर ले जाकर इन्द्रादिने अभिषेक किया, उसके वाद राज्यसंपदा आदि भोगोपभोगकी दिव्य सामग्रीसे शोभायमान हुए ॥ ११८ ॥ उसके वाद किसी

सम्यग्दृष्टिकुशाकुशव्रतशुभोत्साहेषु तिष्ठन् क्वचित्
धर्मध्यानबलादयत्नगलितामायुस्त्रयः सप्त यः ।
दृष्टि प्रप्रकृती समातपचतुर्जातित्रिनिद्रा द्विधा
श्वभ्रस्थावरसूक्ष्मतिर्यगुभयोद्योतान् कषायाष्टकम् ॥ १२० ॥

क्लैव्यं स्त्रैणमथादिमेन नवमे हास्यादिषट्कं नृतां
क्षिप्त्वोदीचि पृथक्क्रुधादिदशमे लोभं कषायाष्टकं ।
निद्रा सप्रचलामुपांत्यसमये दृग्धीघ्नविघ्नाश्चतु-
र्द्विः पंच क्षिपते परेण चरमे शुक्लेन सोऽर्हन्नसि ॥ १२१ ॥

निमित्तको पाकर भोगोंसे वैराग्यरूप हुए, उससमय लौकांतिक देवोंने आकर स्तुति की फिर दिव्य पालकीमें बैठाकर वनमें लेगये वहां पर दीक्षावृक्षके नीचे बैठके प्रभुने सिद्धोंको नमस्कार कर आप ही दीक्षा धारण की, केशलोंच करके ध्यानमें मग्न शुद्ध निजस्वभावामृतका स्वाद लेते हुए। ऐसे प्रभु हमारे कल्याण कर्त्ता हो ॥ ११९ ॥ जिस प्रभुने धर्मध्यान और शुक्लध्यानके बलसे अनायासमें ही गुणस्थान क्रमसे कर्म प्रकृतियोंका क्षय किया। यह क्रम कर्मकांडमें विस्तारसे लिखाहुआ है। विस्तारके भयसे यहां नहीं लिखा। क्षयके क्रमसे चार घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान आदि अनंतच-

नर्थव्यंजनमंगगीरापि पृथक्त्वेनापि संक्रामता ।
कर्मांशानव स्थितेन मनसा मोदार्भकोत्साहवत्
कुंठेन द्रुमिवाणुशः परशुना छिंदन् यतिस्त्वध्यासि ॥ १२२ ॥
क्षुण्णे मोहरिपौ भजन्नुरुयथाख्याताभिराज्याश्रियं
शुद्धस्त्वात्मनि निर्विचारविलसत्पूर्वोदितार्थश्रुतः ।
स्वच्छंदो छकदुत्कलोज्ज्वलचिदानंदैकभावो लस-
च्छेपारिव्रजवैभवः स्फुटमसि त्वं नाथ निर्ग्रंथराट् ॥ १२३ ॥
विश्वैश्वर्यविघातिघातिदितिजो छेदो गतानंतदृक्
संविद्वीर्यसुखात्मिकां त्रिजगदाकीर्णे सदस्या स्थितः ।
जीवन्मुक्तिमृपींद्रचक्रमहितस्तीर्थं चतुस्त्रिंशता
कुर्वाणोऽतिशयैः पुनात्यपि परान् संप्रातिहार्याष्टकैः ॥ १२४ ॥

उदय पाकर सयोगकेवली हुए। उससमय इंद्रने समवसरणकी रचना की। उसी समय चौंतीस अतिशय आठ प्रतिहार्य तथा पूर्वोक्त अनंतज्ञानादि चार—इसतरह छयालीस गुण मंडित हुए दिव्यध्वनिद्वारा तिर्यंचों आदि जीवोंका कल्याण करते हुए॥ १२०। १२१।१२२ १२३। १२४॥ उसके वाद प्रभुने योगोंको रोककर शुक्लध्यानके वलसे मोक्षअवस्थाके

देवव्यक्तिविशेषसंव्यवहातिव्यक्त्युल्लसल्लांछन-
श्रीमत्त्वत्क्रमपद्मयुग्मसततोपास्तौ नियुक्तं शुभैः ।
यक्षद्वंद्वमवश्यमेतदुचितैः प्राच्यैरिदानींतनै-
र्देवेंद्रैरपि मान्यते शिवमुदोप्येष्याङ्घ्रिरीशिष्यते ॥ १२५ ॥
द्वौ गंधौ रसवर्णबंधनवपुः घातकान् पंचशः
षट् षट् संहननाकृतीः शुभगतिः स्वस्वानुपूर्व्यांमुभे ।
खव्रज्ये परघातकागुरुलघूच्छ्वासोपघाता यशो
नादेयं शुभसुस्वरस्थिरयुगैः स्पर्शाष्टकं निर्मितम् ॥ १२६ ॥
व्यांगोपांगमपूर्णदुर्भगयुगे प्रत्येक नीचैः कुले
वेद्यं चान्यतरद्विसप्ततिमुपांत्ये सूरयोगं क्षणे ।
आदेयं सनिजानुपूर्व्यनृगतिं पंचाक्षयोतिशयः
पर्याप्तत्रसबादराणि सुभगं मर्त्यायुरुच्चैः कुलम् ॥ १२७ ॥

अंतके दो समयोंमेंसे पहले समयमें पचासी कर्म प्रकृतियोंमेंसे बहत्तर प्रकृतियोंका क्षय किया और अंतसमयमें अवशेष तेरह प्रकृतियोंका नाशकर कर्मोंसे मुक्त हुए तीनलोकके शिखरपर जा विराजे ॥ १२५ । १२६ । १२७ । १२८ । १२९ ॥ इसप्रकार पूर्वोक्त श्लोकोंको

द्वेधेनान्यतरेण तीर्थकमार अष्टादशाप्यंतिमे
निष्कृत्यप्रकृतीरनुत्तरसमुच्छिन्नाक्रियध्यानतः ।
यः प्राप्तो जगदग्रमेकसमयेनोर्ध्वंगमात्माष्टभिः
सम्यक्त्वादिगुणैर्विभाति स भवानत्रार्थितोच्यार्ज्जगत् ॥ १२८ ॥
मुक्तिश्रीपरिरंभनिर्भरचिदानन्देन येनोज्झितं
देहं द्राक् स्वयमस्तसंहतितडिद्वामेव मायामयम् ।
कृत्वाग्नींद्रकिरीटपावकयुतैः श्रीचन्दनाद्यैर्मुदा
संस्कृत्याभ्युपयांति भस्म भुवनाधीशाः स जीयात् प्रभुः ॥ १२९ ॥

एतत्पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पांजलिमापयेत् । इति कल्याणपंचकारोपणविधानं । अथ संस्कारमालाधिरोपणम्।

न्यस्यामथेह विंबेष्ट चत्वारिंशतमर्हतः । संस्कारान् दृष्टिलाभादिशिवांतपदगोचरान्॥१३०॥

पढकर प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंकी अंजलि क्षेपण करे। यह कल्याणपंचककी आरोपणाविधि हुई । अब संस्कारमालाकी आरोपण विधि कहते हैं। "न्यस्या" इत्यादि श्लोक बोलकर सम्यग्दर्शनप्राप्तिके संस्कारसे लेकर मोक्षप्राप्तितक संस्कार स्थापनेकी प्रतिज्ञा करे ॥ १३० ॥

सद्दर्शनस्य संस्कारः स्फुरत्वयमिहार्हति । संज्ञानस्यैव सद्वृत्तस्यैष सत्तपसोप्ययम् ॥१३१॥
एष वीर्यचतुष्कस्य मात्रष्टतयमंडले । प्रवेशस्यायमेषोष्टशुद्ध्यवष्टंभनिष्ठिते ॥ १३२ ॥
परीषहजयस्यायं त्रियोगासंयमच्युतेः । शीलमस्यायमेष त्रिकरणासंयमारतेः ॥ १३३ ॥
अयं दशा संयमोपरमस्यैषोक्षनिर्जितेः । अयं संज्ञानिग्रहस्य दशधर्मधृतेरयम् ॥ १३४ ॥
अष्टादशसहस्राणां शीलानामयमेषकः । चतुरभ्यधिकाशीतिगुणलक्षसमाश्रयः ॥ १३५ ॥
विशिष्टधर्मध्यानस्य अयमेषोतिशायिनः । अप्रमत्तयमस्यायं सुदृढश्रुततेजसः ॥ १३६ ॥
अकंपमकरणश्रेण्यारोहणस्यापुकोसकौ । अनंतगुणशुद्धेश्चाप्यामवृत्तकृतेरयम् ॥ १३७ ॥
अयं पृथक्त्ववीतर्कवीचारप्रणिधेरयम् । अपूर्वकरणस्यैषो निवृत्तिकरणस्य च ॥ १३८ ॥
बादराणां कषायाणामयं किट्टिकृतेरयम् । सूक्ष्माणामेष पूर्वेषां किट्टिनिर्लेपनस्य च ॥१३९॥
एषोन्येषामयं सूक्ष्मकषायचरणस्य च । प्रक्षीणमोहनस्यायं यथाख्यातविधेरयम् ॥ १४० ॥
अयमेकत्ववीतर्कवीचारध्यानभूरयम । घातिघातस्य कैवल्यज्ञानदृष्ट्युद्यतेरयम् ॥ १४१ ॥
तीर्थप्रवर्तनस्यायमेष सूक्ष्मक्रियस्य च । शैलेशीकरणस्यायं परसंवरवर्त्यसौ ॥ १४२ ॥
योगकिट्टिकृतेरेष तन्निर्लेपनगाम्यसौ समुच्छिन्नक्रियस्यायं श्रितोयं निर्जरां पराम् ॥१४३॥

"सद्दर्शन" इत्यादि एकसौ पैंतालीस तक श्लोक बोलकर अभिप्राय मनमें धारण करके प्रतिमाके ऊपर पुष्पांजली क्षेपण करे ॥ १३१ से १४५ ॥ इसप्रकार अड़तालीस संस्कारोंकी

सर्वकर्मक्षयस्यायमनादिभवपर्ययः । विनाशस्याशुकोनंतसिद्धत्वादिगतेरयम् ॥ १४४ ॥
आदेयसहजज्ञानोपयोगैश्वर्यचार्यसौ । एष देहसाद्यात्येक्षोपयोगैश्वर्यगोचरः ॥ १४५ ॥

एतदर्थारोपणपरायणांतःकरणः पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । इत्यष्टचत्वारिंशत्संस्कारमालारोपणविधानम् । अथ मंत्रन्यासविधानम् ।

विश्वोद्भासि परब्रह्मव्यंजकं स्यात्पदांकितम्। शब्दब्रह्मेति मंत्रालीं न्यस्यामीह जिनेशिनः१४६

मंत्रन्यासप्रतिज्ञानाय प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

भालनेत्रश्रवोनासाकपोलरदपंक्तिपु । स्कंधयोर्मूर्ध्नि जिह्वाग्रे ओंमायार्ह रमोत्तरान् ॥ १४७ ॥

स्थापनाका विधान हुआ । अब मंत्रन्यास विधि कहते हैं—मैं स्यात्पदसे चिन्हित, जगतका प्रकाशक और परब्रह्मको कहनेवाले ऐसे शब्दब्रह्म इस मंत्रको अर्थात् ब्रह्म नामको जिनेश्वरमें स्थापित करता हूं ऐसा कहकर मंत्रन्यासकी प्रतिज्ञा प्रगट करनेकेलिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंकी अंजलि चढावे ॥ १४६ ॥

उसके बाद "भाल" इत्यादि चार श्लोक बोलकर ओं ह्रीं अर्हं श्रींपूर्वक अकारादि वर्णोंको शरदऋतुके निर्मल चंद्रमाके समान चिंतवन करे तथा प्रतिष्ठेय प्रतिमामें हाथसे स्थापन करे। वह इसतरह हैं—"ओं" इत्यादिको ललाटमें दाहिनी बांई तरफ स्थापन करे, इसीप्रकार 'इई' को नेत्रोंमें, उऊको कानोंमें, ऋॠ को नाकमें, ऌॡको गालोंपर, एऐ को दांतोंमें, ओ औ को कंधेके दोनों भागोंमें, अं को मस्तकमें, अःको जीभके अगाड़ीके भागपर, कवर्गको दाहिनी

स्वरान् द्विशः पृथक्कद्वद्वाक्षोर्दक्षिणवामयोः । कचवर्गौ तथा कुक्ष्योष्टतवर्गौ पृथक् पफौ ॥ १४८ ॥
ऊर्वोर्बं गुह्यके नाभ्यां भं मं मांसलतापदे । देहे य मूर्ध्नि रं लं पृष्ठेधिसंधि वं ॥ १४९ ॥
शं जानुनोर्गुल्फयोः पं पादयोः संनिवेश्य हं । सर्वप्राणपदे साक्षाज्जिनमेपोवतारये ॥ १५० ॥

ओं ह्रीं अर्हं श्रीं एतत्पूर्वकानकारादिवर्णान शरच्चंद्रगौरान् यथोक्तस्थानेषु मनसा ध्यात्वा प्रतिष्ठेयप्रतिमासु करेण विन्यसेत् । तथाहि । ओं ह्रीं अर्हं श्रीं अ आ ललाटे दक्षिणतः प्रभृति न्यसेत्, ओं ह्रीं अर्हं श्रीं इई दक्षिणेतरनेत्रयोः । एवं सर्वत्र । उऊ कर्णयोः ऋ ॠ नासापुटयोः, ऌ ॡ गंडयोः, ए ऐ ऊर्ध्वाधो दंतपंक्त्योः, ओ औ स्कंधयोः, अं मस्तके, अः जिह्वाग्रे, क ख ग घ ङ दक्षिणभुजे, च छ ज झ ञ वामभुजे, ट ठ ड ढ ण दक्षिणकुक्षौ, त थ द ध न वामकुक्षौ, प दक्षिणोरौ, फ वामोरौ, ब गुह्ये, भ नाभिमंडले, म स्फिजोः, य शरीरस्थाने उदरे, र ऊर्ध्वरोमांचे मस्तकादिकेशेष्वित्यर्थः, ल पृष्ठे, व ग्रीवाकक्षादिसंधिषु, श जानुयुग्मे, ष गुल्फमूलयोः, स पदयोः ह सर्वप्राणस्थाने हृदये । इति मंत्रन्यासविधानं । अथ प्रतिष्ठातिलकदानं ।

भुजामें, चवर्गको बांई बांहमें, टवर्गको दाहिनी कूखमें, तवर्गको बांई कूखमें, प दाहिनी जांघमें, फ बांई जांघमें, ब गुह्यस्थानमें 'भ नाभिस्थानमें, म चूतड़ोंमें, य उदरमें, र शिरके केशोंमें, ल पीठमें, व गले कांख आदिकी संधिओंमें, श घुटनोंमें, ष पैरोंमें, हकारको हृदयस्थानमें, स्थापन करे ॥ १४७ । १४८ । १४९ । १५०॥ यह मंत्रन्यास विधि हुई । अब प्रति-

प्रीत्यै पिंगा प्रियंगूफलमचिरफलं मंगलार्थं दधि स्यात्
सिद्धार्था वांछितार्थान् ददाति सुमनसः सौमनस्यं महायुः ।
दूर्वा श्रीखंडलोहप्रभृतिसुरभितामृद्धिमृद्धिश्च वृद्धिं
वृद्धिः शैत्यं तुषारो क्षतविशदयशास्यक्षताश्चेत्यमीभिः ॥ १५१ ॥
शुच्या कौसुंभवस्त्राभरणघुसृणसन्माल्यभाजा चतुष्के
तिष्ठंत्या भर्तृवस्त्रांचलयुतवसनप्रांतया यद्वपत्या ।
क्षोणोद्भासि प्रदीपामलजलपवित्ताभ्यर्चितायां शिलायां
पिष्टैर्दत्वा गुडार्द्रांस्तिलकयतु कृतावाहनादिर्जिनार्चाम् ॥ १५२ ॥

चत्वारि मंगलं स्वाहेत्यंतेन प्रणवादिना । प्रियंगुः स्थापकैर्जप्त्वा धार्या हैमादिपात्रगा ॥१५३

तिलकद्रव्यसज्जीकरणं । अत्र स्थापनानिक्षेपेण यमाश्रित्यावाहनादिमंत्राः कथ्यंते तद्यथा । ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा एहि २ संवौषट् आवाहनं, ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आउसा तिष्ठ २ ठ ठ स्थापनं, ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा अत्र सन्निहितो भव २ वषट् सन्निधीकरणं

प्रातिलकदानकी विधि कहते हैं ॥ हरताल आदि तिलक द्रव्य सोनेके पात्रमें रखकर "सि-द्धार्था" इत्यादि तीन श्लोक तथा "ओं" इत्यादिसे आवाहनादि करके जिन प्रतिमामें तिलक लगावे अथवा उसके आगे तिलक द्रव्य चढावे ॥ १५१ । १५२ । १५३ ॥ इसप्रकार वह इंद्र

कृत्वैवं कर्म शक्रोर्चां पूरकेण जिनं स्मरन् । सुलग्ने रेचकेनांतः श्रियां वा तत्पदं न्यसेत् ॥ १५४ ॥

तिलकमंत्रः । इति तिलकदानविधानं । अथाधिवासनाविधानं ।

गंधाक्षतस्रग्वस्त्रान्नयवालीकंकणेषुभिः । चरुधूपारार्तिकफलैर्विरूढकयवारकैः ॥ १५५ ॥

सवर्णपूरेक्षुवालिवार्तिभृंगारकैरिमैः । मंत्राभिमंत्रितैश्चित्तैः सार्घस्वस्त्ययनैः क्रमात् ॥ १५६ ॥

एष निष्पतिघो देव्यस्केवलज्ञाननिर्वृतिम् । प्रतिष्ठितमहार्चायां जिनेंद्रमधिवासये ॥ १५७ ॥

स्वासन्नीकृतचंदनाद्यधिवासनद्रव्येषु पुष्पाक्षतं प्रक्षिप्य तत्कालप्रतिष्ठितार्हत्प्रतिमां नमस्कुर्यात् ।

कर्पूरगकलवंग एला करंबितं चंदनौघैः ।
दूरं स्फुरत्परिमलैर्जिनभर्तुराराद् विद्राणसौरभमदैरपि चर्चयेऽग्रीन् ॥ १५८ ॥

ॐ नमोर्हते सर्वशरीरावस्थिताय पृथु २ गंधं २ गृहाण स्वाहा ।

पूरक प्राणायामसे जिनेंद्र देवका स्मरण करता हुआ रेचक प्राणायामसे चरणकमलोंमें तिलकद्रव्य चढावे ॥ १५४ ॥ यह तिलकदान विधि हुई । अब अधिवासनाविधि कहते हैं- केवलज्ञान कल्याणसे प्रतिष्ठित हुई महान् अर्हंत प्रतिमामें अर्हत्प्रभुको स्थापित करके चंदन अक्षत आदिसे पूजा करे ॥ १५५ । १५६ । १५७ ॥ वह पूजा इसप्रकारसे है-पहले आव्हान-नादि करके पुष्प अक्षत क्षेपण करे । फिर "कर्पूर" इत्यादि श्लोक तथा "ओं नमो" इत्यादि बोलकर चंदन चढावे ॥ १५८ ॥ " शुंभत " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर अक्षत

शुंभच्छारदपार्विकेंदुसुहृदामामोदनर्मोल्वण-
घ्राणमाणितचेतसां द्युतटिनीतोयाभिषिक्तात्मनाम् ।
अच्छेदार्जितसाधुशीलयशसां शाल्यक्षतानां चयै-
राचारैरिव पंचभिः सुरचनैरर्हत्पदाब्जे यजे ॥ १५९ ॥

ओं नमोर्हते सर्वशरीरावस्थिताय पृथु २ अक्षतानि गृहाण २ स्वाहा ।

सौरभ्यसांद्रमकरंदपरागजाती मंदारमल्लिकमलादिमयेन दाम्ना ।
कल्याणपंचकरुचिं शरपंचकेन प्रव्यंजता जिनपते रचयामि पूजाम् ॥ १६० ॥

ओं नमोर्हते जय सर्वतो मेदिनीपुष्प वरपुष्पाणि गृहाण २ स्वाहा । पंचशरमालारोपणम् ।

जल्पच्छुक्लतया परां विमलतां तात्कालिकीं लभ्यतां
नव्यत्वेन लसद्दशापरिचयेनोत्कर्पपर्याप्तता ।
माहार्घेण महर्घतां च परमध्यानस्य दुर्लक्ष्यतां
सूक्ष्मत्वेन ददे जिनस्य वदने वस्त्रं प्रनष्टाष्टते ॥ १६१ ॥

चढावे ॥ १५९ ॥ "सौरभ्य" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर पुष्प चढावे ॥ १६० ॥
"जल्प" इत्यादि दो श्लोक तथा "ओं नमो" इत्यादि बोलकर वस्त्र और औमाला सहित सात

ओं नमो अर्हं सर्वतो दह २ तेजोधिपतये सहभूताय धूपं गृहाण गृहाण स्वाहा । अष्टासु दिक्षु धूपघटाष्टकनिवेशनम् ।

स्फूर्जज्जोतिः सज्जितैः कज्जलांहो दाहं दाहं स्नेहमेभिर्वहद्भिः ।
दीपैः शुद्धज्ञानरोचिः कलापमख्यैरर्हं देवमाराधयामः ॥ १६७ ॥

ओं नमोर्हते सर्वतः प्रज्वल २ अमिततेजसे दीपं गृहाण स्वाहा ।

श्रीमद्दाडिममोचचोचरुचका क्षौटा मघोटा शिवा
जंबूजंभलनागरंगपनसद्राक्षाकपित्थादिजैः ।
छायागंधरसप्रभाकृतिदशाभेदैर्मनोहारिभिः
साक्षात्पुण्यफलैर्जिनेंद्रचरणावभ्यर्चयामः फलैः ॥ १६८ ॥

ओं नमोर्हते सहभूताय फलानि गृहाण गृहाण स्वाहा ।

मुद्गाद्यशेषाद्विदलप्रसूतैर्वालांकुराक्षिप्तगुणप्ररोहैः ।
विरूढकैः प्रौढविशुद्धभावं यजे जिनं भव्यशुभोद्भवाय ॥ १६९ ॥

॥ १६६ ॥ "स्फूर्ज" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर दीपक चढावे ॥ १६७ ॥ "श्रीमद्दा" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर फल चढावे ॥ १६८ ॥ "मुद्गा" इत्यादि बोलकर दो द-लवाले धान्यके अंकूरे शुभउदय होनेके लिये चढावे ॥ १६९ ॥ "यवादि" बोलकर जौका

विरूढकस्थापनम् ।

यवादिजैर्मंगलदानदक्षैर्यावारकैः कांतिजिताश्मगर्भैः ।
जगत्पतेः सिद्धवधूविवाहवेदीमिमां भूमिमलंकरोमि ॥ १७० ॥

यवारकस्थापनम् ।

सहानवस्थानहतान् स्वपंचवर्णोच्चयेन द्युविमानवर्णान् ।
आक्षिप्यतोभि प्रभु वर्णपूरान् स्ववासिपुण्याय निवेशयामि ॥ १७१ ॥

वर्णपूरकस्थापनम् ।

व्याहारान् जिनवाक्यवन्मधुरताशैत्यप्रसादोद्धुरै–
रिक्षन् स्वादुविपाकवद्भिरितरान् मत्यादिशक्ती रसैः ।
स्थूलैरायतिशालिभिः कलयुतं कोदंडकॢप्त्यै ।
प्रभ्रारिष्टरसोन्मुखं जिनपतिः पुंड्रेक्षुभिः मार्चये ॥ १७२ ॥

इक्षुस्थापनम् ।

वस्तुं सभाभुवि मनोज्ञफलप्रवालपुष्पावलीरुपहृता भुवनश्रिये वा ।
चित्रामपिष्टमयपुष्पफलप्रवालरूपास्तनोमि वलिवर्तिततीर्जिनाग्रे ॥ १७३ ॥

आटा स्थापन करे ॥ १७० ॥ "सहान" इत्यादि बोलकर पांच रंगोंको चढावे ॥ १७१ ॥ "व्याहारान्" इत्यादि बोलकर पोंढा चढावे ॥ १७२ ॥ "वस्तु" इत्यादि बोलकर घीकी वत्ती

स्वीकार्यापि शिवाय सद्व्रतमिमे कुर्मोवतार्यार्तिकं
तस्योतिक्षिप्य च धूपमध्वमघट्टत्तच्छ्रीमुखोद्घाटनम् ॥ १८३ ॥

ॐ उसहादिवड्ढमाणाणं पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं महइ महावीरवड्ढमाणसामीणं सिज्झउ मे महइ महाविज्जा अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं सयलकलाधराणं सज्जोजादरूवाणं चउतीसातिसयविसेससंजुत्ताणं बत्तीसदेविंदमाणिमउडमत्थयमहियाणं सयललोयस्स संतिपुट्ठिकल्लाणाओ आरोगाकराणं बलदेववासुदेवचक्कहररिसिमुणिजदिअणागारोवगूढाणं उहयलोयसुहयफलयराणं थुइसयसहस्सणिलयाणं परापरपरमप्पाणं अणाइणिहणाणं वलिबाहुवलिसाहिदाणं वीरवीरे ओं हां क्षां सेणवीरे वड्ढमाणवीरे हंसं जयंतं पराइएवज्जसियलंममयाणं सस्सदबंभपइट्ठियाणं उसहाइवीरमंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालपइट्ठियाणं इत्थ सण्णिहिदा मे भवंतु मे भवंतु ठ ठ क्ष क्ष स्वाहा । श्रीमुखोद्घाटनमंत्रः ।

येनोन्मील्य समस्तवस्तुविशदोद्भासोद्भटं केवल-
ज्ञानं नेत्रमदर्शिमुक्तिपदवी भव्यात्मनामृण्पथा ।
तस्यात्रार्जुनभाजनार्पितसिता क्षीराज्यकर्पूरयुक्
वक्रस्वर्णशलाकया प्रतिकृतौ कुर्वे दृगुन्मीलनम् ॥ १८४ ॥

वाचन विधि हुई । अत्र केवलज्ञान कल्याणका स्थापन करते हैं–" इत्यधु " इत्यादि श्लोक तथा ओं उसहा " इत्यादि श्रीमुखोद्घाटन मंत्र बोलकर भगवानके मुखको उघाड़े ॥ १८३ ॥ "येनो" इत्यादि तथा "ओं नमो" इत्यादि नेत्रोन्मीलनमंत्र बोलकर नेत्रोंको उघाड़े ॥१८४॥

ओं नमो अरहंताणं अमियरसायणं विमलतेयाणं संति तुट्ठि पुट्ठि वरद सम्मादिट्ठीणं वृषभं अभयवरसणं स्वाहा । नेत्रोन्मीलनमंत्रः । अथ गुणाध्यारोपणं ।

यत्सामान्यविशेषयोः सह पृथक् स्वात्यत्वयोर्दीपव—
च्चित्तं द्योतकमर्हतः समुदभूत्ते दृक् चिदो ये च यत् ।
तद्व्यापारनिवंधि वीर्यमपि यत्सौख्यं तदव्याकुली—
भावोऽनंतचतुष्टयं तदिह तद्विंबे न्यसास्यांतरम् ॥ १८५ ॥

अनंतज्ञानादिचतुष्टयप्रतिष्ठार्थे प्रतिमोत्तमांगे चतुःपुष्पीमारोपयेत् ।

सौभिक्षं भवातिस्म योजनशतं यत्संसदं सर्वतः
सार्धक्रोशयुगोज्झिताक्षितितलं यत्रे स्पृहं सद्गतम् ।
यश्चेष्टास्वसितांगसंगवशतोप्यप्राणघातोंगिनां
या तावत्यपि विग्रहस्य कवलाहारं विनैव स्थितिः ॥ १८६ ॥
हुंडामप्यवसर्पिणीं प्रतिवदन् यो नोपसर्गोऽत्र—
स्तैजोवैभवतश्चतुर्मुखतया वीक्ष्यैकमुख्योपि या ।

अब गुणोंकी आरोपणविधि कहते हैं—"यत्सामान्य" इत्यादि बोलकर अनंतज्ञान आदि अनंत चतुष्टयकी स्थापनाकेलिये प्रतिमाके मस्तकके ऊपर चार पुष्प चढावे ॥ १८५ ॥ "सौ-

निद्रास्वप्यखिलासु यः परिदृढीभावो दृढः सर्वदा
यच्छायाविरहस्तिरश्चरदिनेऽप्यंगे क्षिपेयेपि च ॥ १८७ ॥
पक्ष्मस्पंदविपर्ययोऽनिशमृते व्याधेः प्रयत्नाच्च यो
यो मूर्तेर्नखकेशवृद्ध्युपरमो मर्त्यप्रकृत्यत्ययात् ।
ते घातिक्षयजा दशाप्यतिशया बाह्याश्च चेतश्चमत्–
कारोद्रेककृतो जिनस्य निहिता विंबे मयात्राधुना ॥ १८८ ॥
घातिक्षयजदशातिशयस्थापनार्थं पीठिकायां दश पुष्पाणि क्षिपेत् ।
धूलीशालोऽतः क्षितौ चैत्यगेहप्रासादाल्यो नाट्यशालाः सरांसि ।
मानस्तंभाश्चाधिदिग्वीथ्यतोर्णः पूर्णं खेयं वेदिरस्यं विदिक्षु ॥ १८९ ॥
वेदीभूपा पुष्पवाट्यस्ततोंतो नाट्याशोकाद्याग्रभूरुंपशाला ।
वेदीरुद्धावेध्वजोर्वीशतारमाकारांतो नाट्यकल्पद्रुमोर्वी ॥ १९० ॥
वेदीरुद्धातः स्तूपदिव्यालयोर्वीयत्पाद्युर्वीतः सनाद्यार्कशाला ।
तन्मध्येऽर्हन्गंधकुट्यासने भाग्वास्यार्नां नापिह स्थापयामि ॥ १९१ ॥

"निद्रा" इत्यादि तीन श्लोक बोलकर केवलज्ञानके समय होने वाले दस अतिशयोंके स्थापन करनेके दस फूलोंको वेदीपर चढावे १८६ । १८७ । १८८ ॥ "धूली" इत्यादि तीन

समवसरणस्थापनार्थं प्रतिमायाः समंतात् पुष्पाक्षतं क्षिपेत । इति समवसरणस्थापनम् ।

उपानीयं यतोदैवैर्देवदेवातिशायिनः । चतुर्दशाद्भुता भावाः स्थापयामीह तानपि ॥ १९२॥
ब्रुवतोर्द्धार्द्धसर्वांगि मागधोक्तिमयी प्रभोः । सभायामन्वकार्यंत मागधैर्वागिहास्तु सा॥१९३
जातिकारणवैरैकघस्मरेष्याश्रमे पुष्यन । यया प्रीतिकरा भर्तृभक्तान् मैत्रीह भातु सा॥१९४
सर्वर्तुसंपद्भ्राजिष्णु द्रुमा रत्नमयी ब्रुवत । या जिनाब्दतलासर्जि प्रभुभक्त्यास्तु सा प्रभुः १९५॥
यो विस्रसा विहरति प्रभौ मृद्धतिलोन्ववात् । यश्चाभूतपरमानंदः सर्वेषां तामिहापि तौ॥१९६॥
संमार्जनं योजनं यद्भोर्जिनाग्रेनिलैः कृतम् । या गंधोदकवृष्टिश्च मेघैस्ते भवतामिह ॥१९७॥
यांतं तं सर्वतः पद्माः पंक्तिद्वात्रिंशता ताः । सप्तसोधपदोर्थिको यत्तत्पद्मायनं त्विदम् १९८
विभुवैभवनिध्यानहृपिता पुलकानि च । फलभारानतव्रीहिव्याजाद्भूया सा त्विह ॥१९९ ॥
प्रभोर्दिशावसंहर्षाद्यन्नैर्मल्यं दधुर्दिशः । तद्योगादिव यत्खं च प्रसन्नं तद्भवत्विह ॥ २०० ॥
वरमर्द विभुभक्तुमेतैतेत्यभितो व्यधुः । यद्भावनाः समस्तान्यदेवाह्वनं तदस्त्विह ॥ २०१ ॥
रत्नरुक् चक्रदीपारसहस्रेण रविं क्षिपन । धर्मचक्रं चचाराग्रे यत्प्रभोस्तत्स्फुरत्विदम्॥२०२॥
छत्रचामरभृंगारकुंभाब्दव्यजनध्वजान् । स्वसुप्रतिष्ठान् यानिंद्रो भर्तुस्तेनेत्र संतु तो ॥२०३॥

श्लोक बोलकर समवसरण स्थापन करनेके लिये प्रतिमाके चारोंतरफ पुष्प और अक्षत फेंके ॥ १८९ । १९० । १९१ ॥ "उपानीयं" इत्यादि बारह श्लोक बोलकर देवकृत अतिशयोंके स्थापन करनेकेलिये वेदीपर चौदह पुष्प चढावे ॥ १९२ से २०३ ॥

चतुर्दशदेवोपनीतातिशयस्थापनार्थं पीठिकायां चतुर्दश पुष्पाणि क्षिपेत् । इति दिव्यातिशय-स्थापनम् ।

स्पृश्याः स्पृशंतो नापङ्क्तिर्यन्नामापि तथापि तम् । येनेंद्रो यष्टभक्त्या तव प्रातिहार्याष्टकं त्विदम्॥

अष्टमहाप्रातिहार्यस्थापनाय पीठिकायामष्टपुष्पीं क्षिपेत् ।

रत्नांशुवर्गेन्द्रधनुर्न्यातास्या हरिवाहनम् । यच्चक्रे धर्मैकात्मा सिंहपीठं तदस्त्वदः ॥२०५॥

ओं सिंहासनश्रियै स्वाहा । सिंहासने पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

प्रवाद्यभेद्यो मेघौघध्वनिजिद्योजनं सद । व्याप्नुवन् यो न केनापि व्यधाय्येष सतदध्वनिः ॥

ओं ध्वनिश्रियै स्वाहा । सरस्वत्यां पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

यक्षैर्दोधूयमानार्हद्देहं छायाछलाश्रिता । या चामरचतुःषष्टिर्नानटीतिस्म सास्त्वियम्॥२०७॥

ओं चतुःषष्टिचामरश्रियै स्वाहा । चामरधारियक्षयोः पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

चक्षुष्ये पश्यतां सप्त भासयत्यनिशं भवान् । भामंडले त्रुडन् यत्र विश्वतेजोऽस्यदोस्तु तत् ॥

" स्पृश्याः " इत्यादि बोलकर आठ प्रातिहार्य स्थापन करनेकेलिये वेदीमें आठ पुष्प चढा-वे ॥ २०४ ॥ " रत्ना " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर सिंहासनके आगे पुष्प चढ़ावे ॥ २०५ ॥ " प्रवाद्य " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर सरस्वतीके आगे पुष्प चढावे ॥ २०६ ॥ " यक्षै " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर चमर धारण करनेवाले यक्षोंके आगे पुष्पांजलि चढावे ॥ २०७ ॥ " चक्षुष्ये " इत्यादि तथा " ओं " बोलकर भा-

ओं भामंडलश्रियै स्वाहा । भामण्डले पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

रत्नरोचि नदद्भृंगखगोवातचलल्लतः । विश्वाशोकीकृते व्यक्तं योऽशोको नटदेष सः २०९

ओं रत्नाशोकाश्रियै स्वाहा । रक्ताशोके पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

मुक्तप्रारोहमालंवि मुक्त्वा लंचूप लक्षणः । छत्रत्रयं स्मावत् श्रीनिधिं यत्र व्यात्यदोस्तु तत् ॥

ओं छत्रत्रयाश्रियै स्वाहा । छत्रत्रये पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

सभ्याः शृण्वंत्वसभ्योक्तीर्मेतीवातीव योध्वनत् । सार्धद्वादशकोट्युद्यद्वादित्रोयं स दुंदुभिः ॥

ओं दुंदुभिश्रियै स्वाहा । दुंदुभौ पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

गंगांभः सुभगे गुंजद्भृंगौघा सुमनस्तमे । सुमनोभिः सुमनसां वृष्टिर्या सर्जं सास्त्वसौ २१२

ओं पुष्पवृष्टिश्रियै स्वाहा । मालाविद्याधरयोः पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

इत्यष्टौ प्रातिहार्याणि प्रतिमायां जिनेशिनः । स्थापितानि च निघ्नंतु भाक्तिकानां सदापदः ॥

मंडलके आगे पुष्पांजलि चढावे ॥ २०८ " रत्न " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर लाल अशोकके आगे पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २०९ ॥ " मुक्त " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर तीन छत्रोंकेलिये पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २१० ॥ " सभ्या " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर दुंदुभिवाजेकेलिये पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २११ ॥ " गंगांभ " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर पुष्पमाला धारण करनेवालोंके आगे पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २१२ ॥ " इत्यष्टौ " इत्यादि बोलकर प्रतिमाके आगे आठ पुष्पोंको चढावे ॥

प्रतिमाग्रेऽष्टपुष्पीं क्षिपेत् । इत्यष्टमहाप्रातिहार्यस्थापनम् ।

वंशे जगत्पूज्यतमे प्रतीतं पृथग्विधं तीर्थकृतां यदत्र ।
तल्लांछनं संव्यवहारसिद्ध्यै बिंबे जिनस्येदमिहोल्लिखामि ॥ २१४ ॥

लांछने पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

शक्रेण सत्कृत्य सुभाक्तिकत्वात् त्रातुं नियुक्तो जिनशासनं यः ।
कामान दुहन्नीश जुषां यथास्वं प्रतिष्ठितस्तिष्ठतु सैष यक्षः ॥ २१५ ॥

यक्षोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

तद्वत्स्वपृथेष्वतिवत्सलत्वान्निवारयंती दुरितानि नित्यम् ।
यथोचितं शासनदेवतेति न्यस्तात्र यक्षी प्रतपत्वसह्यम् ॥ २१६ ॥

शासनदेवतोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

येनेह दर्शनविशुद्ध्यधिदैवतेन विश्वोपकाररसिकेन दिवीव गर्भम् ।
न्यूपं प्रमोदरसवर्षणपर्वणैव सर्वाणि सैष निहताद् दुरितानि नोऽर्हन् ॥ २१७ ॥

॥ २१३ ॥ " वंशे " इत्यादि बोलकर चिन्हके आगे पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २१४ ॥ " शा-क्रेण " इत्यादि बोलकर यक्षके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २१५ ॥ " तद्वत " इत्यादि बोलकर शासनदेवताके ऊपर पुष्पांजलि चढावे ॥ २१६ ॥ " येने " इत्यादि पांच श्लोक

आधीभिराधिभिरवाविपर्यीकृताया निर्गत्य मातुरुदराज्जनयन् मुदं यः ।
लोकोत्तराणि बुभुजेत्र सुखान्यजस्रं श्रेयांसि स जयतु न सदायम् ॥ २१८ ॥

समयाधिगमास्तमोहतंद्रे स्वयमुद्बुध्य झटित्यपास्तसंगम् ।
प्रशमैकरसो चरत्तपो यः स जिनोयं हरतां भवज्वरं नः॥ २१९ ॥

यः सम्यक्त्वरमावगाढदृगुपष्टंभात्समं वेदिता
द्रष्टा विश्वमुपेक्षितासपरमानंदोध्यतिष्ठद्विरम् ।
स्फूर्जत्तीर्थकरत्वनामसुकृतोद्रेकादनुगाणतीं
दिव्यां सभ्यसमीहितार्थकथनीं नस्तत् स्फुरत्वेष नः ॥ २२० ॥

योष्टादशशीलसहस्रसंयुक्तश्चतुरशीतिगुणलक्षैः ।
परिणम्य कृत्स्नकर्मच्युतोष्ट भजते गुणान् सचेहास्ताम् ॥ २२१ ॥

एतत्पंचकं पठित्वा कल्याणपंचकस्थापनाभिव्यक्तये प्रतिमायां पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

इति सिद्धामरसाक्षाज्जीवन् मुक्तिश्रियं स्वसात्कृत्य ।
भजतो जगतो पत्युः कंकणमिह मोक्षयाम्येषः ॥ २२२ ॥

बोलकर पांचकल्याणोंके प्रगट करनेकेलिये प्रतिमाके आगे पुष्पांजलि चढावे ॥ २१७ से २२१ ॥ " इति " इत्यादि श्लोक तथा " ओं " इत्यादि बोलकर प्रतिमाके आगे पुष्प क्षेपण

ओं "सत्तक्खरसक्कारं अरहंताणं णमोत्ति भावेण । जो कुणइ अणण्णमणो सो गच्छइ उत्तमं ठाणं" ॥ कंकणमोक्षणं । ॐ "केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासियण्णाणो । णव केवलल्द्धुग्गमसुजणियपरमप्पववएसो" असहायणाणदंसणसहिओ इदि केवली हु जोएण। जुत्तोत्ति सजोगिजिणो अणाइणिहणारिसे उत्तो" ॥ इत्येषोऽर्हत्साक्षादत्रावतीर्णो विश्वं पात्विति स्वाहा। प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । अर्हद्देवसाक्षात्करणविधानम् । ओं "खवियघणघाइकम्मा चउतीसातिसयपंचकल्लाणा । अट्ठवरपाडिहेरा अरहंता मंगलं मज्झ" भूयासुरिति स्वाहा ॥ परमोत्सवेन महार्घमवतारयेत् ।

सिद्धश्रुतचारित्रर्षिशांतिभक्तिभिरन्विताः । केवलज्ञानकल्याणक्रियां कुर्वंतु याजकाः ॥२२३॥

इति केवलज्ञानकल्याणकस्थापनविधानम् ।

न्यस्यनिर्वाणकल्याणं सूत्रोक्तविधिना ततः। सिद्धश्रुतचरित्रर्षिशिवशांतीन् स्तुवंतु ते॥२२४॥

इति निर्वाणकल्याणस्थापनम् ।

करे ॥ २२२ ॥ यह अर्हंत प्रभुका साक्षात्करण हुआ । "ओं" इत्यादि स्वाहातक बोलकर बहुत उत्सवके साथ महार्घ चढावे ॥ इसप्रकार प्रतिष्ठा करनेवाले सिद्ध श्रुत चारित्र ऋषि शांति भक्तियों सहित केवलज्ञानकल्याणकी क्रिया करें । । २२३ ॥ इसतरह केवलज्ञानकल्याणकी स्थापना विधि हुई ॥ उसके बाद वे इंद्र शास्त्रकथित विधिसे निर्वाण कल्याणका स्थापन करके सिद्ध श्रुत चारित्र ऋषि शिव शांति स्तुतिका पाठ करें ॥२२४॥ जिसतरह

तथा सामान्यतोविंबे गुणाद्यारोप्यमर्हताम् । यथास्वं च पृथक्कल्यं स्वर्गावतरणादिकम् २२५

अप्यंगुष्ठमितामनेन विधिना जैनीं प्रतिष्ठाप्य ये
शास्त्रोक्तां प्रतिमां भजंति विधिवन्नित्याभिषेकादिभिः ।
तेऽर्हद्भक्तिदृढानुरंजितधियो भुक्त्वा शिवाधर-
श्रामण्योभ्युदयावलीरनुभवंत्यात्यंतिकीं निर्वृतिम् ॥ २२६ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि जिनप्रतिष्ठाविधानीयो नाम चतुर्थोध्याय: ॥ ४ ॥

स्वर्गसे अवतार लेना आदि क्रियायें हुई हैं उसीतरह अर्हतके प्रतिबिंबमें गुणादिकी स्थापना करनी चाहिये ॥ २२५ ॥ इसतरह निर्वाण कल्याणकी स्थापनाका विधान हुआ । जो अंगुष्ठप्रमाण शास्त्रोक्त जिन प्रतिमाको भी इसी पूर्वकथित विधिसे प्रतिष्ठित करके हमेशा अभिषेकादि विधिसे पूजते हैं वे मुमुक्षु इस लोकमें उत्कृष्ट भोगोंको भोगकर बादमें अनंतसुखरूप मोक्षको पाते हैं ॥ २२६ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें अर्हतप्रतिष्ठाकी विधिको कहनेवाला चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

शश्वच्चेतयते यदुत्सवमिमं ध्यायंति यद्योगिनो
येन प्राणिति विश्वमिंद्रनिकरा यस्मै नमस्कुर्वते ।
वैचित्री जगतो यतोस्ति पदवी यस्यांतरप्रत्ययो
मुक्तिर्यत्र लयस्तनोतु जगतां शांतिं परं ब्रह्म तत् ॥ ३ ॥

अनेन जिनाग्रे शांतिधारा प्रकल्प्येत्थं बलिं दद्यात् । ओं अर्हद्भ्यो नमः सिद्धेभ्यो नमः सूरिभ्यो नमः पाठकेभ्यो नमः सर्वसाधुभ्यो नमः । अतीतानागतवर्तमानत्रिकालगोचरानंतद्रव्यगुणपर्यायात्मकवस्तुपरिच्छेदकसम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानचारित्राद्यनेकगुणगणाधारपंचपरमेष्ठिभ्यो नमः । ओं पुण्याहं २ प्रीयंतां २ ऋषभादि महति महावीर वर्धमानपर्यंतपरमतीर्थंकरदेवान् तत्समयपालिन्योऽप्रतिहतचक्रचक्रेश्वरीप्रभृतिचतुर्विंशतिशासनदेवताः गोमुखयक्षप्रभृतिचतुर्विंशतियक्षा आदित्यचंद्रमंगलबुधबृहस्पतिशुक्रशनिराहुकेतुप्रभृत्यष्टाशीतिग्रहाः वासुकिशंखपालककर्कोटपद्मकुलिकानंततक्षकमहापद्मजयविजयनागाः देवनागयक्षगंधर्वब्रह्मराक्षसभूतव्यंतरप्रभृतिभूताश्च सर्वेप्येते जिनशासनवत्सलाः

कर परब्रह्मका मनमें ध्यान करे ॥ २ ॥ यह देवताविसर्जनकी विधि हुई । "शश्व" इत्यादि बोलकर जिनदेवके आगे शांतिधारा छोड़के इसप्रकार पूजन करे ॥ ३ ॥ "ओं अर्ह" इत्यादि बोलकर पुष्प क्षेपण करे । इसमें राजा प्रजा कुटुंब आदि सब जीवोंके कल्याण होनेका चिंतवन किया जाता है । इसीको पुण्याहवाचन भी कहते हैं "ये सामग्री" इत्यादिसे अर्हंतसे

ऋष्यार्यिकाश्रावकश्राविकायष्टृयाजकराजमंत्रिपुरोहितसामंतारक्षिकप्रभृतिसमस्तलोकसमूहस्य शांतिवृद्धिपुष्टितुष्टिक्षेमकल्याणस्वायुरारोग्यप्रदा भवंतु । सर्वसौख्यप्रदाश्च संतु । देशे राष्ट्रे पुरे च सर्वदैव चौरारिमारीतिदुर्भिक्षावग्रहविघ्नौघदुष्टग्रहभूतशाकिनीप्रभृत्यशेषानिष्टानि प्रलयं प्रयांतु, राजा विजयी भवतु प्रजासौख्यं भवतु, राजप्रभृतिसमस्तलोकाः सततं जिनधर्मवत्सलाः पूजादानव्रतशीलमहामहोत्सवप्रभृतिपूद्यता भवंतु, चिरकालं नंदंतु । यत्र स्थिता भव्यप्राणिनः संसारसागरं लीलयोत्तीर्यानुपमं सिद्धिसौख्यमनंतकालमनुभवंति तच्चाशेषप्राणिगणशरणभूतं जिनशासनं नंदत्विति स्वाहा ।

ये सामग्रीविशेषदृढिमभरहृतात्क्षिप्तदुर्वारवैरि-
व्रातप्रेष्यरपताकासततपरिचितज्ञानसाम्राज्यलीलाः ।
भूतार्थोच्छेदकंदव्यवहरणघटोद्भिन्नपृक्तोक्तियुक्ति-
क्षिप्ताप्तं मन्यमाना जगदतिपुनते ते जिनाः पांतु विश्वम् ॥ ४ ॥
स्फूर्जच्छलश्युदर्चिर्भरमासितदशासाकृतैनःपतंगाः
स्वांगाकाराक्षरैकक्षणस्मरनिराकारसाकारचित्काः ।
व्योम्नो विश्वैकधाम्नः कृततिलकरुचः प्रष्टमात्मंभरीणां
व्यंजंतः स्वं सदान्याज्जिनसपर्यजुषाः संतु सिद्धाः शिवाय ॥ ५ ॥

कल्याण होनेका चिंतवन है ॥ ४ ॥ "स्फूर्ज" इत्यादि बोलकर सिद्धोंसे कल्याण प्रार्थना॥५॥

भ्राजिष्णुशक्तिविभवा भवसिंधुसेतुसर्वज्ञशासनविभासनवद्धकक्षाः ।
याः पूजयंति विविधाद्भुतसिद्धिकामास्ताश्चाष्टविघ्नमवंतु जयादिदेव्यः ॥ १६ ॥
शक्रादेशात्तीर्थकृद्देवमातॄर्याः सेवंते स्वस्वयोग्यैर्नियोगैः ।
ताः सर्वज्ञाराधनातत्पराणां संत्वष्टापि श्रेयसे श्र्यादिदेव्यः ॥ १७ ॥
अन्येपि दौवारिकलोकपालग्रहोरगानाहृतयक्षमुख्याः ।
देवा यथास्वं प्रतिपत्तिहृष्टा निघ्नंतु विघ्नान् जिनभाक्तिकानाम् ॥ १८ ॥
तद्द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभः प्रदेशः संतन्यतां प्रतपतु प्रततं स कालः ।
भावः स नंदतु सदा यदनुग्रहेण प्रस्तौति तत्त्वरुचिमाप्तगवी नरस्य ॥ १९ ॥
किं बहुना ।
शांतिः स तनुतां समस्तजगति संगत्वतां धार्मिकैः
श्रेयःश्री परिवर्द्धतां नयधुराधुर्यो धरित्रीपतिः ।

योंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १५ ॥ " भ्राजिष्णु " इत्यादि बोलकर जया आदि आठ देवियोंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १६ ॥ " शक्रा " इत्यादि बोलकर श्री आदि आठ देवियोंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १७ ॥ " अन्येपि " इत्यादि बोलकर इनके सिवाय अन्य देवताओंसे प्रार्थना ॥ १८ ॥ " तद्द्रव्य " इत्यादि बोलकर द्रव्य क्षेत्र काल भावोंके शुभ मिलनेकी प्रार्थना ॥ १९ ॥ बहुत कहनेसे क्या, सब जगतमें शांति रहे, धर्मात्माओंकी संगति मिले, कल्याण करनेवाली लक्ष्मी

सद्विद्यारसमुद्गिरंतु कवयो नामाप्यघः स्यात्तु मा
प्रार्थ्यं वा कियदेक एव शिवकृद्धर्मो जयत्वर्हताम् ॥ २० ॥

एतेत्मार्थपरा शक्राः छत्रचामरशालिनीम् । भृंगारहस्ता मुक्तांबुधारापूतपुरो धराम् ॥२१॥
जिनार्चामनुयांतोग्रे प्रनृत्यत्कलशांगनाः । महान् तूर्यस्वनैर्भव्यजयकोलाहलोल्वणैः ॥ २२ ॥
पूरयंतो दिशः सप्तधान्यपुष्पाक्षतादिभिः । कल्पयंतो बलिं शांत्यै त्रिःपरीयुर्जिनालयम् २३

इति बलिविधानम् ।

अथाचार्योऽभिषेक्तव्यः फलपुष्पाक्षतद्युतः । जिनगंधांबुकुंभेन यष्ट्रे दद्यात्तदाशिषम् ॥२४॥

तद्यथा ।

आयुस्तन्वंतु तुष्टिं विदधतु विधुनंत्वापदो घ्नंतु विघ्नान्
कुर्वंत्वारोग्यमुर्वीं वलयाविलासितां कीर्तिवल्लीं सृजंतु ।

बढे, न्यायमार्गपर चलनेवाला राजा हो, कविजन उत्तम विद्यारसको प्रगट करें, पापका नाम भी न रहे, अन्य विशेष प्रार्थना क्या करें संसारमें एक मोक्षको दाता जैनधर्मकी ही जय हो ॥ २० ॥ आत्मकल्याण करनेमें लीन, छत्र चमर लिये हुए, स्वच्छ जलसे भरी झारीको हाथमें लिए हुए, जिनमूर्तिके आगे नृत्य करते हुए इंद्र, सात तरहके धान्य पुष्प अक्षत आदि पूजा द्रव्यसे पूजा करते हुए जिनमंदिरकी तीन परिकमा दें ॥ २१।२२।२३ ॥ यह बलिविधान हुआ । उसके बाद प्रतिष्ठाचार्य गंधोदक अक्षत पुष्प फल दीप धूपसे प्रतिष्ठाविधि करनेवाले

धर्मं संवर्धयंतु श्रियमभिरमयंत्वर्पयंत्विष्टकामान्
कैवल्यश्रीकटाक्षानपि जिनचरणाः संजयंतु सदा वै ॥ २५ ॥
आज्ञैश्वर्यमकार्यकार्यविचयैः संतानवृद्धिर्जयः
सौभाग्यं धनधान्यवृद्धिरभयं निःशेषशत्रुक्षयः ।
पांडित्यं कविता परार्थपरता कार्तज्ञमोजस्विता
मानित्वं विनयो जयश्च भवतादर्हत्प्रसादेन वः ॥ २६ ॥
कांताः कांतिकलानुरागमधुराः पुण्यास्त्रिवर्गोद्धुरा
भृत्याः स्वाम्यनुरक्तिशक्तिरुचिरा श्च्योतन्मदाः कुंजराः ।
वाहास्तर्जितशक्रसूर्यतुरगाः शौर्योद्धताः पत्तयो
भूयासुर्भवतां जिनेंद्रचरणांभोजप्रसादात्सदा ॥ २७ ॥
गांभीर्यं मौदार्यमजर्यमार्यशौर्यं सशौंडीर्यमवार्यवीर्यम् ।
धैर्यं विपद्यार्जवमार्यभक्तिः संपद्यतां श्रीजिनपूजनाद्वः ॥ २८ ॥

इंद्रको आशीर्वाद दे ॥ २४ ॥ वह ऐसे है कि " आयु " इत्यादि ग्यारह आशीर्वाचक श्लोक पढकर यज्ञके शिरपर अक्षत आदिका क्षेपण करे ॥ २५ से ३५ ॥ यह आशीर्वाद विधि हुई । उसके बाद यज्ञा " यशोचितं " इत्यादि बोलकर जनेऊ आदिक यज्ञदीक्षाके

भवतु भवतामर्हद्भक्त्या सदा मुदितं मनो
ग्रहमुपचिता चौरौचित्यं मदासेन परस्परः ।
प्रणयिविवशैः स्वैसंवौसौद्यागयमीहितं
स्थितिरपि चित्ते प्रज्ञापराधपराहतिः ॥ २९ ॥
दृक्संशुद्धिरतोन्यतोस्तु भवतामर्हत्प्रतिष्ठाविधे
जातु क्वापि कथंचिदीपदपि मा शीलं व्रतं म्लायतु ।
दूरादेव शिरस्यधीरमरयो बध्नंतु देवांजलिं
प्रेम्णा सद्गुणसंपदा च सुहृदः श्लिष्यंतु पुष्णंतु च ॥ ३० ॥
यष्टृणां याजकानां प्रतिनुतिकृतामभ्यनुज्ञायकानां
भूयस्यांतःपुरस्य क्षितिपतनुभुवां मंत्रिसेनापतीनाम् ।
सामंतानां पुरोधः पुरविषयवनादिस्थवर्णाश्रमाणां
सर्वेषामस्तु शांत्यै सततमयमिह स्थापितो विश्वनाथः ॥ ३१ ॥
विचित्रैः स्वैर्द्रव्यं प्रतिसमयमुच्चाद्विपदपि
स्वरूपादुल्लोलैर्जलमिव मनागप्यविचलम् ।

जिन्होंको गुरु (आचार्य) के चरण कमलोंके आगे रखकर नमस्कार करे। यह यज्ञदीक्षा

अनेहो माहात्म्याहितनवनवीभावमखिलं
भणिण्वाणाः स्पष्टं युगपदिह ते पांतु जिनपाः ॥ ३२ ॥
संभुज्यार्थिभिः संविभज्य च यथाविध्येवमेवाथवा
निर्विण्णास्तृणवद्विसृज्य कमलां स्वं स्वं स्वयं केऽपि ये ।
संवेद्यामलकेवलाचलचिदानंदे सदैवासते
ते सिद्धाः प्रथयंतु वः प्रति शिवश्रीसद्विलासान् सदा ॥ ३३ ॥
ज्ञात्वा श्रद्धाय तत्त्वं भजति समरसास्वादमानान्यनीहा-
वृत्त्या प्राणानुसर्पन्मरुदनु च कचानष्टमे ब्रह्मरंध्रे ।
भ्रश्यत्यज्ञाय मोहो मृतिमयति मनः केवलं चापि माया-
च्छून्यध्यानेन येषां प्रमदभरमिमे योगिनस्तन्वतां वः ॥ ३४ ॥
नार्पत्यान् विस्मयांतर्हितपतनरुजो दत्तशंपान्वितन्वन्
निःश्रेणीकृत्य भोगं वलयितपृथुतन्मूलमाद्राहितांघ्रि ।
श्रीकुंडद्रंगगृह्यावनितरुशिखरा द्यौवतीर्णः स्ववर्ण-
रूपासंगं संगमस्य व्यथितबहुमहाः वीरनाथः स वोऽव्यात् ॥ ३५ ॥

विसर्जनकी विधि हुई ॥ ३६ ॥ उसके बाद गुरुकी आज्ञासे शांति पाठ करके कार्यको

एता आशिषः पठित्वा यष्टुः शिरस्यक्षतान् क्षिपेत् । इत्याशीर्वादविधानम् ।

यज्ञोचितं व्रतविशेषकृतो ह्यतिष्ठन् यष्टा प्रतींद्रसहितः स्वयमे पुरावत् ।
एतानि तानि भगवज्जिनयज्ञदीक्षाचिन्हान्यथैष विसृजामि गुरोः पदाग्रे ॥ ३६ ॥

एतत्पठित्वा यज्ञोपवीतादियज्ञदीक्षाचिन्हानि गुरुपादमूले संन्यस्य नमस्येत् । इति यज्ञदीक्षाविसर्जनम् । ततो गुर्वनुज्ञया शांतिभक्त्या निष्ठापयेत् । अथ जिनप्रतिष्ठानिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं । शेषं पूर्ववत् । ततश्चैशान्यदिशमष्टदलकमलमालिख्य चैत्याभिमुखमेतत्पठित्वा पंचागं प्रणामादिक्पालेभ्यो निजनिजमंत्रपूतयज्ञांगशेषेण सर्वशः पूजां दत्वा जिनगंधोदकतीर्थोदककलशैः सर्वशांतयेम्भः संस्रावयेत् ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाथ शास्त्रोक्तं न कृतं मया तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनप्रभोः ॥ ३७॥

ततश्च क्षमापणाविधिमिममनुतिष्ठेत् ।

समाप्त करे । वह ऐसे है कि–" अथ जिन " इत्यादि " करोम्यहं " तक बोलकर समाप्ति विधि करे । उसके बाद समाधि भक्ति करे । उसके बाद ईशानदिशामें आठ पत्रोंवाला कमल बनाकर प्रतिमाके सामने " ज्ञानतो " इत्यादि श्लोक पढकर पंचांग प्रणाम करे । फिर पूजाकी बची हुई सामग्री सबको चढानेकेलिये देकर कलशोंसे जलधारा सब विघ्नोंकी शांतिके लिये चढावे । " ज्ञानतो " इत्यादिका अर्थ–हे जिनेंद्र मैंने जानकर अथवा अज्ञानसे शास्त्रकथितरीतिसे जो क्रिया नहीं की है वह सब आपके प्रसादसे समाप्त ही हो

चतुर्विधमहासंघं संतर्प्याहारभेषजैः । योग्योपकरणं दत्वा यष्टा संपूजयेत्स्वयम् ॥ ३८ ॥
अत्र ये द्रष्टुमायाता प्रतिष्ठाव्यापृताश्च ये । तांबूलगंधपुष्पाद्यैस्तान् संमान्य विसर्जयेत् ॥ ३९ ॥
प्रतिष्ठाचार्यमानम्य तस्यात्मानं समर्प्य च । वस्त्राभरणाद्यैश्च संपूज्य क्षमयेत्ततः ॥ ४० ॥
संमान्य सूत्रधारादीन् स्वर्णवस्त्रान्नभूषणैः । गांधर्वनर्तकादींश्च यथार्हं तत्समर्पयेत् ॥ ४१ ॥
सार्वकालिकपूजार्थं भूसुवर्णार्पणादिकम् । वित्तानुसारतो दद्यात्पूजोपकरणानि च ॥ ४२ ॥

इति क्षमापना ।

॥३७॥ उसके बाद क्षमा करानेकी विधि करे । वह इस तरह है–प्रतिष्ठा करानेवाला यजमान जिनकल्याणक महोत्सवके बाद आहार औषध दानसे मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका–इन चारों संघोंको संतुष्ट करके और उनके योग्य धर्मसाधनके उपकरण (शास्त्र वगैरः) देकर आप उनकी पूजा करे ॥ ३८ ॥ उसके बाद जो प्रतिष्ठा देखनेकेलिये आये हों अथवा प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करानेके अभिप्रायसे आये हों उन सबको पान सुपारी फूलोंकी माला आदिसे सत्कार करके जानेको कहे ॥ ३९ ॥ उसके बाद प्रतिष्ठाचार्यको नमस्कार कर उसको कुछ भेंट देकर कपड़े और आभूषण आदिसे संमानकर क्षमा करावे ॥ ४० ॥ प्रतिष्ठाके सहायक तथा गंधर्व व नृत्यकरनेवालोंको वस्त्र अन्न आभूषण और कुछ धन योग्यताके अनुसार दे ॥ ४१ ॥ उसके बाद जिनप्रतिमाकी हमेशा पूजा होनेके लिये जमीन रुपया या कुछ जायदाद आमदनीके अनुसार दे कि जिसमें मंदिर पूजा हमेशा होती रहे और पूजाके उपकरण (वर्तन आदिक)

इत्यर्हत्प्रतिमान्यासविधिर्व्यासेन वर्णितः । तादृक्सामग्र्यभावेसौ मध्यवर्त्यपि कल्पितः ४३

तद्यथा ।

कृत्वा पुराकर्म कृतमंडपादिप्रतिष्ठितिः । मंत्रैरेवार्चयित्वा च मंडलान्यखिलान्यपि ॥ ४४ ॥
प्रतिष्ठेयां निरूप्यार्चां प्रयुक्तसकलक्रियः। संस्कृत्याकरशुद्ध्याथ वेदीपीठे निवेशयेत् ॥४५॥
कृत्वा कल्याणसंस्कारमालामंत्रादिरोहणम् । दत्वा तिलकमंत्राधिवासना संप्रकाशने ॥४६॥
सन्नेत्रोन्मीलने कृत्वा कृत्वा चाभिषवादिकम्। संक्षेपेणाथ शक्तिश्चेद्द्विभक्तः स्थापयेत्प्रभुम् ४७
तत्रैकमेव सज्जायाञ्चर्चयेद्यागमंडलम् । द्वास्थानंतरमत्रैव यजेच्च श्र्यादिदेवताः ॥ ४८ ॥

वनवाके दे ॥ ४२ ॥ यह क्षमावनीकी विधि समाप्त हुई ॥ इसप्रकार अर्हतकी प्रतिमाकी स्थापना विधि विस्तारसे वर्णन की गई है । यदि उतनी सामग्री न हो तो मध्यमरीतिसे भी स्थापना होसकती है ॥४३॥ वह इसतरह है । मंडपादि वनवाकर मंडलादिकी रचना कर उन सबको केवल मंत्रोंसे ही पूजकर प्रतिष्ठा होनेवाली जिन प्रतिमाको आकर शुद्धि आदि कही गई विधिसे संस्कारित करके वेदीके सिंहासन पर विराजमान करे ॥ ४४ । ४५ । ४६ ॥ फिर पांच कल्याण संस्कारमालारोपण तिलक अभिषेकादि करे ॥ यह मध्यमरीति है । जिसकी थोड़ी शक्ति हो वह दो वार भोजनकी प्रतिज्ञा कर प्रभुकी स्थापना करे ॥ ४७ ॥ उसके वाद एक यागमंडलकी पूजा करे फिर द्वारपाल और श्री आदि देवताओंकी पूजा करके मंडपके वाहर शुद्ध स्थानमें ऊंचे आसनपर मूर्तिको विराजमान करके अभिषेक करे ।

ततो मंडपशालैकोदेशेर्चाया सुसंस्कृते । कुर्यादाकरशुद्धिं तां शेषं मध्यवदाचरेत् ॥ ४९ ॥

इति मध्यमसंक्षिप्तप्रतिष्ठानुष्ठानविधानम् ।

प्रासादस्य ध्वजं चिन्हं तेनासौ शोभते यतः । शुभप्रदश्च सर्वेषां तस्मात्तमधिरोपयेत् ॥ ५० ॥
हस्तत्रिभागविस्तीर्णैरर्धहस्तायतैर्दृढैः । वस्त्रोत्तमसुसंश्लिष्टैर्ध्वजं निर्मापयेच्छुभम् ॥ ५१ ॥
सितं रक्तं सितं पीतं सितं कृष्णं पुनः पुनः । यावत्प्रासाददीर्घत्वं तावत्संघट्टयेत् क्रमात् ५२
चंद्रार्धचंद्रमुक्तास्रक्किंकिणीतारकादिभिः । नाना सद्रूपयुग्मैश्च चित्रैः पत्रैर्विचित्रयेत् ॥ ५३॥
अधश्छत्रत्रयं मूर्धस्तस्याधः पद्मवाहनम् । तस्याधः कलशं पूर्णं पार्श्वयोः स्वास्तिकं लिखेत् ५४
दीपदंडौ लिखेत्स्वस्ति शिखायाः पार्श्वयोस्तथा । पार्श्वयोरातपत्रस्य श्वेतचामरयुग्मकम् ॥५५॥

और वाकी क्रियाओंको अर्थात् क्षमावनी आदिको पूर्वकथित रीतिसे करे ॥ ४८ । ४९ ॥ यह मध्यम और संक्षेपरीतिसे प्रतिष्ठाकी विधि कही गई है ॥ उसके वाद जिन मंदिरके शिखरपर धुजाको चढावे उससे मंदिरकी शोभा होती है और सबको कल्याण देता है ॥ ५० ॥ बारह अंगुल लंबी और आठ अंगुल चौड़ी मजबूत उत्तम कपड़ेकी धुजा वनवावे ॥ ५१ ॥ धुजाका कपड़ा सफेद लाल सफेद पीला सफेद काला फिर सी क्रमसे रंगवाला तयार करावे ॥ ५२ ॥ धुजामें चंद्रमा माला घंटरियां तारे इत्यादि अनेक चिन्ह वनाके चित्रित करे ॥ ५३ ॥ कलश सातिया दीपदंड छत्र चमर धर्मचक्र लिखकर धुजाके ऊपर जिनविंबका आकार बनावे। उसमें एक छत्र लगावे । उस धुजामें

मूर्धाधो धवलच्छत्रे ध्वजे वा यक्षमालिखेत् । श्यामं चतुर्भुजं हस्तयुग्मेन रचितांजलिम् ५६
पराभ्यां दधतं मूर्ध्नि धर्मचक्रमृजुस्थितम् । जिनबिंबोर्ध्वमूर्धाने ह्येकछत्रसमान्वितम् ॥ ५७ ॥
दीपदंडादिसंयुक्तं नानालंकरणान्वितम् । हस्तिपृष्टसमारूढं सर्वज्ञाख्यामिमं लिखेत् ॥ ५८ ॥
अशोकासनानियासचंपकाम्रकदंबकाः । पूगवंशादयोन्येपि दंडस्य भवभूरुहाः ॥ ५९ ॥
सादायायाममानार्धं त्रिभागं वा चतुर्थकम् । ध्वजदंडस्य मानं तद्यथाशोभं प्रकल्पयेत् ॥६०॥
प्रासादस्योर्ध्वतुर्यांशे वेदिका वेदिकस्थितम् । आधारं धनदंडस्य यथोक्तं परिकल्पयेत्॥६१॥
अथ मंडलमभ्यर्च्य संक्षेपाद् ध्वजदेवता । प्रतिमाध्यानादिसिद्धमंत्रेणाष्टोत्तरं शतम् ॥ ६२ ॥
स्वधिवास्य ध्वजं स्तुत्वा तन्मंत्रेण घृतादिभिः । अशोकाश्वत्थवत्राद्यदर्भमालाभिवेष्टितम् ६३
ध्वजदंडं समभ्यर्च्य ध्यात्वा रत्नत्रयात्मकम् ।तच्चूलिकां तथैवाभिषिच्य धीशक्तिरूपिणीं६४
संचिंत्य मंडपपुरो गर्ते शाल्यादिपूरिते । पूजिते दधिदूर्वाद्यैस्तदूर्ध्वं स्थापयेद् दृढम् ॥ ६५॥

अशोक चंपा आम कदंब सुपारी वंश आदिके वृक्ष चिन्हित करे ॥ ५४ से ५९ ॥ धजाके दंडेका प्रमाण शोभाके अनुसार होना चाहिये ॥ ६० वह प्रमाण मंदिरकी ऊंचाईसे चौथाई हो तो अच्छा है । और वेदीके ऊपर भी धुजा चढाना चाहिये ॥ ६१ ॥ उसके बाद धुजाके मंडल और प्रतिमाकी स्तुतिकरके अनादिमंत्र (णमोकार मंत्र)को एकसौ आठवार जपकर धुजाको दंडमें लगाके " ओं नमो " इत्यादि ध्वजारोपणमंत्रको बोल शुभ लग्नमें शिखरमें

मंत्रमुच्चार्य तं दर्पणप्रतिबिंबितयक्षं तज्जलैरभिषिंच्य गंधादिभिश्चार्चयित्वा मुखवस्त्रं दत्वा नयनोन्मीलनं सुमुहूर्ते कुर्यात् । इति ध्वजदेवताप्रतिष्ठाविधानम् ।

एवं कृत्वा ध्वजारोहं पुण्यं प्राप्याद्भुतं कृती । भुक्त्वा तथादिसुभगः श्रेयोनिर्वृतिमश्नुते ॥७८॥

इति ध्वजारोपणविधानम् ।

प्रासादप्रतिमे अनेन विधिना ये कारयित्वार्हतां

भक्त्यानिह्नुतशक्तयो विदधते नित्याभिषेकादिकान् ।

वेदीके नीचे पूर्व दिशामें धुजाको रख उसमें चिन्हित यक्ष देवको इसप्रकार प्रतिष्ठित करे। "ओं" इत्यादि बोलकर आवाहन स्थापन सन्निधीकरण करे । उसके बाद सर्वौषधीसे मिलेहुए जलाशयके जलसे भरे कलशोंको आगे रख अमृतादि पूर्व कथितमंत्रसे उस जलको मंत्रितकर धुजाके आगे लिखे हुए पत्तेको रख चंदन अक्षत पुष्पोंसे " ओं ह्रीं " इत्यादि मंत्र बोलता हुआ दर्पणमें स्थित यक्षके आकारकी पूजा शुभ मुहूर्तमें करे । यह धुजाकी प्रतिष्ठाविधि कही गई है ॥ इस रीतिसे धुजारोहण करता हुआ बुद्धिमान पुरुष महान पुण्यका उपार्जन करके तथा पुण्यफल भोगके मोक्षसुखको पाता है ॥ ७८ ॥ यह धुजा चढानेकी विधि पूर्ण हुई । मोक्षके इच्छुक जो भव्यजीव अर्हंत जिनका मंदिर और प्रतिमाको तयार कराके अपनी

पूजाज्ञा विभवाधिपत्यमहिमोदग्राः शिवाशाधरा–
स्ते भुक्त्वा पदवीर्भजंति परमानंदैकसांद्रं पदम् ॥ ७९ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि अभिषेकादिविधानीयो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

शक्तिको न छिपाकर भक्तिसहित प्रतिदिन अभिषेक पूजा करते हैं वे उत्तम भोगोंको भोगकर परमानंद स्वरूप मोक्ष पदको पाते हैं ॥ ७९ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित प्रतिष्ठासारोद्धारमें अभिषेका विधिको कहनेवाला पांचवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥



अथ सिद्धप्रतिमादिप्रतिष्ठाविधानान्यभिधास्यामः—

आचार्यो मंडपे रम्ये सद्वेद्यां चूर्णसत्तमैः । स्वस्वमंडलमालिख्य संपूज्य तिलकद्रवैः ॥ १ ॥
हेमादिपात्रे हेमादिलेखन्या यंत्रमुद्धृतम् । तन्मध्ये न्यस्य जात्यादिपुष्पैरष्टोत्तरं शतम् ॥ २ ॥
स्वस्वमंत्रेण संजप्य निविश्योत्तरमंडपे । वेद्यास्नपनपीठेर्चां धूलीकुंभेन पूर्ववत् ॥ ३ ॥
स्नपयित्वा मंगलादिद्रव्यसंदर्भगर्भितैः । तीर्थांबुसंभृतैः कुंभैर्मु . ? पल्लवैः ॥ ४ ॥
दधिदूर्वाक्षतकुशस्रक्चित्रैर्मंत्रसंस्कृतैः . प्रापय्याकरशुद्धिं प्राक् यंत्रस्योपरि विष्टरे ॥ ५ ॥
..........कीर्त्य तस्यामारोप्य तद्गुणान् । आवाहनादिकं कृत्वा तां युंज्यात्तन्मयीं स्मरन् ॥

अब सिद्ध आदिकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठाविधिको कहते हैं । प्रतिष्ठाचार्य सुंदर मंडपकी सुंदर वेदीमें उत्तम चूर्णसे अपने २ मांडले लिखकर पूजे । फिर घिसे हुए चंदन या कुंकुसे सोनें आदिके पात्रमें सोनें आदिकी सलाईसे यंत्र लिखकर उसमें एकसौ आठ चमेलीके पुष्पोंको रख अपने २ मंत्रसे मंत्रित करे । फिर उत्तर मंडपमें वेदीके अभिषेकके सिंहासनपर प्रतिमाको रख जलादिसे अभिषेक पहलेकी तरह करे । ॥ १ । २ । ३ । ४ । ५ ॥ उसके बाद उस प्रतिमामें उसके गुणोंका स्थापनकर तन्मयी स्मरण करता हुआ आवाहना-

तिलकेन सुलग्नेधिवास्य व्यक्तास्यलोचनं । ततोऽभिषिंच्य चाभ्यर्चेत्ततः कुर्यात् क्रियाधिकम्

ततो विशेषः ।

स्नानादिविधिमाधाय सिद्धचक्रं यथागमम् । उद्धृत्य वेदिकापीठे न्यस्य श्रीचंदनादिभिः ॥८॥
संपूज्य सिद्धमात्मानं ध्यायन्नष्टोत्तरं शतम् । जातीपुष्पैर्जपेन्मूलमंत्रेण ज्ञानमुद्रया ॥ ९ ॥

ओंकाराधो श्रिभागी वलयनन्यस्तमूर्द्धाग्निमद्दं
ह्रीं पिंडात्मादितौनाहतममृतपृपत्स्यंदिनालं लिखित्वा ।
अस्यौसेत्यौ नयो युक् सकलशशिवृतं तद्बहिस्तद्बहिस्तु
संज्ञानालोकचर्या वलतप इति चानादिसंसिद्धमंत्रः ॥ १० ॥
तद्बाथ स्वरोयं वसुदलकमलं चांतरे तद्दलाना–
मों ह्रीं श्रीं हँ मुखांत्यानिलवियदमुखा शेषवर्गैश्च युक्तम् ।

दि करे ॥ ६ ॥ फिर शुभ लग्नमें तिलकाविधि मुखोद्घाटन नेत्रोन्मीलन आदि पूर्वोक्त क्रिया करके अभिषेकपूर्वक पूजा करे ॥ ७ ॥ यहां एक क्रिया विशेष है कि स्नानादिविधि करके शास्त्रके अनुसार सिद्धचक्रको चंदनादिसे वेदीपर लिखकर पूजके सिद्ध आत्माका ध्यान करता हुआ ज्ञानमुद्रासे एकसौ आठ चमेलीके फूलोंसे जाप करे ॥ ८ । ९ ॥ " ओंकारा " इत्यादि तीन श्लोकोंमें कही गई विधिके अनुसार सिद्धचक्र बनावे ॥ १० । ११ । १२ ॥

विन्यस्यानाहतंते शिरसि विरहितं चांतरालेषु चाद्यं
पंचानां सतायनां वलयतु कुशलः क्रौंरुधामा ययांत्रिः ॥ ११ ॥
पत्रांतमंत्रपूर्वांजिनवितनुचतुस्तीर्थसमेधचक्र–
पादू वाक्यैर्ण...ततनुमयानाहतग्रंथनाद्यैः ।
स्वस्वस्थानास्थिताशेषमुपरि दधतं सप्तकं वारकं वा
रवर्णा ब्रह्माणं च स नग्रहमवानिष्टतं सत् करि रं करोति ॥ १२ ॥

इति बृहत्सिद्धचक्रोद्धरणम् ।

साम्री सार्धदुशीर्ष अ.. ।
पेतोद्यसारं विनयमुखगुरूद्दिष्टवर्णाविशिष्टं
मंत्रेद्धां सैद्धचक्रं विदधतु सुधियोध्यात्ममध्यात्मबुद्धाम् ॥ १३ ॥

ओं ह्रीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा इदं वारि गंधं.................. ।
ऊर्ध्वाधो रयुतं सबिंदु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं
वर्गापूरितदिग्गतांबुजदलं तत्संधितत्त्वान्वितम् ।

यह बृहत्सिद्धचक्रका उद्धार हुआ । “साम्री” इत्यादि श्लोकमें कथित रीतिसे लघु सिद्धचक्र बनाके “ओं” इत्यादि बोलकर जलादि चढावे ॥ १३ ॥ “ऊर्ध्वाधो” इत्यादिमें

अंतःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकारसंवेष्टित
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकंठीरवः ॥ १४ ॥

इति लघुसिद्धचक्रोद्धरणं । अत्रायं मंत्रः । ओं अर्हं अ सि आ उ सा ह्रीं अर्हं स्वाहा । शेषं पूर्ववत् ।

ततोभिषिच्य तीर्थांभःकुंभैः प्रागुक्तकल्पनैः । गुणैरिवार्चामष्टाभिः सिद्धस्तोत्रं पुरो हितम् ॥ १५ ॥
पठित्वा तद्गुणारोपप्रभृत्याप्याद्य तां स्मरन् । साक्षात्सिद्धं तिलकयेच्चंदनेन सहेंदुना ॥ १६ ॥

आकारशुद्धिं कृत्वा यस्यानुग्रहेत्यादि सिद्धस्तोत्रमधीत्य प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । ततः—

आकारैर्वियुतं युतं च युगपन्निध्यातृबोद्धृस्फुटं
विश्वं स्वाभिनिवेशसौम्यमसमानंदैकसंवेदनं ।
स्वस्वादक्षसमक्षमाक्षयतमस्थामावगाहोत्तमं
भात्यत्रागुरुलघ्वनंतगुणमप्यष्टात्मसिद्धं वपुः ॥ १७ ॥

कहे गये सिद्धचक्रका उद्धार करके "ओं" इत्यादि मंत्रका जाप करे ॥ १४ ॥ यह लघु-सिद्धचक्रका उद्धार हुआ । शेष विधि पहलेकी तरह करे । फिर सिद्ध प्रतिमाका जलसे भरे हुए घड़ोंसे अभिषेक कर आठ गुणोंको स्मरण करता हुआ तिलक विधि करे ॥ १५।१६ ॥ आकारशुद्धि करके "यस्यानुग्रह" इत्यादि पूर्व कथित सिद्ध स्तोत्रका पाठ करके प्रति-

एतत्पठन्नर्चां समंतात् परामृशेत्। गुणारोपणम् । ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरिमेष्टिभ्यो नमः अत्रागच्छ । ओं ह्रीं तिष्ठ २ ठ ठ स्वाहा । ओंह्रीं मम सन्निहितो भव २ वषट् स्वाहा । आ-वाहनादिमंत्रः । अ सि आ उ सा सिद्धाधिपतये नमः । तिलकमंत्रः ।
ततश्च मुखवस्त्रादिविधीन् कृत्वावहेत् क्रियाम् । सिद्धभक्त्यैवमाचार्याद्यर्चान्यासेपि कल्पयेत्॥

ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये मुखवस्त्रं ददामीति स्वाहा । मुखवस्त्रमंत्र । ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये मुखवस्त्रमपनयामीति स्वाहा । श्रीमुखोद्घाटनमंत्रः । ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये प्रबुध्यस्व २ ध्यातृजनमनांसि पुनीहि पुनीहीति स्वाहा । नेत्रोन्मीलनमंत्रः । ओं ह्रीं सिद्धाधिपतिं तीर्थोदकेनाभिषिंचामीति स्वाहा । तीर्थोदकस्नपनम् । ओं ह्रीं पुंड्रेक्षुप्रमुखरसैरभिषिंचामीति स्वाहा । रसस्नपनं । ओं ह्रीं हैयंगवीनघृतेन स्नपयामीति स्वाहा । घृतस्नपनम् । ओं ह्रीं धारोष्णगव्यक्षीरपूरेणाभिषुणोमीति स्वाहा । दुग्धस्नपनं । ओं ह्रीं जगन्मंगलेन दध्ना स्नपयामीति स्वाहा । दधिस्नपनं । ओंह्रीं दिव्यप्रभूतसुरभिकषायद्रव्यकल्ककाथचूर्णैरुपस्करोमीति स्वाहा । उद्वर्तनादिविधानम् । ओं ह्रीं विचित्रपवित्रमनोरमफलैर-

---

माके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करे। उसके बाद " आकारे " इत्यादि बोलकर प्रतिमाका चारोंतरफसे स्पर्श करे ॥ १७ ॥ " ओं ह्रीं " इत्यादि मंत्रसे आवाहनादि करे " असि " इत्यादि तिलकमंत्रसे तिलकदान विधि करे । उसके बाद मुखोद्घाटन नेत्रोन्मीलन सिद्ध-भक्ति आदि विधी करे । इसीतरह आचार्य आदिकी भी प्रतिमास्थापनामें पूर्वकथित

वतारयामीति स्वाहा । फलावतारणं । ओं परमसुरभिद्रव्यसंदर्भपारिमलगर्भतीर्थाबुसंपूर्णसुवर्णकुमाष्टकतो-
येन परिषेचयामीति स्वाहा । कलशाष्टकाभिषेकः । एष मंत्र आकरशुद्ध्यभिषेकेऽपि योज्यः । ओं ह्रीं
परमसौमनस्यनिबंधनगंधोदकपूरेणाप्लावयामीति स्वाहा । गंधोदकस्नपनमंत्रः । ओं ह्रीं असि आ
उ सा सिद्धाधिपतिं लोकोत्तरनीरधाराभिः परिचरामीति स्वाहा । तीर्थोदकमंत्रः । एवं हरिचंदनेप्यूह्यं
मंत्राष्टकम् । हरिचंदन इव कलमक्षतपुंजाष्टकमंदारप्रमुखकुसुमदामार्द्धि विविधसान्नायान्नसारदशामुख-
प्रदीपितदीपकाष्टकसुगंधद्रव्यसंयोजनादिशेषसंभूतध्वजधूपघटाष्टकबंधुरगंधर्वणरसप्रीणितबहिरंतःकरणम-
हाफलस्तवकाष्टकजलादियज्ञां दूर्वादर्भदधिसिद्धार्थादिमंगमद्रव्याविनिर्तितमहार्घसत्कारोपचारैः परिचरा-
मीति स्वाहा । जलाद्यर्नीतसपर्याविधानम् । ततः क्रियां कृत्वाभिमतप्रार्थनार्थमिदं पठित्वा पुष्पांजलिं
प्रकल्पयेत् ।

आयुर्द्राघयतु व्रतं द्रढयतु व्याधीन् व्यपोहत्वयं
श्रेयांसि प्रगुणीकरोतु वितनोत्वासिंधु शुभ्रं यशः ।
शत्रून् शातयतु श्रियोभिरमयत्वश्रांतमुन्मुद्रय-
त्वानंदं भजतां प्रतिष्ठित इह श्रीसिद्धनाथः सताम् ॥ १९ ॥

क्रिया करे ॥ १८ ॥ "ओं" इत्यादि मंत्र बोलकर मुखोद्घाटन नेत्रोन्मीलन जलादि भि-
षेक पूजा आदि क्रिया करनी चाहिये । उसके वाद इष्ट प्रार्थनाके लिये "आयु" इत्यादि

ततश्च पूर्ववद्विसर्जनादिकमनुतिष्ठेत् इति सिद्धप्रतिष्ठाविधानम् । अथाचार्यप्रतिष्ठाविधानम् ।
गणभृद्वलयं वेद्यामभ्यर्च्य स्नपयेच्च तम्। पंचाचारान् स्मरेत्पंच कलशांश्चतुरः पुनः ॥ २० ॥
चतुरोत्रानुयोगांश्च..................नित्रीणि तन्मनाः ॥ २१ ॥
ततो महर्षिस्तवनं पठित्वा चतुरो विधीन्। कृत्वा तिलकयेत्साक्षात्सूर्यादीन् प्रतिमां स्मरन्॥२२
मुखवस्त्रादिकर्माणि विधाय च विधिं ततः। क्रियाकांडोदितां कृत्वा यथावद्विधिमाचरेत् ॥२३॥

अथ गणधरवलयमनुशिष्यते । पूर्वं षट्कोणचक्रे क्ष्मावीजाक्षरं लिखेत् तदुपरि अर्हं इति न्यसेत् तस्य दक्षिणतो वामतश्च ह्रीं विन्यसेत् पीठादधः श्रीं न्यसेत् । ततः ओं अ सि आ उ सा स्वाहेत्यनेन श्रीकारस्य दक्षिणतः प्रभृत्युत्तरतो यावत्प्रादक्षिण्येन वेष्टयेत् । ततः कोणेषु षट्स्वपि मध्ये अप्रतिचक्रे फडिति सव्येन स्थापयेत् । तथा कोणांतरालेषु विचक्राय स्वाहेति षड्बीजानि झौंकारोत्तराणि अपसव्ये

श्लोक पढकर पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ १९ ॥ फिर पूर्वकी रीतिसे विसर्जन आदि करे। यह सिद्धप्रतिमाकी प्रतिष्ठा विधि कही गई ॥ अब आचार्यप्रतिष्ठाकी विधि कहते हैं। बुद्धिमान् गणधर वलय (चक्र) को वेदीमें स्थापन कर पांच कलशोंसे स्नपन करे और दर्शनाचार आदि पांच आचारोंको स्मरण करता हुआ उस चक्रकी पूजा करे ॥ २० ॥ फिर चार अनुयोगोंका चिंतवन करके महर्षिस्तवन पढके तिलकादि क्रिया करे ॥ २१।२२ २३ ॥

विन्यसेत् । तद्बहिर्वलयं कृत्वाष्टसु पत्रेषु णमो जिणाणं, णमो, ओहिजिणाणं णमो कुट्ठबुद्धीणं, णमो बीजबुद्धीणं, णमो पदाणुसारीणं—इत्यष्टौ पदानि क्रमेण लिखेत् । ततस्तद्बहिस्तद्वत् षोडशपत्रेषु णमो संभिण्णसोदाराणं, णमो पत्तेयबुद्धाणं, णमो सयं बुद्धाणं, णमो बोहियबुद्धाणं, णमो उजुमदीणं, णमो विउलमदीणं, णमो दसपुव्वीणं, णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं, णमो विउव्वणइड्ढिपत्ताणं, णमो विज्जाहराणं, णमो चारणाणं, णमो समणाणं, णमो आगासगामीणं, णमो आसिविसाणं, णमो दिट्ठिविसाणं—इति षोडशपदानि विलिखेत् । ततस्तद्बहिस्तद्वच्चतुर्विंशतिपत्रेषु णमो घोरगुणपरक्कमाणं, णमो घोरगुणवंभयारीणं, णमो आमोसहिपत्ताणं, णमो खेल्लोसहिपत्ताणं, णमो जल्लोसहिपत्ताणं, णमो विडौसहिपत्ताणं, णमो सव्वोसहिपत्ताणं, णमो मणवलीणं, णमो वचिवलीणं, णमो कायवलीणं, णमो खीरसवीणं, णमो सप्पिसवीणं, णमो महुरसवीणं, णमो अमियसवीणं, णमो अक्खीणमहाणसाणं, णमो वड्ढमाणाणं, णमो लोए सव सिद्धायदणाणं, णमो भयवदो महदि महावीर वड्ढमाण बुद्धिरिसीणं । चतुर्विंशतिपदान्यालिख्य ह्रींकारमात्रया त्रिगुणं वेष्टयित्वा क्रौंकारेण निरुद्धय बहिः पृथ्वीमंडलं ह्रीं श्रीं अर्हं असि आउसा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा । अनेन मध्यपूजां विदध्यात् । णमो अरहंताणं णमो जिणाणं इत्यादि ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आउसा अप्रतिचक्रे झ्रौं

" अथ " इत्यादिसे कहे गये गणधरचक्रको बनावे । और पूर्वकी तरह आकरशुद्धि आदि क्रिया करके " निर्वेद " इत्यादि महर्षि स्तवन पढता हुआ आचार्य आदिकी प्रतिमाको

क्ष्रौं स्वाहा। एतेष्ट चत्वारः। अथ पूर्ववदाकरशुद्ध्यादिकं कृत्वा निर्वेदेत्यादि महर्षिस्तवनं पठन्नर्चां समंतात्परामृष्य गुणारोपणं कुर्यात्। ओं ह्रूं णमो आइरियाणं आचार्यपरमेष्ठिन्नत्र एहि २ संवौषट् ओं ह्रूं तिष्ठ २ ठ २, ओं ह्रूं मम सन्निहितो भव २ वषट्। तथा ओं ह्रीं णमो उवज्झायाणं उपाध्यायपरमेष्ठिन्नत्र एहि २ संवौषट् ओं ह्रौं तिष्ठ २ ठ ठ, ओं ह्रौं सन्निहितो भव भव वषट्। तथा ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं साधुपरमेष्ठिन्नत्र एहि २ संवौषट्। ओं ह्रः तिष्ठ २ ठ ठ, ओं ह्रः सन्निहितो भव २ वषट्। इत्याचार्यादीनामावाहनादिमंत्राः। ततश्च ओं ह्रूं णमो आइरियाणं धर्माचाराधिपतये नमः इत्यादिमंत्रैः सिद्धप्रतिमावत्तिलकादिविधीन् विदध्यात्। एवमुपाध्यायसाधुपरमेष्ठिनोरपि कल्पः कल्पयेत्॥ इत्याचार्यादिप्रतिष्ठाविधानम्। अथ श्रुतदेवतादिप्रतिष्ठाविधानम्।

वेद्यां सारस्वतं यंत्रं विलिख्य तस्य शोधनम्। अनुयोगैरिवाचार्यैश्चतुर्भिस्तीर्थवार्घटैः॥२४
यंत्रेर्चां न्यस्य गां स्तुत्वा कृत्वा कर्मचतुष्टयम्।........त यन्मूलमंत्रेणान्यं विधिं सृजेत्२५

स्पर्श करके उसमें गुणोंका स्थापन करे। फिर "ओं ह्रं" इत्यादि बोलकर आचार्य उपाध्याय सर्वसाधुका आवाहन आदि करे। उसके बाद "ओं ह्रं" इत्यादि मंत्रसे सिद्ध प्रतिमाकी तरह तिलक आदि विधि करे। यह आचार्य आदि धर्मगुरुकी प्रतिष्ठाविधि हुई॥ अब सरस्वतीकी प्रतिष्ठा विधि करते हैं। प्रतिष्ठाचार्य वेदीमें सारस्वत यंत्र लिखकर उसको सामनेके दर्पणमें प्रतिबिंबित कर चार जलके घड़ोंसे अभिषेक करे। उस यंत्रमें सरस्वतीकी मूर्तिको रख स्तुतिपूर्वक पूजा करे तथा सरस्वतीमंत्रका जाप करे॥ ॥ २४। २५॥

अथ सारस्वतमंत्रमनुशिष्येत् । पूर्वे कर्णिकायां ह्रींकारमालिखेद्बाह्ये हंकारं सविसर्गसकारं च लिखित्वा ओं ह्रीं श्रीं वद २ वाग्वादिनि भगवति सरस्वति ह्रीं नमः इत्यनेन मूलमंत्रेण वेष्टयेत् । तद्बहिः पूर्वादिक्रमेण चतुर्षु ओं वाग्वादिन्यै नमः, ओं भगवत्यै नमः, ओं सरस्वत्यै नमः, ओं श्रुतदेव्यै नमः । इति चतुरारव्या लिखेत् । तद्बहिरष्टसु पत्रेषु ओं नंदायै नमः, ओ स्तंभिन्यै नमः इत्यादि चाष्टौ देवीर्लिखेत् । तद्बहिश्च षोडशपत्रेषु ओं रोहिण्यै नमः इत्यादि मंत्रैः षोडश विद्यादेवीः स्थापयेत् । ततः पूर्वाद्यष्टदिक्षु इंद्राय स्वाहेत्यादिमंत्रैरष्टौ दिक्पालान् विन्यसेत् । पूर्वेशानदिशोश्चांतराले ओं अधोनागेभ्यः स्वाहेति नागान् विन्यसेत् । पश्चिमदिक्पालस्योपरिष्टाच्च ओं ऊर्ध्वब्रह्मणे नमः इति परमब्रह्म प्रतिष्ठयेत् । इंद्रादवश्च ओं ह्रीं मयूरवाहिन्यै नमः इति वागधिदेवतां स्थापयेत् । ततस्त्रिर्मायामात्रया क्रौंकारेण निरुध्य तदावेष्ट्य बहिः पृथ्वीमंडलं विलिखेत् इति । अथ ओं ह्रीं श्रुतदेव्यः कलशस्नपनं करोमीति स्वाहा । इत्यनेन कलशानभिमंत्र्याकरं शोधयेत् । ततो बोधेनेत्यादि श्रुतदेवीस्तवनं पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

वारह अंग गिज्जा दंसणतिलया चरित्तवच्छहरा ।
चोदसपुव्वहराणं ठावे दव्वाय सुयदेवा ॥ २६ ॥

अब सरस्वतीयंत्रका उद्धार दिखलाते हैं । पहले कर्णिका (बीचके भाग) में " ह्रीं " लिखे उसके बाहर " हं सः " लिखकर " ओं ह्रीं श्रीं वद २ वाग्वादिनि भग-

आचारं शिरसि सूत्रकृत् वक्रातु कंठिका । स्थानेन समवायागव्याख्याप्रज्ञप्तिदोलताम् ॥२७
वाग्देवतां ज्ञातृकथोपासकाध्ययनस्तनीं । अंतकृद्दशसन्नाभिमनुत्तरदशां गतः ॥ २८ ॥
सुनितंबां सुजघनां प्रश्नव्याकरणश्रुतात । विपाकसूत्रदृग्वादचरणांवरां ? ॥ २९ ॥
सम्यक्त्वतिलकां पूर्वचतुर्दश विभूषणाम् । तावत्प्रकीर्णकोदीर्णचारुपत्रांकुरश्रियम् ॥ ३० ॥
आप्तदृष्टप्रवाहौघद्रव्यभावाधिदेवताम् । परब्रह्म पथादृशां स्याद्युक्ति भुक्तिमुक्तिदाम् ॥३१॥
सर्वदर्शनपाखंडदेवदैत्यं खगार्चिता । जगन्मातरमुद्धर्तुं जगदत्रावतारयेत् ॥ ३२ ॥

वति सरस्वति ह्रीं नमः ” इस सरस्वतीमंत्रको चारों तरफ वेढै । उसके वाहर पूर्व आदि दिशाके क्रमसे चार पत्तोंपर “ ओं वाग्वादिन्यै नमः ” इत्यादि चारोंको लिखे । उसके वाहर आठों पत्तोंपर “ ओं नंदायै नमः ” इत्यादि आठ देवियोंको लिखे । उसके सोलह पत्तोंपर “ ओं रोहिण्यै नमः ” इत्यादि सोलह विद्यादेवियोंको लिखे । उसके वाहर पूर्व आदि आठ दिशाओंमें “ इंद्राय स्वाहा ” इत्यादि मंत्रोंसे आठ दिक्पालोंको स्थापन करे । पूर्व और ईशान्य दिशाओंके वीचमें “ ओं अधो नागेभ्यः स्वाहा ” लिखकर नागकुमारकी स्थापना करे । पश्चिमदिशाके दिक्पालके ऊपर “ ओं ऊर्ध्वब्रह्मणे नमः ” ऐसा लिखकर परमब्रह्मकी स्थापना करे । इंद्रके नीचे “ ओं ह्रीं मयूरवाहिन्यै नमः ” लिखकर सरस्वती देवीकी स्थापना करे । उसके वाद तीनवार ईकारसे तथा क्रों से वेढकर वाहर पृथ्वीमंडल लिखे ॥ फिर “ ओं ह्रीं ” इत्यादि मंत्रसे कलशोंको मंत्रितकर

ओं अर्हन्मुखकमलवासिनि पापानि क्षयं कर श्रुतज्वालासहस्रप्रज्वालिते सरस्वति मम पापं हन २ क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः क्षीरवरधवले अमृतसंभवे वं वं हुं स्वाहा । एतत्पठन् प्रतिमायां अंग-प्रत्यंगपरामर्शं कुर्यात् । गुणारोपणं । ओं ह्रीं श्रीं अत्र एहि २ संवौषट्, ओं ह्रीं तिष्ठ २ ठ ठ, ओं ह्रीं सन्निहितो भव वषट् । आवाहनादिमंत्रः । ततो मूलमंत्रेण तिलकं दत्वा पूर्ववदाधिवासनाविधीन् विदध्यात् ।

शुभे शिलादावुत्कीर्य श्रुतस्कंधमपि न्यसेत् । ब्राह्मीन्यासविधानेन श्रुतस्कंधमिह स्तुयात् ३३
सुलेखकेन संलिख्य परमागमपुस्तकम् । ब्राह्मीं वा श्रुतपंचम्यां सुलग्ने वा प्रतिष्ठयेत् ३४

आकरशुद्धि करे । उसके बाद " बोधेन " इत्यादि श्रुतदेवीका स्तवन पढकर प्रतिमाके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करे । उसके बाद " बारह " इत्यादि सात श्लोक तथा " ओं अर्हं " इत्यादि मंत्र बोलकर सरस्वतीप्रतिमाके अंगोंका स्पर्श करें ॥ २६ से ३२ तक ॥ फिर गुणोंका स्थापन करे । उसके बाद " ओं " इत्यादि मंत्र बोलकर आवाहन आदि करे । उसके बाद मूलमंत्रसे तिलक देकर पूर्वरीतिके अनुसार अधिवासना आदि क्रियाओंको करे । उत्तम शिला आदिमें सरस्वतीकी मूर्ति खुदवाकर स्थापना करके स्तुति करे ॥ ३३ ॥ अथवा परमागमके शास्त्रोंको अच्छे विद्वान् लेखकसे लिखवाकर श्रुतपंचमीके दिन शुभ लग्नमें सरस्वतीप्रतिष्ठा करे ॥ ३४ ॥

संवौषट् स्वाहेत्यादि दिक्कुमारीमंत्रानष्टौ तद्बहिर्वलयांतः, ओं ह्रीं क्रौं यक्षवैश्वानररक्षो नहृतपन्नगासुरकुमारसंविश्वविद्यमालिचमरवैरोचनमहाविद्यमारोविद्येश्वरपिंडभुगभिधानपंचदशतिथिदेवान् संस्थापयामि स्वाहेति तिथिदेवाः पंचदश तद्बहिर्वलयांतः, ओं ह्रीं क्रौं सूर्यसोमांगारकसौम्यगुरुभार्गवशनिराहुकेतून् संस्थापयामि स्वाहेति ग्रहदेवान्नव तद्बहिर्मंडलांतः, ओं ह्रीं क्रौं किंनरेंद्रकिंपुरुषेंद्रमहोरगेंद्रगंधर्वेंद्रयक्षेंद्रराक्षसेंद्रभूतेंद्रपिशाचेंद्रान् संस्थापयामि स्वाहेति विलिखेत् । एवंमंडलं वर्तयित्वा स्वस्वमंत्रैर्यक्षादिदेवान् जलगंधादिभिरभ्यर्च्य कलशाष्टकादिभिर्वेदीं भूपयेत् । अथ स्नपनमंडपे तां प्रतिमामानीय दर्भप्रस्तरे धान्यप्रस्तरे वा स्थापयित्वा क्रमेण स्नापयेत् । ततस्तत्रैव वेदिकायां नवकलशान् सर्वालंकारोपेतान् सर्वौषधिसंमिश्रशुद्धयंत्रमंत्रान्विततीर्थजलपरिपूर्णान् शालिप्रस्तरोपरि लिखितमायावीजां संलेख्य तत्पश्चिमभागे स्नपनपीठं स्थापयित्वा प्रक्षाल्यालंकृत्य तदुपरि भुवनाधिपतिं लिखित्वा अक्षतपुष्पदर्भान् विरचय्य तत्तत्प्रतिमां तत्र संस्थापयित्वा पंचोपचारविधिनाभ्यर्च्य वाहनाष्टकलशैर्मंत्रपूर्वकमभिषिच्य चतुर्नीराजनं कृत्वा पुष्पांजलिपूर्वकमेकादशमभिषेकं मध्यकलेशनामृतमंत्रेण कुर्यात् ।

तेजोमायादिकाख्यानं क्रियान्वितम् । तत्तत्पल्लवसंयुक्तं करोम्यंतपदं स्मरेत् ॥ ४९ ॥

इत्यादिमें कथित विधिसे पूजा करे । अमृतमंत्रसे यक्षप्रतिमाका अभिषेक करे । "तेजो" इत्यादि बोलकर "अथैव" इत्यादिसे कही हुई विधिसे स्थापना करे ॥ ४९ ॥ इसीप्रकार

अथैवमाकारशुद्धिं विधाय मूलवेद्यां नवधौतवस्त्रसदर्भाक्षतपुष्पं प्रस्तीर्य तत्र तत्प्रतिमां निवेश्याभ्यर्च्य कांडाग्रदूर्वाग्रेण प्रोक्षणं विधाय शांतिहोमं यक्षमंत्रेण कृत्वा पुण्याहं घोषयित्वा पूर्वोक्तविधिना सुमुहूर्ते तिलकं दद्यात् ततोऽधिमानादिविधिं विधाय वस्त्राभरणमाल्यादिभिरभ्यर्च्य विसर्जनादिकं कुर्यात् । ततः प्रभृति च तानि संपूजयेत् ।

एष एव च शेषाणां यक्षाणां स्थापनाविधिः । यक्षीणां च पितः·········भेदाश्रयौ भवेत ५०

क्षेत्रपालं कर्णिकायां मंत्रपत्रायुधादिभिः । सचूर्णवेद्यामालिख्य पत्रेष्वष्टसु संलिखेत् ॥५१॥

समंत्रान् दिक्पतीनिंद्रादधोभागानुपर्यपि । वरुणस्य लिखेत्सोमं मायोर्वीभ्यां च वेष्टयेत ५२

तत्पद्मं पूजयेद्गंधपुष्पधूपाक्षतादिभिः । अथ तत्प्रतिमां रात्रिमुषितां दर्भसंस्तरे ॥ ५३ ॥

तीर्थांबुस्नपितां तत्र निवेश्यारोप्य तद्गुणान् । आवाहनादि कृत्वा च सूत्रयुक्त्या प्रतिष्ठयेत् ५४

ओं ह्रां क्रौं घोरांधकारसप्रभमंडलगदाधारणव्यग्रोग्रचतुर्भुज अत्र क्षेत्रपालाय संवौषट् स्वाहेति कर्णिकायामालिख्य पूर्वादिदलेष्वष्टसु । ओं ह्रीं इंद्राय स्वाहेत्यादिक्रमेण दिक्पालान् संस्थाप्य इंद्राधः ओं ह्रीं नागेभ्यः स्वाहेति वरुणादूर्ध्वं च ओं ह्रीं सोमाय स्वाहेति विन्यस्य बहिर्मायामात्रया त्रिःपरिक्षिप्य क्रौंकारेण निरुध्य भूमंडलेन वेष्टयेदिति मंडलवर्तनम् ।

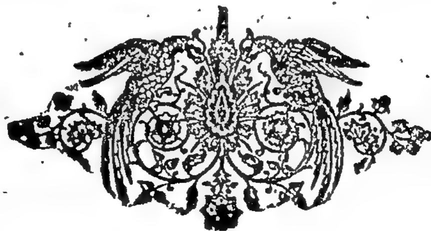
यक्षी क्षेत्रपाल वरुण आदिकी प्रतिष्ठा " एष " इत्यादि पांच श्लोकोंमें कथित रीतिसे

एनं सम्यगधीत्य ये गुरुमुखाद्बुध्वा तदर्थं क्रिया
निर्मास्यंति सुमेधसो बुधनताः प्राप्स्यंति ते निर्वृत्तिम् ॥ ६५ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि सिद्धादि-
प्रतिष्ठाविधानीयो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

विधिको कहनेवाले जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धार ग्रंथको मुझ " आशाधरने " कल्याण होनेकेलिये किया है। जो भव्यजीव गुरुके मुखसे इसको पढकर इसकी क्रियायें करेंगे वे बुद्धिमान देवोंसे पूजित हुए परंपरासे मोक्षको पायेंगे ॥ ६५ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प दूसरे नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें
सिद्ध आदिकी मूर्तिप्रतिष्ठाको कहनेवाला छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥



ग्रंथकर्तुः प्रशस्तिः ।

श्रीमानस्ति सपादलक्षविषयः शाकंभरीभूषण—
स्तत्र श्रीरतिधाम मंडलकरं नामास्ति दुर्गं महत् ।
श्रीरत्न्यामुदपादि तत्र विमलव्याघ्रेरवालान्वया—
च्छ्रीसल्लक्षणतो जिनेंद्रसमयश्रद्धालुराशाधरः ॥ १ ॥

सरस्वत्यामिवात्मानं सरस्वत्यामजीजनत् । यः पुत्रं छाहडं गुण्यं रंजितार्जुनभूपतिम् ॥२॥

व्याघ्रेरवालवरवंशसरोजहंसः काव्यामृतौघरसपानसुतृप्तगात्रः ।
सल्लक्षणस्य तनयो नयविश्वचक्षुराशाधरो विजयतां कलिकालिदासः ॥ ३ ॥

इत्युदयसेनमुनिना कविसुहृदा योभिनंदितः प्रीत्या ।
प्रज्ञापुंजोसीति च योभिमतो मदनकीर्तियतिपतिना ॥ ४ ॥

म्लेच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तक्षति—
त्रासाद्विंध्यनरेंद्रदोःपरिमलस्फूर्जत्त्रिवर्गौजसि ।
प्राप्तो मालवमंडले बहुपरीवारः पुरीमावसन्
यो धारामपठज्जिनप्रमितिवाक्शास्त्रे महावीरतः ॥ ५ ॥

आशाधरत्वं मयि विद्धि सिद्धं निसर्गसौन्दर्यमजर्यमार्य ।
सरस्वतीपुत्रतया यदेतदर्थे परं वाच्यमयं प्रपंचः ॥ ६ ॥

इत्युपश्लोकितो विद्वद्बिल्हणेन कवीशिना । श्रीविन्ध्यभूपतिमहासान्धिविग्रहिकेण यः ॥ ७ ॥

श्रीमदर्जुनभूपालराज्ये श्रावकसंकुले । जिनधर्मोदयार्थं यो नलकच्छपुरेऽवसत् ॥ ८ ॥

यो द्राग्व्याकरणाब्धिपारमनयच्छुश्रूषमाणान्न कान्
सत्तर्कं परमास्त्रमाप्य न यतः प्रत्यर्थिनः केऽक्षिपन् ।
चेरुः केऽस्खलितं न येन जिनवाग्दीपं पथि ग्राहिताः
पीत्वा काव्यसुधां यतश्च रसिकेष्वापुः प्रतिष्ठां न के ॥ ९ ॥

स्याद्वादविद्याविशदप्रसादः प्रमेयरत्नाकरनामधेयः ।
तर्कप्रबन्धो निरवद्यपद्यपीयूषपूरो वहति स्म यस्मात् ॥ १० ॥

सिद्ध्यङ्कं भरतेश्वराभ्युदयसत्काव्यं निबन्धोज्ज्वलं
यस्त्रैविद्यकवीन्द्रमोदनसहं स्वश्रेयसेऽरीरचत् ।
योऽर्हद्वाक्यरसं निबन्धरुचिरं शास्त्रं च धर्मामृतं
निर्माय न्यदधान्मुमुक्षुविदुषामानन्दसान्द्रे हृदि ॥ ११ ॥

आयुर्वेदविदामिष्टं व्यक्तुं वाग्भटसंहिताम् । अष्टाङ्गहृदयोद्योतं निबन्धमसृजच्च यः ॥ १२ ॥

यो मूलाराधनेष्टोपदेशादिषु निबंधनम् । व्यधत्तामरकोशे च क्रियाकलापमुज्जगौ ॥ १३ ॥
रौद्रटस्य व्यधात्काव्यालंकारस्य निबंधनम् । सहस्रनामस्तवनं सनिबंधं च योर्हताम् ।१४।
अर्हन्महाभिषेकार्चाविधिं मोहतमोरविम् । चक्रे नित्यमहोद्योतं स्नानशास्त्रं जिनेशिनाम् ॥१५॥
रत्नत्रयविधानस्य पूजामाहात्म्यवर्णनम् । रत्नत्रयविधानाख्यं शास्त्रं वितनुतेस्म यः ॥१६॥

प्राच्यानि संचर्च्य जिनप्रतिष्ठाशास्त्राणि दृष्ट्वा व्यवहारमैंद्रं ।
आम्नायविच्छेदतमश्छिदेयं ग्रंथः कृतस्तेन युगानुरूपः ॥ १८ ॥

खांडिल्यान्वयभूषणाल्हणसुतः सागारधर्मे रतो
वास्तव्यो नलकच्छचारुनगरे कर्ता परोपक्रियाम् ।
सर्वज्ञार्चनपात्रदानसमयोद्योतप्रतिष्ठाग्रणीः
पापात्साधुरकारयत्पुनरिमं कृत्वोपरोधं मुहुः ॥ १९ ॥
विक्रमवर्षसपंचाशीति द्वादशशतेष्वतीतेषु ।
आश्विनसितांत्यादिवसे साहसमल्लापराक्षस्य ॥ १९ ॥
श्रीदेवपालनृपतेः प्रमारकुलशेखरस्य सौराज्ये ।
नलकच्छपुरे सिद्धो ग्रंथोऽयं नेमिनाथचैत्यगृहे ॥ २० ॥

अनेकार्हप्रतिष्ठाप्रतिष्ठैः केल्हणादिभिः । सद्यः सूक्तानुरागेण पठित्वायं प्रचारितः ॥ २१ ॥

भव्यानिर्भरेन ।

यावत्त्रिलोक्यां जिनमंदिराणि तिष्ठन्ति शक्रादिभिरर्च्यमानाः ।
तावज्जिनाद्रिप्रतिमाप्रतिष्ठाः विधायिनोऽनेन विधापयंतु ॥ २२ ॥

किंच ।

नंद्यात्खंडिल्लवंशोत्थः केल्हणो न्यासवित्तरः ।
लिखितो येन पाठार्थमस्य प्रथमपुस्तकम् ॥ २३ ॥

इति प्रशस्तिः ।

इत्याशाधरविरचितो जिनयज्ञकल्पापरनामा प्रतिष्ठासारोद्धारः समाप्तः ।

अब ग्रंथकारकी प्रशस्ति कहते हैं—" श्रीमान् " इत्यादि श्लोकसे लेकर २३ तक पं० आशाधरका वंशवर्णन दिखलाया गया है ॥ १ से २३ ॥

इति पं० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाला प्रतिष्ठासारोद्धार समाप्त हुआ ॥

समाप्तोऽयं प्रतिष्ठापाठः ।

१ " प्रतिबोधं यथा जिनयज्ञकल्पमरीरचत् । त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्रं यो निबन्धालंकृतं व्यधात् ॥ १ ॥ यह श्लोक सागारधर्मामृतकी प्रशस्तिमें है ।

प्रतिष्ठासारोद्धारका परिशिष्ट ।



मत्यात्मावृतिहानिमूलविभवं लब्ध्यक्षराद्यागमग्रामोद्दामवपुः प्रकांडमुचिताचारादिशाखोच्चयम् ।
बाह्यश्रुत्युपशाखमुक्तिसुदलं सद्युक्तिपुष्पश्रुतस्कंधं स्वर्थफलाकुलं घनशमच्छायं भजेघच्छिदे ॥ १ ॥
पट्त्रिंशत्त्रिशतैरवग्रहमुखैः स्मृत्यादिभिः सोजसा मत्यै स्वावरणक्षयोपशमस्वस्वांतोत्थयात्मा यया ।
देशेनेहसि संकरव्यतिकरापोहेन वस्तूचिते योग्यं द्वादशधा बहुप्रभृतिभिर्विद्यात्पुरश्चारुदृक् ॥ २ ॥

एतद्द्वयं पठित्वा श्रुतस्कंधस्थापनार्थे पुस्तकोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

लोकालोकदृशः सदस्यसुकृतैरास्याद्यदर्थश्रुतं निर्यातं ग्रथितं गणेश्वरवृषेणांतर्मुहूर्तेन यत् ।
आरातीयमुनिप्रवाहपतितं यत्पुस्तकेष्वर्पितं तज्जैनेंद्रमिहार्पयामि विधिना यष्टुं श्रुतं शाश्वतम् ॥ ३ ॥

विधियज्ञप्रतिज्ञानाय पुस्तकोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

सर्पच्छीकरवारवारितपतद्दुर्घांधभृंगव्रजं निर्यत्या कनकाद्रिशृंगसवयोभृंगारनालाननात् ।
स्वर्गंगाद्युपनीतपूतसुरभिद्रव्याढ्यवार्धारया स्यात्कारजननीं जगद्विजयिनीं जैनीं यजे भारतीम् ॥४॥ जलं ।

---

१. यहांसे सरस्वतीदेवीकी पूजाका आरंभ है । इससे पहलेका " इंद्र " इत्यादि पाठ दूसरे अध्यायमें आगया है ।

अंतन्मानिवर्तिनी [illegible] [illegible] मानिनी [illegible] [illegible] [illegible] ।
स्याद्वादपुनर्गर्जिनी [illegible] श्रीनंदिन [illegible] ॥ ५ ॥ [illegible] ।
[illegible] ।
प्रत्याख्यानदानमयानपूर्ण [illegible] । [illegible] ॥ ६ ॥

[illegible] ।
मंदाराद्रिगुरुं नैः [illegible] ।
[illegible] ॥ ७ ॥ [illegible] ।
[illegible] ।
नानाग्रेननमानपुण्य [illegible] ॥ ८ ॥ [illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥ ९ ॥ [illegible] ।
[illegible] ।
नासाग्र [illegible] ॥ १० ॥ [illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] जिनोक्ति [illegible] ॥ ११ ॥ [illegible] ।

सांविघ्नप्रियधर्मभक्तिरसिका मेधाविनेयात्मनां कर्तुं सूरिवरैरनुग्रहमिमां सर्वज्ञवाक्पद्धतिम् ।
तां न्यस्तामिह पुस्तकेष्वधिकृतश्रीदेवतांगेषु वा सद्वस्त्रैः परिधापयामि विविधैः सद्बोधसंसिद्धये ॥ १२ ॥ वस्त्रं ।
गंधाढ्योदकधारया हृदयहृद्गंधैर्विशुद्धाक्षतै रोचिष्णुप्रसवैर्विचित्रचरुभिः स्फारस्फुरद्दीपकैः ।
गीर्वाणस्पृहणीयधूमविलसद्धूपैः सुधारुक्फलस्तोमैः स्वस्तिकपूर्वकैश्च रचितं श्रुत्यै ददेऽर्घं विभोः ॥ १३ ॥

पुष्पांजलिः । नमोऽस्तु श्रुतज्ञानभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् णमो अरहंताणमित्यादि ।

देवि श्रीचतुराननप्रभुमुखांभोजाधिवासोत्सवे ब्राह्मि ब्रह्मकलाविकाशिनि जगन्मातस्तमोनाशिनि ।
एतानस्खलितस्वभक्तिनटितानध्यास्य शश्वद्यशोविद्यायुर्वसुविक्रमैरुपचिनु ब्रह्मादियज्ञे धिनु ॥ १४ ॥

एतत्पठित्वा प्रणमेत् । इति श्रुतपूजाविधानम् ।

अथ गुरुपूजा[1] ।

सदा सम्यक्त्वार्के प्रतपति विधूतांधतमसं लसद्विश्वालोकं विलसति वितार्केकनयने ।
भजंते ये वृत्तामृतमपि जने संविभजते घटत्पुष्टिं तेषामिह गणभृतां भानुचरणाः ॥ १५ ॥

पादुकास्थापनम् ।

इमास्तिस्रो गुप्तीरिव शमयितुं कल्मषरजश्चरंती चिच्छक्तीरिव बहिरुतान्वेष्टुमहितान् ।
सुवर्णालूनालात्सुरभिवपुराघ्रानुपतिता लुठंतीरब्धाराः क्रमभुवि गुरूणां प्रणिदधे ॥ १६ ॥ जलधारा ।

---

१ अब गुरु पूजा कहते हैं ।

तपांसि कष्टान्यनिगूढवीर्यश्चरन् जगत्त्रैधमधश्चकार ।
यस्तन्नतार्चा भज कालि भर्मप्रभा मृगस्था मुशलासिहस्ता ॥ ४३ ॥

ओं ह्रीं कालि.... ... . ।

चक्रे धिकसाधुषु यः समाधिं तं सेवमाना शरमाधिरूढा ।
श्यामाधनुः खड्गफलास्त्रहस्ता बलिं महाकालि जुषस्व शांत्यै ॥ ४४ ॥

ओं ह्रीं महाकालि.. ।

तपस्विना संयमबाधवर्जं प्रतिवधतात्मवदापदो यः ।
गोधागता हेमरुगब्जहस्ता गौरि प्रमोदस्व तदर्चनाशैः ॥ ४५ ॥

ओं ह्रीं गौरि.. ।

तेने शिवश्रीसचिवाय योर्हत्, भक्तिं स्थिरां क्षायिकदर्शनाय ।
चक्रासिभ्रत्कूर्मगनीलमूर्ते गृहाण गांधारि तदंघ्रिगंधम् ॥ ४६ ॥

तथा " ओं ह्रीं " बोलकर कालीको अर्घ चढावे ॥ ४३॥ " चक्रेधिक " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर महाकालीको अर्घ चढावे ॥ ४४ ॥ " तपस्विना " इत्यादि तथा " ओं ह्रीं" बोलकर गौरीको अर्घ चढावे ॥४५॥ "तेने" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर गांधारीको अर्घ चढावे

ओं ह्रीं गांधारि.. ।

मत्सुरिभक्ति मनिर्वृता यो धैर्ये यते ज्वालिनि सन्त्विह त्वाम् ।
गुप्तां धनुः सेकमकुन्तकामुकाहृताङ्गुं गहिणाभिक्राम् ॥ ४७ ॥

ओं ह्रीं ज्वालामालिनि.. ।

शुद्धोपयोगैकफलथुनार्थे यो भक्तियन्त्यासकृद्गुरेषु ।
त्वं चिन्ततो मानवि कोकिकम्पनीलाक्षिटिकाप्रमाणचिन्ना ॥ ४८ ॥

ओं ह्रीं मानवि दिशांदिनि.. ।

यो स्पष्टदेवनिरोधगदैरुपत्रगन्नागमपन्नाखण्ड ।
त्वां सिकगापानदर्पयारीं यजेत्य वैरोटि यज्ञेभ्यनीत्राप् ॥ ४९ ॥

ओं ह्रीं वैरोटि.. ।

॥ ४६ ॥ " मत्सुरि " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" कहकर ज्वालामालिनीको अर्घ चढावे ॥४७॥ " शुद्धोप " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" कहकर मानवीको अर्घ चढावे ॥ ४८ ॥ " यो स्पष्ट " इत्यादि तथा " ओं ह्रीं " कहकर वैरोटीको अर्घ चढावे ॥४९॥ "पांची" इत्यादि तथा " ओं ह्रीं " बोलकर अच्युताको अर्घ चढावे ॥ ५० ॥ " मार्ग " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर

पोढौ नयी व्याधिवशोप्यवश्यं नावश्यकं यः समथाव्यपेक्षम् ।
धौतासिहस्तां हयगेच्युते त्वां हेमप्रभांतं प्रणतां प्रणौमि ॥ ५० ॥

ओं ह्रीं अच्युते.. ।

मार्गे वृपे निश्चलयन विनेयान् प्राभावयत्रः सुतपः श्रुताद्यैः ।
रक्ताहिगा तत्प्रणताप्रणामसुद्रांन्विता मानसि मेसि मान्या ॥ ५१ ॥

ओं ह्रीं मानसि.. ।

योधात्सधर्मस्वातित्रत्सलत्वं रक्ता महामानसि तत्प्रणांमे ।
रक्ता महाहंसगतेक्षसूत्रवरांकुशस्रक्सहितां यजे त्वाम् ॥ ५२ ॥

ओं ह्रीं महामानसि.. ।

सत्पूजावलिदानलालितमनाः स्फारस्फुरद्वत्सली–
भावावेशवशीकृताः कृतधियामिष्टाश्च पूर्णाहुतिम् ।
विद्यादेव्य इमां प्रतीच्छत जिनज्येष्ठाप्रतिष्ठांजसा
निष्ठा मुख्यमनोरथान फलवतः कर्तुं यतध्वं मम ॥ ५३ ॥

मानसीको अर्घ चढावे ॥ ५१ ॥ " योधात् " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर महामानसीको अर्घ चढावे ॥ ५२ ॥ " सत्पूजा " इत्यादि बोलकर सबको पूर्णाहुति दे ॥ ५३ ॥ " एवं

पुष्पांजलिः ।

एवं विद्यादेवतार्चनार्थे षोडशपात्राः प्रीणिताः संतु सर्वाः ।
निःसीमोद्यद्ज्ञानविज्ञानसंपाद्य मीत्युत्कर्ष नस्तथा पोषयंतु ॥ ५४ ॥

इष्टप्रार्थनाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् । इति विद्यादेवतार्चनविधानं । अथ चतुर्विंशतिदुन्दुभ्य-
जिनमातृविधानम् ।

धात्री गर्भगृहं हरिश्रियदिक्कन्यादिकाभिः संस्कृते
दिव्यं योगमहर्द्धिके किल निवासायास्य शक्ति परम् ।
उत्पन्नात्मभवायत्तो जिनवृषा निर्देवता निष्कला-
स्ताभ्ये जिनमातृकाः फलकलापस्वास्त्वतुर्विंशतिः ॥ ५५ ॥

जिनमातृपपुरस्पूजाविधानाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

विद्या " इत्यादि बोलकर इष्ट प्रार्थनाके लिये पुष्पांजलि चढावे ॥ ५४ ॥ इस प्रकार विद्यादेवियोंकी पूजाविधि हुई । अब चौवीस पत्रोंपर स्थित चौवीस जिनमाताओंकी पूजा करते हैं । " धात्री " इत्यादि श्लोक बोलकर जिनमाताओंकी पूजाके लिये पहलेकी तरह पूजाद्रव्यको समीप रखे ॥ ५५ ॥ " ओंना " इत्यादि बोलकर आवाहनादिपूर्वक प्रत्येक

अंबाः संशब्दये युष्मानायान सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् ॥५६॥

आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

साकेताधिपमन्वनूकतिलक—श्रीनाभिराजप्रिये
सद्वृत्ते पुरुदेवसंभवभवद्देवेन्द्रसेवोत्सवे ।
त्रैलोक्याग्रपितामहि स्तुतगुणे स्तुत्यैरपीशाभिदां
देवि श्रीमरुदेवि भावयमहं दृष्टिप्रसादेन मे ॥ ५७ ॥

ओं मरुदेव्यै इदं.. ।

मन्विक्ष्वाकुमहोनुबद्धदिनकृद्वंशस्फुरत्कोशला—
स्वामिश्रीजितशत्रुपार्थिवमनोरोलंबराजीविनि ।
विश्वस्वंधुजयमदा जितजिनाधीशोद्भवन्यक्कृत—
न्यक्षश्रीप्रसवस्मयैव विजये त्वानेनभिस्याजये ॥ ५८ ॥

ओं विजयसेनायै.. ।

पूजाकी प्रतिज्ञा करनेकेलिये पत्रोंमें पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ५६ ॥ "साकेता" इत्यादि तथा 'ओं मरुदेव्यै' इत्यादि बोलकर मरुदेवीको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥५७॥ "मन्विक्ष्वाकु" इत्यादि तथा 'ओं ह्रीं' बोलकर विजयसेनाको अर्घ चढावे ॥५८॥ "स्वावस्ति" इत्यादि

श्रावस्तिपुरेश्वर पुरुवंशज दृढराज हृदय नगनाम् ।
संभवजिनरत्नखानिं सुसिनि सुषेणे प्रत्नाशीषे त्वाम् ॥ ५९ ॥

ॐ सुषेणायै.................................. ।

साकेतवती भवनीविस्त्रालुरी त्वगंबरे निरताम् ।
अभिनंदनजिनजननी सिद्धार्थेनामि सिद्धार्थाम् ॥ ६० ॥

ॐ सिद्धार्थायै.............................. ।

नाभेयवंशतिलकाद्रिकिरणोद्यानायस्य मेघरथभूमिपतेः सुपत्नि ।
सौमानसत्सुमतेः सुमतेः सवित्रि त्वां मंगले सुकृतमंगलवर्णयामि ॥ ६१ ॥

ॐ सुमंगलायै.. ।

प्रनुकूल्य नक्रादिदोर्दर्पि कौशाम्बीपुर–प्रशासिनि धरणस्य स्वामिनिदारणस्य ।
भवदुरितमिति पद्मप्रभमार्तंड–सवितारणि सुसीमे त्वामसि श्रीरमीषे ॥६२॥

ॐ सुसीमायै.. ।

"ॐ ह्रीं" बोलकर सुषेणाको अर्घ चढ़ावे ॥५९॥ "साकेतवती" इत्यादि पढ़कर "ॐ ह्रीं" बोल-कर सिद्धार्थाको अर्घ चढ़ावे ॥६०॥ "नाभेय" इत्यादि पढ़कर "ॐ ह्रीं" बोलकर सुमंगलाको अर्घ चढ़ावे ॥ ६१ "प्रनुकूल" इत्यादि पढ़कर "ॐ ह्रीं बोलकर सुसीमाको अर्घ चढ़ावे ॥६२॥

इक्ष्वाकुमुख्यकाशीशसुमतिष्ठनृपभिरुाम् । त्वां यजे पृथिवीषेणे सुपार्श्वजिनमातरम् ६३

ओं वसुंधरायै.. ।

सूर्यान्वयं चंद्रपुराधिचंद्रं श्रिता महासेनमभेदवृत्त्या ।
चंद्रप्रभेशप्रभवप्रभावात् कस्य प्रतीक्षासि न लक्ष्मणेस्मिन् ॥ ६४ ॥

ओं लक्ष्मणायै.. ।

काकंद्यधीशे पुरुदेववंश्ये सुग्रीवराजे निरुपाधिरागाम् ।
त्वा पुष्पदंतप्रसवाभिरामे यजामि यज्ञे जय रामिकेस्मिन् ॥ ६५ ॥

ओं रामायै.. ।

त्वां राजभद्र पुरनृप वृषभान्वयदृढरथानुरागरथा ।
शीतलजिनाभिनंद्यं वंदे वंद्ये सतां सुनंदेत्र ॥ ६६ ॥

ओं सुनंदायै.. ।

" इक्ष्वाकु " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर वसुंधराको अर्घ चढावे ॥६३॥ " सूर्यान्वयं " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर लक्ष्मणाको अर्घ चढावे ॥ ६४ ॥ " काकंद्यधीशे " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर रामाको अर्घ चढावे॥६५॥ "त्वां राजभद्र" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर सुनंदाको अर्घ चढावे ॥ ६६ ॥ " प्राणप्रियां " इत्यादि तथा " ओं ह्रीं " बोलकर

मातापिता विष्णुरिति त्विषो: श्रेयांसनाथस्य जिनस्य विष्णो: ।
त्वां देवि वंदे गतशोकमन्ने श्रेयोजनन्याय जनस्य जन्म ॥ ६७ ॥
ओं विष्णुश्रियै... ।
यथाऽपि स्वाकुलितकर्मविनाशिनः श्रीवासुपूज्यवशान् ।
श्रीवासुपूज्यजननीं जगत्त्रयेनापि जयानि नाम् ॥ ६८ ॥
ओं जयायै... ।
कांता कांपिल्यनाथाकृत्यश्रीकृतवर्मणः । नय श्यामे नमामि त्वां जननीं विमलेशिनः ६९
ओं सुशर्मिश्रियै... ।
साकेतनाथकैस्वाकुसिंहसेन नपः सुधाम् । पूजयामि जयश्यामे नायनंतजिनांशकाम् ॥७०
ओं सुयशायै... ।
देवीं भानुमहाराजनाम्नो रत्नपुरेशिनः । कुलवंश्य धर्मजिनानीं स्तवीमि सुव्रते ॥ ७१ ॥

विष्णुश्रीको अर्घ चढावे ॥ ६७ ॥ "तथापि" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर जयाको अर्घ चढावे ॥ ६८ ॥ "कांता कांपिल्य" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुशर्मिश्रमाको अर्घ चढावे ॥ "साकेतनाथ" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुयशाको अर्घ चढावे ॥ ७० ॥ "देवीं भानु" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुव्रताको अर्घ चढावे ॥ ७१ ॥ "हस्तिनाग"

ओं ऐरण्यै.. ।

हस्तिनागनगरे कुरुवंशे विश्वसेननृपतेर्दयितायाः ।

शांतिकल्पतरुभोगभुवस्ते प्रार्चयामि चरणद्वयमैरे ॥ ७२ ॥

ओं कमलायै.. ।

कुरुकुलशशांकहास्तिनपुरपरिदृढशूरसेननृपकांताम् ।

श्रीकांते कुंथुजिनप्रसवित्रीं पूजयामि त्वाम् ॥ ७३ ॥

ओं सुमित्रायै.. ।

श्रीहास्तिसेनकुरुपस्य पत्नीं सुदर्शनाख्यस्य सुदर्शनस्य ।

मातः सवित्रीमरतीर्थकर्तुस्त्वां मित्रसेनेत्र महे महामि ॥ ७४ ॥

ओं प्रभावत्यै.. ।

मिथिलारक्षकेक्ष्वाकुप्रभुकुंभाग्रवल्लभाम् । प्रजापति यजे मल्लिजिने त्वां प्रजापतिं ॥ ७५ ॥

इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर कमलाको अर्घ चढावे ॥ ७२ ॥ "कुरुकुल" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुमित्राको अर्घ चढावे ॥ ७३ ॥ "श्रीहास्तिसेनः" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर प्रभावतीको अर्घ चढावे ॥७४॥ "मिथिलार" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर पद्मावती को अर्घ चढावे ॥ ७५ ॥

ॐ पद्मायै..

हरिवंशमुकुटमणि [illegible] सुचितम् ।
मुनिसुव्रतजिननननी बोधि सौख्यं पद्मावति नाम् ॥ ७६ ॥

ॐ वप्रायै..

मिथिलानाथ[illegible] ।
संपूजयामि नमिजिनजननीं वप्रां [illegible] ॥ ७७ ॥

ॐ शिवायै..

द्वारावती[illegible] ।
[illegible] शिवदेवि गते [illegible] नाम् ॥ ७८ ॥

ॐ वामायै..

काशीविषय[illegible] ।
पार्श्वप्रभु[illegible] पावनं नाम् ॥ ७९ ॥

“हरिवंश” इत्यादि तथा ॐ ह्रीं पढकर पद्माको अर्घ चढावे ॥ ७६ ॥ “मिथिला” इत्यादि तथा ॐ ह्रीं पढकर वप्राको अर्घ चढावे ॥ ७७ ॥ “द्वारावति” इत्यादि और ॐ ह्रीं पढकर शिवादेवीको अर्घ चढावे ॥ ७८ ॥ “काशीविषय” इत्यादि तथा ॐ ह्रीं

ओं देवदत्तायै... ।

स्वर्लक्ष्मीमदखंडिकुंडनगरश्रीकाममर्माविधो
नाथानूकाविशेषकस्य माहिषीं सिद्धार्थधात्रीपतेः ।
अंबां दुर्दमदुःषमासहचरद्धर्मश्रुतेः सन्मते-
र्यायाजिम प्रियकारिणि प्रियकरी त्वास्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे ॥ ८० ॥

ओं प्रियकारिण्यै इदं.. ॥

नाभेयाद्यर्हदंबाः स्वभिहितमरुदेव्यादयः कोशलादि
क्ष्माभृन्नाभ्यादिदिव्यो हृदयसरसिजे भासमानाःसमर्च्य ।
पूर्णार्घं प्राप्यमाणा निजतनुजगुणग्रामगाढानुरागैः
प्रत्याहृत्यांतरायान् प्रथयत जगतां यूयमुच्चैः प्रमोदम् ॥ ८१ ॥

इति पूर्णार्घम् ।

इत्येता जिनमातरः सुदृगनुस्यूताखिलश्रीघना—
श्लेषानंदनिदानपुण्यरचना चार्च्यश्चतुर्विंशतिः ।

बोलकर देवत्ताको अर्घ चढावे ॥ ७९ ॥ "स्वर्लक्ष्मी" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर प्रियकारिणीको अर्घ चढावे ॥ ८० ॥ "नाभेया" इत्यादि पढकर पूर्णार्घ चढावे ॥ ८१ ॥

मत्स्यादिमत्स्यजिनवकमलकमलपर्वस्मादि: मल्लनाथैः
मन्युदानपद्म निघाडितो नमिद्वियानन्तराम् ॥ ८२ ॥

[illegible] [illegible] ॥ [illegible] [illegible] ॥

नगाङ्कुशनीतुर्णि नपुर्क पुरुषानुभाज्ञ
स्वाङ्कस्वपद्माभिमानि कामधीजिनपादैस्तवान ।
कुञ्जानिस्तस्य नस्य पद्मविद्या सर्वान् कामकोद्य—
यशोभिक्तिणिनम्नीन मुसलनि द्वारिकां श्रेणी ॥ ८३ ॥
त्रिभुवनपतिना स्नापनानां स्वागतान् मनसुकृतां गु देवमनुतां च ।
सानिशिगतनियोगप्रकृतवंशकीन प्रत्ययनिपुणिज्ञानस्य मंगलगान: ॥ ८४ ॥
[illegible] पूर्णेन [illegible]

" इत्येता " इत्यादि श्लोक पढकर गंधमाल्यादि देवोंसे नमस्कार करें ॥ ८२ ॥ इसप्रकार जिनमाताओंकी पूजाविधि कही गई है । अब यहांसे देवोंकी पूजा करनी है " नगाद्युक् " इत्यादि दो श्लोकोंसे अर्थात देवोंकी नमस्कारपूजा करनेके लिये पुष्पोंकी माला आदि पुष्पोंसे विधि करें ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ " देवा " इत्यादि श्लोक पढकर आगमन आदि पूर्वक सब देवोंकी पूजा

इंद्राःसंशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपाविशतैतान् वो यजे प्रत्येकमादरात ॥८५

आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रातिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

अथासुरेन्द्रादीनां पृथक् पूजा ।

कोणस्थमग्न्यादिदिशुद्यसप्त कोणाग्रनीकं दृढमुद्गरास्त्रम् ।
विशेषपादांबुजसख्यस्यच्चूडामणिं चारु यजेऽसुरेंद्रम् ॥ ८६ ॥

ओं ह्रीं असुरकुमारेन्द्राय इदं जलं गंधं...।

कूर्मश्रितं सप्तदिगाश्रिनोरु नावादिसैन्यं फणिपाशपाणिम् ।
जिनांघ्रिपुष्पांकफलांकमौलिं नागेंद्रमुन्निद्रमुदर्चयामि ॥ ८७ ॥

ओं ह्रीं नागकुमारेंद्राय इदं...—..।

तार्क्ष्यादिकक्षाकुलसप्तदिकं धौतासिदंडं द्विरदाधिरूढम् ।
यजे सुपर्णेन्द्रमपास्तमोहविपेंद्रपादाप्तशिरः सुपर्णम् ॥ ८८ ॥

करनेके नियमके लिये पत्तोंपर पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ ८५ ॥ अब सुरेंद्रोंकी जुदी २ पूजा कहते हैं । "कोणस्थ" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" इत्यादि बोलकर असुरेंद्रको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ ८६ ॥ "कूर्मश्रितं" इत्यादि तथा ओं ह्रीं" बोलकर नागकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ८७ ॥ "तार्क्ष्यादिकक्षा" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुपर्णकुमार इंद्रको

ओं ह्रीं सुपर्णकुमारेभ्य इदं.. ।

समागमगगन [illegible] [illegible] ।
[illegible] ॥ ८९ ॥

ओं ह्रीं द्वीपकुमारेभ्य इदं.. ।

जलेभ्यानां [illegible] ।
[illegible] ॥ ९० ॥

ओं ह्रीं उदधिकुमारेभ्य इदं.. ।

सिंहाभिरूढं [illegible] ।
[illegible] ॥ ९१ ॥

ओं ह्रीं स्तनितकुमारेभ्य इदं..

[illegible] ।
[illegible] ॥ ९२ ॥

अर्घ चढावे ॥ ८८ ॥ " समागम " इत्यादि तथा ओं ह्रीं [illegible] द्वीपकुमारोंको अर्घ चढावे ॥ ८९ ॥ " जलेभ्यानां " इत्यादि तथा ओं ह्रीं [illegible] उदधिकुमारोंको अर्घ चढावे ॥ ९० ॥ " सिंहाभिरूढं " इत्यादि तथा ओं ह्रीं [illegible] स्तनितकुमारोंको अर्घ चढावे ॥ ९१ ॥ " [illegible] " इत्यादि तथा ओं ह्रीं [illegible] विद्युत्कुमारोंको अर्घ चढावे ॥ ९२ ॥ " सिन्धु-

ओं ह्रीं विद्युत्कुमारेंद्राय इदं... ।

दिक्कुंजरस्थं परिघच्छतारिं सिंहाद्यनैंद्रीचरसप्रचक्रम् ।
नतिक्षणार्हच्चरणांकशंकाकरांकासिंहं पयजे दिगेंद्रम् ॥ ९३ ॥

ओं ह्रीं दिक्कुमारेंद्राय इदं...

स्तंभाधिरोहं शिबिकादिसैन्यव्याप्ताशमुल्कायुधमाग्निमौलि ।
अग्नींद्रमर्चामि जिनक्रमाग्रश्रीकुंभलालायितमौलिकुंभम् ॥ ९४ ॥

ओं ह्रीं अग्निकुमारेंद्राय इदं... ।

कुरंगयुग्यं नगहेतिमश्व प्रष्टामरानीकपरीतमूर्तिम् ।
चायेनिलेंद्रं नतमस्तकाश्वच्छायैर्जिनांघ्रिस्थलमंकयंतम् ॥ ९५ ॥

ओं ह्रीं वातकुमारेंद्राय इदं... ।

सैन्यैरश्वरथेभपत्तिकलवागंधर्वादिभैःकौणनौ
तार्क्ष्ये भास्वरगंडकोष्टकरटिद्विक्याप्ययानार्वगैः ।

जरस्थं ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर दिक्कुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९३ ॥ “ स्तंभादिरोहं ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर अग्निकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९४ ॥ “ कुरंगयुग्यं ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वातकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९५ ॥ सैन्यै ” इत्यादि दो श्लोक बोल-

सप्ता प्राक्तनसप्तकक्रमहृताश्रूडाश्मदर्वीखगे—
न्द्रंत्यञ्जष्त्ररुवर्द्धमानकमृगेट्कुंभाश्वमौलिध्वजाः ॥ ९६ ॥
असुरफणिसुपर्णद्वीपवाध्र्यंब्दविद्युद्दिगनलपवनानां भावनानामधीशाः ।
दशविधपरिवर्गापंक्तरत्नाढ्यधर्माभरणभवनभाजामस्तु पूर्णाहुतिर्वः ॥ ९७ ॥

पूर्णाहुतिः । इति भावनेंद्रार्चनम् ।

अथेहं सर्वज्ञपदारविंदद्विरेफमभ्युन्नदरेफवेपम् ।
नागायुधं किंनरशक्रमिष्टिमष्टापदाधिष्ठितमर्पयामि ॥ ९८ ॥

ओं ह्रीं किंनरेंद्राय इदं.. ।

नेतुं स्वसंज्ञार्थमिवान्यथात्वं शुश्रूपमाणं पुरुपोत्तमांघ्री ।
आलापये किं पुरुपेन्द्रमुद्यज्जयश्रियसायकमुद्रहंतम् ॥ ९९ ॥

ओं ह्रीं किंपुरुषेंद्राय इदं.. ।

कर पूर्णाहुति दे ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ इसप्रकार भवनवासी इंद्रोंकी पूजाविधि हुई। "अथेह" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर किन्नरेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९८ ॥ "नेतुं" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर किंपुरुषेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९९ ॥ "मुमुक्षु" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर

मुमुक्षुशार्दूलमदूरमुक्ति श्रीमेयसीं मश्रयतः श्रयंतम् ।
शार्दूलमारूढमयोग्रपिष्ट द्विष्टं महामहोरगेंद्रम् ॥ १०० ॥

ओं ह्रीं महोरगेंद्राय इदं..

गंधर्ववृंदारकगीयमानशुभ्रोरुकीर्तिश्रितमर्हदीशम् ।
प्रीणामि गंधर्वहरिं मरालकीलागतिक्लिष्टमरालपत्र ॥ १०१ ॥

ओं ह्रीं गन्धर्वेन्द्राय इदं.. ।

आरादवज्ञातनिधिव्रजार्हदेवक्रमारब्धससंकसेवम् ।
यक्षामि यक्षेंद्रमधिष्ठिताहिपृष्टफणिश्लिष्टनिधीद्धदप्यम् ॥ १०२ ॥

ओं ह्रीं यक्षेन्द्राय इदं.. ।

आनंक्ष्यमाणं क्षपिताक्षरक्षः रक्षैः परं पूरुपमाश्रिताय ।
श्रितोग्रहस्ताय हरिश्रिताय रक्षोधिराजाय बलिं ददामि ॥ १०३ ॥

ओं ह्रीं राक्षसेंद्राय इदं.. ।

महोरगेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०० ॥ "गंधर्व" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर गंधर्वेन्द्रको अर्घ चढावे ॥ १०१ ॥ "आराध्य" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर यक्षेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०२ ॥ "आनक्ष्य" इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर राक्षसेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०३ ॥

भूतेशिने भूतदयामयाय भूतार्थनिष्ठायमुहुर्नमंतम् ।
भूतेंद्रमाक्रांततुरंगराजं बलिप्रदानेन सुखाकरोमि ॥ १०४ ॥

ओं ह्रीं भूतेंद्राय इदं ....|

ध्येयं सतां मोहपिशाचशांत्यै शांतैकनेतारमुपासितारम् ।
हेमांडकोड्डुम्परदंडचंडं पिशाचशक्रं बलिना धिनोमि ॥ १०५ ॥

ओं ह्रीं पिशाचेंद्राय इदं..|

किन्नरकिंपुरुषगरुडगंधर्वनिधिपनिशाटभूतपिशाचैः ।
प्रतिपन्नशासनानां जिनशासन महिमभासनव्यसनानाम् ॥ १०६ ॥

ताभ्यां द्वाभ्यां प्रियाभ्यामपहृतमनसां द्विद्विदेवीसहस्र-
प्रेमार्द्रार्द्राक्षिभाजां पुरनिकरतलाष्टांजनादिक्षितीनाम्
नित्योत्पादादिभौमव्रजविनयसृजां लोकरक्षैकदोष्णां
पूर्णापत्योत्सवानां युगपतिभिरसावस्तु पूर्णाहुतिर्वः ॥ १०७ ॥

" भूतेशिने " आदि तथा ओं ह्रीं बोलकर भूतेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०४ ॥ " ध्येयं सतां " इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर पिशाचेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०५ ॥ " किन्नर " इत्यादि दो श्लोक पढकर पूर्णाहुति दे ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ इस प्रकार व्यंतरेंद्रका पूजन हुआ । " सार्ह-

द्वाभ्यां पूर्णाहुतिः । इति व्यंतरेन्द्रार्चनम् ।

सार्द्धचैत्यग्रहांकरम्यनगरोत्तानार्धगोलाकृति—
मव्यासांकमणीद्धमंडलकरव्रातामृतैः प्लावयन् ।
भूलोकं हरिवाहनः परिवृतो भोडुग्रहोपग्रह—
र्वृद्धैः कुंतकरश्चरस्थिरविधूपेतोथ सोमोऽर्च्यते ॥ १०८ ॥

ओं ह्रीं सोमेंद्राय इदं...

हित्वाधो दश योजनानि गगने तारा सदैकाध्वगा
मार्गैर्नित्यनवैश्चरन्निह करोति द्यां निशां यः स्थितिः ।
तप्तस्वर्णभलोहिताक्षपुरभृद्दिवः स सूर्यश्चरै—
र्नालोकैरपरैः स्थिरैश्च रविभिः सत्रार्चतेर्चं जिनम् ॥ १०९ ॥

ओं ह्रीं सूर्येंद्राय इदं... ।

विंशत्येकयुतानि योजनशतान्येकादशाद्रीश्वरं
मुक्त्वा क्ष्मामपि तच्छतानि विदशान्यष्टौ विमानानि खे ।

चैत्य." इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर सोमेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०८ ॥ "हित्वाधो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सूर्येंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०९ ॥ "विंशत्येक" इत्यादि तथा ओं ह्रीं

उश्चेतरुछतमाघनोदधिदशोपेतं ततान्याश्रितान्
ज्योतिष्कानतुगृह्णतोऽजरवयः पूर्णाहुतिंवोर्पये ॥ ११० ॥

पूर्णाहुतिः । इति ज्योतिरिंद्रार्चनम् ।

एकत्रिंशद्युपटलमितेष्टादशे यास्कनाम्नि
श्रेणीवद्धे सततवसतिः पंचवर्णैर्विमानैः ।
तिस्रः श्रेणीर्वसुगुणचतुर्लक्षसंख्यैरवंतं
सौधर्मं प्राक् स्वरुकामिहार्चाम्यथैरावणस्थम् ॥ १११ ॥

ओं ह्रीं सौधर्मेंद्राय इदं.. ।

तद्वच्छ्रेणीवद्धमास्योदगेकश्रेणींद्रोष्टाविंशति पंचवर्णाः ।
यक्षाः पाति स्वःपुरीर्यो जिनांघ्रिस्रक्चूलं तं यष्टुमीशानमीशे ॥ ११२ ॥

ओं ह्रीं ईशानेंद्राय इदं.. ।

बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ ११० ॥ इसतरह ज्योतिष्कदेवेंद्रका पूजन हुआ । " एकत्रिंश " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सौधर्मेन्द्रको अर्घ चढावे ॥ १११ ॥ " तद्वच्छ्रेणी " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ईशानेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११२ ॥ " सतस्वपाक " इत्यादि तथा ओं

सप्तस्वपाक्द्युपटलेषु सभाह्वमंत्ये श्रेणीनिबद्धमधितिष्ठति षोडशं यः ।
त्रिश्रेणिगद्विपविकृष्णविमानलक्ष-सार्चां नमन् जिनमुपैतु सनत्कुमारः ॥ ११३ ॥

ओं ह्रीं सनत्कुमारेंद्राय इदं...

एकाष्टकृष्णोनविमानलक्षश्रेणीशमर्हत्प्रभुमाभजंतम् ।
महामि माहेंद्र मुदा वसंतं दिव्यास्पदः षोडश एव तद्वतः ॥ ११४ ॥

ओं ह्रीं माहेंद्राय इदं...

पात्या स्थितोऽपाक्पटले चतुर्थे चतुर्दशं ब्रह्मपदं चतस्रः ।
यः कृष्णनीलोनविमानलक्षा ब्रह्मेंद्रमर्चामि तमाप्तभक्तम् ॥ ११५ ॥

ओं ह्रीं ब्रह्मेंद्राय इदं...

द्वैतीयैके द्वादशं लांतवाख्यं श्रेणीबद्धं यः श्रितो माक्छ्रुचक्रे ।
लक्षार्धं प्राग्भानि भुंक्ते विमानान्यर्हद्भक्तं तं यजे लांतवेंद्रम् ॥ ११६ ॥

ह्रीं बोलकर सनत्कुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११३ ॥ "एकाष्ट" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर माहेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११४ ॥ "पात्या स्थितो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ब्रह्मेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११५ ॥ "द्वैतीयैके" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर लांतवेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११६ ॥ "शुक्रेंद्र" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर शुक्रेंद्रको अर्घ चढावे

ओं ह्रीं लांतवेन्द्राय इदं.. ।

शुक्रेंद्रमैकपटलिक चत्वारिंशत्सहस्रपीतासितद्याम् ।
दशममहाशुक्रोदकश्रेणीयद्धास्पदं यजे जिनभक्तम् ॥ ११७ ॥

ओं ह्रीं शुक्रेन्द्राय इदं.. ।

पीतार्जुनैकेंद्रकषट्सहस्रविमानभुक्ति जिनपूजनोक्तम् ।
यजे शतारेन्द्रमिहाष्टमेहं स्थितं सहस्रार उदग्विमाने ॥ ११८ ॥

ओं ह्रीं शतारेंद्राय इदं .... ।

सतश्वेतोकः शतैः षट् पटल्यां षष्ठ्यां अेकश्रेणिपाये पटल्याम् ।
षष्ठे तिष्ठंत्यादे दक्षिणोदक्श्रेण्योश्चाये तांश्चतुःकल्पशक्रान् ॥ ११९ ॥

तत्रानतेंद्रं जिनमाग्रहस्य संस्कारनिद्रावितमोहतंद्रम् ।
अप्यद्भुतैर्भोगसुखैरलुप्तश्रापण्यशर्मस्मृतिमर्चयामि ॥ १२० ॥

ओं ह्रीं आनतेंद्राय इदं.. ।

॥ ११७ ॥ "पीतार्जुन" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर शतारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११८ ॥
"सतश्वेतो" इत्यादि दो श्लोक और ओं ह्रीं बोलकर आनतेंद्रको अर्घ चढावे ॥११९॥१२०॥

स्वभोगवर्गप्रसृताक्षवर्गोप्युदीच्यदेहाससुखैः प्रसक्तः ।
अर्हत्प्रभौ व्यक्तविचित्रभावो भजत्विपां प्राणतजिष्णुरिज्याम् ॥ १२१ ॥

ओं ह्रीं प्राणतेंद्राय इदं.. ।

स्थितोपि मौले वपुषि प्रदेशैस्तनूमुदीचीमनुसंदधानः ।
भजत्यनंतार्हितवाञ्छिनं यस्तं प्रीणम्यर्हणयारणेंद्रम् ॥ १२२ ॥

ओं ह्रीं आरणेंद्राय इदं.. ।

कदाचिदप्यच्युतमुच्यतेशभक्तेश्वतेर्दुश्चुरितात्परीतम् ।
एकात्रषष्ठ्यग्रशतं विमानान्यधीशितारं प्रयतेच्युतेंद्रम् ॥ १२३ ॥

ओं ह्रीं अच्युतेंद्राय इदं.. ।

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेंद्रवासवब्रह्मेंद्रा
लांतवशुक्रशतारानतशक्रा प्राणतारणाच्युतशक्राः ।

" स्वभोगवर्ग " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर प्राणतेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १२१ ॥ " स्थितोपि " इत्यादि और ओं ह्रीं बोलकर आरणेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १२२ ॥ " कदाचिद "इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर अच्युतेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १२३ ॥ " सौधर्म " इत्यादि दो श्लोक बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ " इत्थं " इत्यादि श्लोक कहकर यज्ञप्रार्थनाके

वालाग्रातरमेरुचूलिकपयोवायूभयोस्तभातिभूपांगनाः
कल्पेंद्राः प्रददामि बोधितजिना यज्ञेत्र पूर्णाहुतिम् ॥ १२४ ॥
ये चत्वारिंशतेंद्रैर्भवनदिविपदां व्यंतराणां द्वियुक्त—
त्रिंशत्संख्यैर्द्युधाम्ना त्रिगुणवमुतैः सिंहसम्राट् शशीनैः ।
अप्यर्च्यंते चतुर्भिः समवसृतिपितैस्तन्मखारंभमुख्या
दद्यां पूर्णाहुतिं वो भवनवनसुरज्योतिरुद्धामरेंद्राः ॥ १२५ ॥

द्वात्रिंशत्पूर्णाहुतिः ।

इत्थं यथोचितविधिमतिपत्तिपूर्वयज्ञांशदानभृशदीपितपक्षपाताः
सर्वज्ञयज्ञपरिपूर्तिदुरीहितं मे मुख्यानुषंगिकफलैः प्रथयंतु शक्राः ॥ १२६ ॥
इष्टप्रार्थं नाथ पुण्यांजलिंक्षिपेत्। इति द्वात्रिंशादिंद्रार्चनविधानं

अथ पत्रांतरालस्थापितचतुर्विंशतियक्षार्चनम् ?

नाभेयाद्यपसव्यपार्श्वविहितन्यासांस्तदाराधका
अव्युत्पन्नदृशः सदैहिकफलप्राप्तीच्छयार्चंति यान् ।
आमंत्र्य क्रमशो निवेश्य विधिवत्पत्रांतरालेषु तान्
कृत्वारादधुना धिनोमि बलिभिर्यक्षांश्चतुर्विंशतिम् ॥ १२७ ॥

लिये पुष्पांजलिको क्षेपण करे ॥ १२६ ॥ इस तरह बत्तीस इंद्रोंकी पूजनविधि ...

गोमुखादिचतुर्विंशतियक्षसमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात् ।

यक्षाः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः।अत्रोपविशतैतान् वो यजे प्रत्येकमादरात् १२८

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रांतरालेषु पुष्पांजलिं क्षिपेत् । अथ- प्रत्येकपूजा ।

सव्येतरोर्ध्वकरदीप्रपरश्वधाक्षसूत्रं तथा धरकरांकफलेष्टदानम् ।
प्राग्गोमुखं वृषमुखं वृषगं वृषांकभक्तं यजे कनकभं वृषचक्रशीर्षम् ॥ १२९ ॥

ओं ह्रीं गोमुखयक्षाय इदं.. ।

चक्रत्रिशूलकमलांकुशवामहस्तो निस्त्रिंशदंडपरशुवराण्यपाणिः ।
चामीकरद्युतिरिभांकनतो महादियक्षोऽर्च्यतो जगतश्चतुराननोऽसौ ॥ १३० ॥

पत्रके मध्यमें स्थापन किये गये चौवीस यक्षोंकी पूजाविधि कहते हैं। "नाभेयाद्य" इत्यादि श्लोक बोलकर गोमुखादि चौवीस यक्षोंकी समुच्चयपूजामें पहलेकी तरह विधि करे ॥ १२७॥ "यक्षाः सं" इत्यादि श्लोक बोलकर आवहनादि पूर्वक हरएककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञा करनेके लिये पत्रके मध्यमें पुष्प अक्षतोंको डाले ॥ १२८ ॥ अब हरएककी पूजा कहते हैं– "सव्येतरो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर गोमुख यक्षको अर्घ चढावे ॥ १२९ ॥ "चक्रत्रिशूल" इत्यादि ओं ह्रीं बोलकर महायक्षको अर्घ चढावे ॥ १३० ॥ "चक्रासि" इत्यादि

ओं ह्रीं महायक्षाय इदं.. ।

चक्रासिशृण्युपगसव्यसयोन्यहस्तैर्दंडत्रिशूलमुपयन् शितकार्तिकाच ।
वाजिध्वजमभुनतः शिखिगोंजनाभ–रुग्यक्षः प्रतीक्षतु वालिं त्रिमुखाख्ययक्षः ॥ १३१ ॥

ओं ह्रीं त्रिमुखाख्याय इदं.. ।

प्रेंखद्धनुःखेटकवामपाणिं सकंकपत्रास्यपसव्यहस्तम् ।
श्यामं करिस्थं कपिकेतुभक्तं यक्षेश्वरं यक्षमिहार्चयामि ॥ १३२ ॥

ओं ह्रीं यक्षेश्वरयक्षाय इदं.. ।

सर्पोपवीतं द्विपपन्नगोर्द्धकरं स्फुरद्दानफलान्यहस्तम् ।
कोकांकनम्रं गरुडाधिरूढं श्रीतुम्बरं श्यामरुचिं यजामि ॥ १३३ ॥

ओं ह्रीं तुम्बरयक्षाय इदं.. ।

तथा ओं ह्रीं बोलकर त्रिमुखयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३१ ॥ "प्रेंखद्धनुः" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर यक्षेश्वरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३२ ॥ "सर्पोपवीत" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर तुंबरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३३ ॥ "मृगारूढं" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर

मृगारूढं कुंतकरांपसव्यकरं सखेटा भयसव्यहस्तम् ।
श्यामांगमब्जध्वजदेवसेव्यं पुष्पाख्ययक्षं परितर्पयामि ॥ १३४ ॥

ओं ह्रीं पुष्पयक्षाय इदं.. ।

सिंहाद्रिरोहस्य सदंडशूलसव्यान्यपाणेः कुटिलाननस्य ।
कृष्णत्विषः स्वस्तिककेतुभक्तेर्मातंगयक्षस्य करोमि पूजाम् ॥ १३५ ॥

ओं ह्रीं मातंगयक्षाय इदं.. ।

यजे स्वधित्युग्यफलाक्षमाला वरांकवामान्यकरं त्रिनेत्रम् ।
कपोतपत्रं प्रभयाख्यया च श्यामं कृतेंदुध्वजदेवसेवम् ॥ १३६ ॥

ओं ह्रीं श्यामयक्षाय इदं.. ।

सहाक्षमाला वरदानशक्तिफलाय सव्यापरपाणियुग्मः ।
स्वारूढकूर्मो मकरांकभक्तो गृह्णातु पूजामजितः सिताभः ॥ १३७ ॥

पुष्पयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३४ ॥ " सिंहादि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर मातंगयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३५ ॥ " यजेस्वधि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर श्यामयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३६ ॥ सहाक्षमाला " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर अजितयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३७ ॥ " श्रीवृक्ष " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ब्रह्म यक्षको अर्घ चढावे ॥ १३८ ॥

सनागपाशोर्ध्वकरद्वयोधः करद्वयात्तेषु धनुः सुनीलः ।
गंधर्वयक्षः स्तभकेतुभक्तः पूजामुपैतु श्रितपक्षियानः ॥ १४५ ॥

ओं ह्रीं गंधर्वयक्षाय इदं.. ।

आरभ्योपरिमात्करेषु कलयन् वामेषु चापं पविं
पाशं मुद्गरमंकुशं च वरदः षष्ठेन युंजन् परैः ।
बाणाभोजफलस्रगच्छपटलीलीलाविलासास्त्रिदक्
षड्‌कष्टगरांकभक्तिरसितः खेंद्रोर्च्यते शंखगः ॥ १४६ ॥

ओं ह्रीं खेन्द्रयक्षाय इदं.. ।

सफलकधनुर्दंडपद्म खड्गमदरसुपाशवरमदाष्टपाणिम् ।
गजगमनचतुर्मुखेन्द्रचापद्युतिकलशांकनतं यजे कुबेरम् ॥ १४७ ॥

ओं ह्रीं कुबेरयक्षाय इदं.. ।

जटाकिरीटोष्टमुखस्त्रिनेत्रो वामान्यखेटासिफलेष्टदानः ।
कूर्मांकनम्रो वरुणो वृषस्थः श्वेतो महाकाय उपैतु तृप्तिम् ॥ १४८ ॥

अर्घ चढावे ॥ १४५ ॥ "आरभ्यो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं पढकर खेंद्रयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४६ ॥ "सफलक" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर कुबेरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४७ ॥ "जटाकिरीटो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वरुणयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४८ ॥ "सेटा-

ओं ह्रीं वरुणयक्षाय इदं.................................... ।

खेटासिकोदंडशरांकुशाब्ज–चक्रेष्टदानोल्लसिताष्टहस्तम् ।
चतुर्मुखं नंदिगमुत्पलाकभक्तं जपाभं भृकुटिं यजामि ॥ १४९ ॥

ओं ह्रीं भृकुटियक्षाय इदं.................................... ।

श्यामस्त्रिवक्त्रो द्रुघणं कुठारं दंडं फलं वज्रवरौ च बिभ्रत् ।
गोमेदयक्षः क्षितशंखलक्ष्मा पूजां नृवाहोऽर्हतु पुष्पयानः ॥ १५० ॥

ओं ह्रीं गोमेदयक्षाय इदं.................................... ।

ऊर्ध्वद्विहस्तधृतवासुकिरुद्भटाधः सव्यान्यपाणिफणिपाशवरप्रणंता ।
श्रीनागराजककुदं धरणोऽभ्रनीलः कूर्माश्रितो भजतु वासुकिमौलिरिज्याम् १५१

ओं ह्रीं धरणयक्षाय इदं.................................... ।

मुद्गप्रभो मूर्धनि धर्मचक्रं बिभ्रत्फलं वामकरेथ यच्छन् ।
वरं करिस्थो हरिकेतुभक्तो मातंगयक्षोऽगतु तुष्टिमिष्ट्या ॥ १५२ ॥

सि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर भृकुटि यक्षको अर्घ चढावे ॥ १४९ ॥ " श्यामस्त्रि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं पढकर गोमेदयक्षको अर्घ चढावे ॥ १५० ॥ " ऊर्ध्वद्विहस्त " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर धरणयक्षको अर्घ चढावे ॥ १५१ ॥ " मुद्गप्रभो " इत्यादि तथा ओं ह्रीं

ओं ह्रीं मातंगयक्षाय इदं.. ।

इत्थं योग्योपचारव्यतिकरपरमो जागरान् गृहाग्रव्यापाराः
शश्वदर्हत्प्रभुसमयमहस्तायिनो यक्षमुख्याः ।
तद्भक्तोद्धर्षहर्षाप्लुतजलधिनिरुच्छ्वासलीलावगाह
प्रत्यूहापोहकृत्यः सृजतु परमसौपर्वपूर्णाहुतिर्वः ॥ १५३ ॥

पूर्णाहुतिः । इति चतुर्विंशतियक्षार्चनविधानम् । अथ चतुर्विंशतिपत्राग्रस्थापितशासनदेवतार्चनम् ।

संभावयंति वृषभादिजिनानुपास्य तद्वामपार्श्वनिहिता वरलिप्सवो याः ।
चक्रेश्वरीप्रभृतिशासनदेवतास्ताः द्विर्द्वादशादलमुखेषु यजे निवेश्य ॥ १५४ ॥

चतुर्विंशतिशासनदेवतासमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात् ।

यक्ष्यः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् १५५

बोलकर मातंगयक्षको अर्घ चढावे ॥ १५२ ॥ "इत्थं योग्यो" इत्यादि श्लोक पढकर पूर्णार्घ दे ॥१५३॥ इसप्रकार चौवीस यक्षोंकी पूजाका विधान हुआ । अब चौवीस पत्रोंके अग्रभागमें स्थापित शासनदेवताओंकी पूजा कहते हैं । "संभावयन्ति" इत्यादि श्लोक पढकर चौवीस शासनदेवताओंकी समुदायपूजाकेलिये पूर्व कही हुई विधि करे ॥ १५४ ॥ "यक्ष्यः" इत्यादि

आवहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्राग्रेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

भर्माभाग्र करद्वयालकुलिशा चक्रांकहस्ताष्टका
सव्यासव्यशयोल्लसत्फलवरा यन्मूर्तिरास्तेंबुजे ।
तार्क्ष्ये वा सह चक्रयुग्मरुचकत्यागैश्चतुर्भिः करैः
पंचेष्वास शतोन्नतप्रभुनतां चक्रेश्वरीं तां यजे ॥ १५६ ॥

ओं ह्रीं अप्रतिहतचक्रे देवि इदं.. ।

स्वर्णद्युतिशंखरथांगशस्त्रा लोहासनस्थाभयदानहस्ता ।
देवं धनुः सार्धचतुःशतोच्चं वंदारुवीष्टामिह रोहिणीष्टेः ॥ १५७ ॥

ओं ह्रीं अजितदेवि इदं.. ।

पक्षिस्थार्धेंदुपरशुफलासीढीवरैः सिता । चतुश्चापशतोच्चार्हद्भक्ता प्रज्ञप्तिरिज्यते ॥ १५८ ॥

श्लोक बोलकर आवाहन आदि पूर्वक हरएककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञाके लिये पत्रके अग्रभागमें पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ १५५ ॥ अब प्रत्येककी पूजा कहते हैं–" भर्मा " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर चक्रेश्वरी देवीको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ १५६ ॥ "स्वर्णद्युति" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर अजितादेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १५७ ॥ "पक्षिस्था"

ओं ह्रीं नम्रे देवि इदं.. ।

सनागपाशोरुफलाक्षसूत्रा हंसाधिरूढा वरदानुयुक्ता ।
हेमप्रभार्धत्रिधनुः शतोच्चतीर्थेशनम्रा पविशृंखलार्चाम् ॥ १५९ ॥

ओं ह्रीं दुरितारि देवि इदं.. ।

गजेंद्रगावज्रफलोघचक्रवरांगहस्ता कनकोज्ज्वलांगी ।
गृह्णातुदंडत्रिशतोन्नतार्हन्नतार्चनां खञ्जवराच्र्यते त्वम् ॥ १६० ॥

ओं ह्रीं मोहिनि देवि इदं.. ।

सिता गोवृषगा घंटां-फलशूलवरायुताम् । यजे कालीं द्विको दंडशतोच्छ्रायजिनाश्रयाम् ॥

ओं ह्रीं मानवीदेवि इदं.. ।

चंद्रोज्ज्वलां चक्रशरासपाश चर्मत्रिशूलेपुझपासिहस्ताम् ।

इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर नम्रादेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १५८ ॥ "सनाग" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर दुरितारि देवीको अर्घ चढावे ॥ १५९ ॥ "गजेंद्र" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर मोहिनी देवीको जलादि. चढावे ॥ १६० ॥ "सिता." इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर मानव देवीको जलादि चढावे ॥ १६१ ॥ "चंद्रो" इत्यादि

श्रीज्वालिनीं सोर्धधनुःशतोच्चजिनानतां कोणगतां यजामि ॥ १६२ ॥

ओं ह्रीं ज्वालामालिनीदेवि इदं.................................. ।

कृष्णा कूर्मासनाधन्वशतोन्नताजिनानता । महाकालीज्यते वज्रफलमुद्गरदानयुक् ॥ १६३ ॥

ओं ह्रीं भृकुटि देवि इदं.................................. ।

झपदामरुचकदानोचितहस्तां कृष्णकालगां हरितांम् ।

नवतिधनुस्तुगाजिनप्रणतामिह मानवीं प्रयजे ॥ १६४ ॥

ओं ह्रीं चामुंडे देवि इदं.................................. ।

समुद्राब्जकलशां वरदां कनकप्रभाम् । गौरीं यजेशीतिधनुः प्राशु देवीं मृगोपगाम १६५

तथा "ओंह्रीं" बोलकर ज्वालामालिनीदेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १६२ ॥ "तृष्णा" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" पढकर भृकुटि देवीको जलादि चढावे ॥ १६३ "झप" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" कहकर चामुंडा देवीको जलादि चढावे ॥ १६४ ॥ "समुद्र" इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर गोमेधकिदेवीको जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ १६५ ॥ "सपक्ष" इत्यादि

पीतां विंशतिचापोच्चस्वामिकां बहुरूपिणीम् । यजे कृष्णाहिगां खेटफलखड्गवरोत्तराम् १७४॥

ओं ह्रीं सुगंधिनि देवि इदं................................ ।

चामुंडा यष्टिखेटाक्षसूत्रखड्गोत्कटा हरित् । मकरस्थार्च्यते पंचदशदंडोन्नतेशभाक् ॥ १७५ ॥

ओं ह्रीं कुसुममालिनि देवि इदं................................ ।

सव्येकद्युपगप्रियंकर सुतुक् प्रीत्यै करे बिभ्रतीं
दिव्याम्रस्तबकं शुभंकरकराश्लिष्टान्यहस्तांगुलिम् ।
सिंहे भर्तृचरे स्थितां हरितभामाम्रद्रुमच्छायगां
वंदारुं दशकार्मुकोच्छ्रयजिनं देवीमिहाम्रा यजे ॥ १७६ ॥

ओं ह्रीं कूष्मांडिनि देवि इदं................................ ।

येष्टुं कुर्कटसर्पगात्रिफणकोत्तंसा द्विषो यात षट्
पाशादिः सदसत्कृते च धृतशंखास्यादिदो अष्टका ।
तां शांतामरुणां स्फुरच्छृणिसरोजन्माक्षव्यालांबरां
पद्मस्थां नवहस्तकप्रभुनतां यायज्मि पद्मावतीम् ॥ १७७ ॥

"ओंह्रीं" बोलकर सुगंधिनिदेवीको जल आदि चढावे ॥ १७४॥ "चामुंडा" इत्यादि तथा 'ओंन्हीं बोलकर कुसुममालिनीको जल आदि चढावे ॥ १७५ ॥ "सव्ये" इत्यादि तथा 'ओंन्हीं बोलकर कूष्मांडिनी देवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ १७६ ॥ "येष्टुं" इत्यादि

ॐ ह्रीं पद्मावतीदेवि इदं............................ ।

सिद्धायिकां सप्तकरोच्छ्रितांगजिनाश्रयां पुस्तकदानहस्ताम् ।
श्रितां सुभद्रासनमत्र यज्ञे हेमद्युतिं सिंहगतिं यजेऽहम् ॥ १७८ ॥

ॐ ह्रीं सिद्धायिनि देवि इदं.............................. ।

इत्यावर्जितचेतसः समुचितैः सन्मानदानैः स्फुरन्
स्यात्कारध्वजशासनद्विषदपक्षेपोच्छलद्युक्तयः ।
यक्ष्यं संघनृपादिलोकविपदुच्छेदादिहार्हन्महे
कुर्वाणाः सहकारितां समिमां गृह्णंतु पूर्णाहुतिम् ॥ १७९ ॥

पूर्णाहुतिः । इति शासनदेवतार्चनविधानम् । अथ द्वारपालानुकूलनम् ।

सोमयमवरुणधनदा जिनदेवीद्वारपालननियुक्ताः ।
स्वं स्वमिहेत्य नियोगं कुर्वद्भ्यः को न वः स्पृहयेत् ॥ १८० ॥

सोमादिद्वारपालसांमुख्यविधानाय दिक्षु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

तथा " ॐ ह्रीं " बोलकर पद्मावती देवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥१७७॥ "सिद्धायिकां इत्यादि तथा " ॐ ह्रीं " बोलकर सिद्धायिनी देवीको जल आदि आठ द्रव्य चढावे १७८ ॥ " इत्यावर्जित ", इत्यादि श्लोक कहकर आठ द्रव्यसे सबको पूर्णार्घ दे ॥ १७९ ॥ इस प्रकार

कोदंडकांडस्फुटदृष्टिमुष्टिमरुद्भटोद्भव्यकथानुरक्तम् ।
वेद्याः पुरो द्वारमिमामवंतं सोमोपगृह्णाम्युचितैर्भवंतम् ॥ १८१ ॥
ओं धनुर्धराय अर अर त्वर त्वर हूं सोम आगच्छागच्छ इदं जलं............ ।

द्विड्वर्गदंडोद्यतचंडदंडं प्रचंडसामाजिकसंकथास्थम् ।
वेदिप्रतीहारमपाच्यमेतं पांतं यम त्वामनुकूलयामि ॥ १८२ ॥
ओं दंडधराय अर २ त्वर २ हूं यम आगच्छागच्छ इदं...................... ।

विषाक्तजिह्वायुगलीढसृक्कस्फुलिंगवांत्युग्रभुजंगरज्जुः ।
प्रतीच्यवेदीमुखद्वास्थभृत्यहृतः प्रचेतः कुरु चारुचेतः ॥ १८३ ॥
ओं पाशधराय अर २ त्वर २ हूं वरुण आगच्छागच्छ इदं............ ।

शासनदेवताओंका पूजन समाप्त हुआ । अब द्वारपालोंको अनुकूल करते हैं । "सोम" इत्यादि श्लोक बोलकर उन सोम आदिको सन्मुख करनेके लिये दिशाओंमें पुष्प अक्षतको वखेरै ॥ १८० ॥ "कोदंड" इत्यादि तथा "ओंधनु" इत्यादि बोलकर सोमको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥१८१ ॥ "द्विड्वर्ग" इत्यादि तथा "ओं दंड" इत्यादि बोलकर यमको जल आदि चढावे ॥ १८२ ॥ "विषाक्त" इत्यादि तथा "ओं पाश" इत्यादि बोलकर वरुणको जल आदि चढावे ॥ १८३ ॥ "इतस्ततो" इत्यादि तथा "ओं गदा" इत्यादि बोलकर

इतस्ततो नाभिगिरेः सगर्भां गदां सलीला भ्रमयन्नुदीच्ये ।
द्वारे निपण्णोनुचरैर्वितर्दैः कुबेर वीरानुसरोपचार ॥ १८४ ॥

ओं गदाधराय अर २ त्वर २ हूं कुबेर आगच्छागच्छ इदं............ ।

एवं प्रियाकृताः सोमप्रमुखा द्वास्थकुंजराः । क्षुद्रान् क्षिपंतो विशतः सलुनु मन्वताम् ॥ १८५ ॥

पुष्पांजलिः । इति द्वारपालानुकूलनविधानम् । अथ दिक्पालानुकूलनम् ।

इंद्राग्निश्राद्धदेवाः शरपतिवरुणस्पर्शनश्रीदरुद्राः
पूर्वाद्याशासु वेधास्त्रिजगदधिपतेः प्रासरक्षाधिकाराः ।
तद्यज्ञेस्मिन्नवात्मप्रयाति विहरतामेत्य पल्यादियुक्ता
विघ्नंतो यथास्वं वितनुत समयोद्योतमौचित्य कृभ्याः ॥ १८६ ॥

इंद्रादिदिक्पालानामावाहनादिपुरस्सरार्घ्यपणाय दिक्षु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अथ पृथगिष्टिः ।

रूप्याद्रिस्पार्द्धिघंटायुगपटुकटुटंकारनानिशुंभ—
क्रूषासख्यातिचित्रोज्ज्वलविलसल्लक्ष्मवर्ष्मद्वयस्थं ।

कुबेरको जल आदि चढावे ॥ १८४ ॥ "एवं प्रिया" इत्यादि बोलकर पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ १८५ ॥ इसतरह द्वारपालोंको अनुकूलकरनेकी विधि हुई । अब दिक्पालोंको प्रसन्न करनेकी विधि कहते हैं । "इंद्रादि" इत्यादि श्लोक बोलकर इंद्र आदि दिक्पालोंका आवाहन आदि करनेके लिये चारोंतरफ पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ १८६ ॥ अब इनकी जुदी जुदी पूजा

रूप्यत्सामानिकादित्रिदशपरिवृतं रूप्यसंख्यादि देवी
लोलाक्षं वज्रभूषोद्भटसुभगरुचं प्रागिहेंद्रं यजामि ॥ १८७ ॥

ओं ह्रीं इन्द्र आगच्छागच्छ इंद्राय स्वाहा....................।

रुक्मारुग्घुर्घुरस्रग्गलचटुलपृथुप्रायभृंगाभतुंग—
स्थं रौद्रपिंगेक्षणयुगममलं ब्रह्मसूत्रं शिखाग्रम् ।
कुंदी वामप्रकोष्ठे दधतमितरपाण्यात पुण्याक्षसूत्रं
स्वाहान्वीतं धिनोमि श्रुतिमुखरसभं प्राच्यपाच्यंतरेऽग्निम् ॥ १८८ ॥

ओं ह्रीं अग्ने आगच्छागच्छ अग्नये स्वाहा ।

कल्पांताब्दोघजेतृ त्रिगुणफणिगुणोद्ग्राहितग्रैवघंटा
टंकारात्युग्रशृंगक्रमहतभधरव्रातरक्ताक्षसंस्थं
चंडार्चिः कांडदंडोद्भुमरकरमतिक्रूरदारादिलोकं
कारुण्योद्रेकं नृशंस प्रथममथ यम दिश्यपाच्यां यजामि ॥ १८९ ॥

कहते हैं ॥ "रूप्यादि" इत्यादि तथा "ओंह्रीं" बोलकर इंद्रको पूजाद्रव्य चढावे ॥१८७॥
"रुक्मा" इत्यादि तथा "ओंह्रीं" इत्यादि बोलकर अग्निको पूजाद्रव्य चढावे ॥ १८८ ॥
"कल्पांता" इत्यादि तथा "ओंओं" इत्यादि बोलकर यमको पूजाद्रव्य चढावे ॥ १८९ ॥

ॐ आं क्रौं ह्रीं यमागच्छागच्छ यमाय स्वाहा ।

आरूढं धूमधूम्रायतविकटसटास्ताग्रदिक्रूक्षरूक्षमा
लक्षाक्षावशिष्टास्फुटरुदितकला योद्रमाभांगमृक्षम् ।
क्रूरक्रव्यातपरीतं तिमिरचयरुचं मुद्गरक्षुण्णरौद्र-
क्षुद्रौघं त्रात याम्या परहरतमहं नैर्ऋतं तर्पयामि ॥ १९०

ॐ आं क्रौं ह्रीं नैर्ऋत्यागच्छागच्छ नैर्ऋत्याय स्वाहा ।

नित्यांभः कोलिपाण्डूत्कटकापिलविशच्छेदसोदर्यदंत-
प्रोत्फुल्यरपत्रखेलत्करकारिमकरव्योमयानाधिरूढम् ।
प्रेंखन्मुक्ताप्रवालाभरणभरमुपस्थात्तदाराहृताक्षं
स्फूर्जन्नीमाहिपासं वरुणमपरादिग्रक्षणं प्रीणयामि ॥ १९१ ॥

ॐ आं क्रौं ह्रीं वरुणागच्छागच्छ वरुणाय स्वाहा ।

वलगच्छृंगाग्रभिन्नांबुदपटलगलत्तोयपीतश्रमाभ्र
प्लुत्यस्तस्वांतरंहः खुरकषितकुलग्रावसारंगयुग्यम् ।

"आरूढं" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर नैर्ऋत्यको अर्घ चढावे ॥ १९० ॥
नित्यांभ" इत्यादि तथा" ओं आं" इत्यादि पढकर वरुणको अर्घ चढावे ॥ १९१ ॥" वल्ग"

व्यालोलद्वात्रयंत्रं त्रिजगदसुधृतिव्यग्रमुग्रद्रुमास्त्रं
सर्वार्थानर्थसर्गप्रभुमनिलमुदक् प्रत्यगंतः प्रणौमि ॥ १९२ ॥
ओं आं क्रों ह्रीं अनिलागच्छागच्छ अनिलाय स्वाहा ।

हांसोघो नाह्यमानं पवननरिनृतत्केतुपंक्ति विमानं
स्वारूढः पुष्पकाख्यं क्रमसखरसनाद्दामुक्ताकलापः ।
अग्राम्योद्दामवेपः सुललितधनदेव्यादिवक्त्राब्जभृंगः
शक्तीभिन्नारिमर्मा भजतु बलिमुदग्भुक्तिवीरः कुवेरः ॥ १९३ ॥
ओं आं क्रों ह्रीं कुवेरागच्छागच्छ कुवेराय स्वाहा ।

सास्नावाचालकिंकिण्यनणुरणनझणत्कारमंजीरसिंजा
रम्योद्यच्छृंगहेलाविहरदुरुशरच्चंद्रशुभ्रर्षभस्थम् ।
भास्वद्भूषाभुजंगभुजगासितजटाकेतकार्द्धेंदुचूलं
दधत्शूलं कपालं सगणवामिहार्चामि पूर्वोत्तरेशम् ॥ १९४ ॥
ओं आं क्रों ह्रीं ईशानागच्छागच्छ ईशानाय स्वाहा ।

इत्यादि तथा "ओं आं" इत्यादि बोलकर वायुको अर्घ चढावे ॥१९२॥ "हांसो" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि पढकर कुवेरको अर्घ चढावे ॥ १९३ ॥ "सास्ना" इत्यादि तथा "ओं" इ-

इत्यर्हन्मदुसामवायिकनयाह्वानादियोग्यक्रमे—
दिक्पालाः कृततुष्टयः परिजनोत्कृष्टाश्रियोष्टाप्यमू ।
दृष्ट्वा कामदमर्हदध्वरमरं दिक्चक्रमाक्रामतो
भव्यान् संदधतः शुभैः सह भजंत्वेतर्हि पूर्णाहुतिम् ॥ १९५ ॥

पूर्णाहुतिः । इति दिक्पालार्चनाविधानम् । अथ दिक्चतुष्टयनिविष्टप्रभावनोद्भटयक्षानुकूलनम् ।

प्रभुं भक्तुमिहागत्य प्राचीं चिन्वन्निजश्रिया । बलिं विजययक्षेश मंत्रपूतां स्वसात्कुरु ॥१९६॥

ओं ह्मल्व्र्यूं विं विजययक्ष बलिं गृहाण गृह्ण गृह्ण स्वाहा ।

अत्रापाचीमलंकृत्य भजमानो जगत्पतिम् । यथार्हबलिसंतुष्टो वैजयंत जयंत नु ॥ १९७ ॥

ओं ह्मल्व्र्यूं वैं वैजयंत बलिं........................ ।

देवाधिदेवसेवायै प्रतीचीं दिशमास्थितः । बलिदानेन संप्रीतो जयंत जय दुर्जयान् ॥ १९८ ॥

ॐ ह्मल्व्र्यूं जं जयंत बलिं.................................... ।

त्यादि कहकर ईशानको अर्घ चढावे ॥ १९४ ॥ "इत्यर्ह" इत्यादि बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ १९५ ॥ इसतरह दिक्पालोंकी पूजाविधि पूर्ण हुई । अब चारों दिशाओंके यक्षोंका सत्कार करते हैं । "प्रभुं" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर विजययक्षको अर्घ चढावे ॥ १९६ ॥ "अत्रापा" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर वैजयंतको अर्घ चढावे ॥ १९७ ॥ "देवाधि इत्यादि तथा "ओं"इत्यादि बोलकर जयंतको अर्घ चढावे ॥ १९८ ॥ "उदीचीं" इत्यादि

उदीचीं भूषयन् भूत्या सर्वज्ञोपासनोत्सुकः । अपराजित यक्ष त्वं प्रीयस्व बलिनामुना ॥१९९॥

ॐ झ्म्ल्व्र्यूं अं अपराजित बलिं.................................. ।

एवं संमानिता यूयं जिनेंद्रसमये रताः । प्रतिष्ठासमयेऽमुष्मिन् यतध्वं विश्वशांतये ॥ २०० ॥

पूर्णाहुतिः । इति विजयादियक्षानुकूलनविधानम् । अथैशानदिश्यनावृतार्चनम् ।

जंबूवृक्षस्य नानामणिमयवपुषः प्राग्यजंबूहृतस्य
प्राक्शाखामावसंतं नवजलदरुचं पक्षिराजाधिरूढम् ।
कुंडीशंखाक्षमालारथचरणकरं त्राणनिःशेषजंबू—
द्वीपश्रीकं यजेस्मिन् विधुरविधुतयेनावृतं व्यंतरेंद्रम् ॥ २०१ ॥

ओं दशदिशाधिनाथं त्रैलोक्यदंडनायकं जंबूद्वीपाधिपतिं गरुडपृष्ठमारूढं स्निग्धभिन्नांजनाभमक्षसूत्रकमंडलुव्यग्रहस्तं चतुर्भुजं शंखचक्रविधृतभुजादंडं यक्षिणीसहितं सपरिजनं सपरिवारमनावृतं देवं समाह्वयामीह स्वाहा हे अनावृतागच्छागच्छ अनावृताय स्वाहा अनावृतपरिजनाय स्वाहा ।

तथा "ओं" इत्यादि बोलकर अपराजितको अर्घ चढ़ावे ॥ १९९ ॥ "एवं संमा" इत्यादि श्लोक बोलकर पूर्णार्घ चढ़ावे ॥ २०० ॥ इस प्रकार विजयादि यक्षोंका सत्कार हुआ । अब ईशानदिशाके अनावृत यक्षकी पूजा कहते हैं । "जंबूवृक्ष" इत्यादि तथा "ओं दश" इत्यादि पढ़कर जल आदि अष्ट द्रव्य चढ़ावे ॥ २०१ ॥ "व्रह्मांते" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर

ब्रह्मांते दिक्षु रुद्राद्यधिपतिषु समाग्न्यामसूर्याभपूर्वं—
द्विर्द्विस्वर्भूगणैकोत्तरभूतिषु वसंत्यष्ट सारस्वताद्याः ।
यद्वर्गास्ते स्वतंत्राः क्षतविषयतृपो भाविजन्माप्यमोक्षाः
पूर्वज्ञा मेघ लौकांतिकसुरमुनयस्तीर्थकृच्छंसिनोऽर्च्याः ॥ २०२ ॥

ओं ह्रीं लौकांतिकदेवेभ्यः पुष्पांजलिं निर्वपामीति स्वाहा । ब्रह्मेंद्रोपरि देवर्षिपुष्पांजलिः ।

मुख्योपचारिकचरित्रचितोरुपुण्यपाकाग्रखस्थसितरत्नविमानवासान् ।
अर्हत्प्रतिष्ठितिमिमामनुमोदमानान् संमानयामि कुसुमांजलिनाहमिंद्रान् ॥ २०३ ॥

ओं ह्रीं अहमिंद्रदेवेभ्यः पुष्पांजलिं निर्वपामीति स्वाहा । अच्युतेंद्रोपरि अहमिंद्रपुष्पांजलिः ।

अथ विधिशेषम् ।

पूर्वादिदिक्षु नेत्रा मंगलशांतिकजयेष्टसिद्ध्यर्थम् ।
मंगलशस्त्रपताकाकलशानथ योजयेष्टशः क्रमशः ॥ २०४ ॥

मंगलादिस्थापनाप्रतिज्ञानाय दिक्षु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

लौकांतिक देवोंके लिये पुष्पोंको चढावे ॥ २०२ ॥ "मुख्यो" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर अहमिन्द्र देवोंके लिये पुष्पांजलि चढावे ॥ २०३ ॥ अब शेष विधान कहते हैं । "पूर्वादि" इत्यादि श्लोक पढकर मंगल आदि आठ द्रव्योंकी स्थापनाके लिये दिशाओंमें पुष्प अ-

प्राग्वत् प्राच्य तथा दलेष्वनुदिशं देवीर्जयाद्याः पृथक्—
जंभाद्यांश्च विदिग्दलेषु धिनुयां दिग्द्वाररैरक्षिणः ॥ २१४ ॥

बहिर्मंडलपूजाप्रतिज्ञानाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् । अत्रापि पूर्ववत् कर्णिकाः परब्रह्मादिपदैः पूरयित्वा तत्पद्मदलेषु पूर्वादिदिक्षु ओं जये स्वाहा, ओं विजये स्वाहा, ओं अजिते स्वाहा, ओं अपराजिते स्वाहा । आग्नेय्यादिविदिक्षु च ओं जंभे स्वाहा, ओं मोहे स्वाहा, ओं स्तंभे स्वाहा, ओं स्तंभिनि स्वाहा इति लिखित्वा बहिश्चतुर्द्वारचतुष्कोणमंडलं विलिख्य तद्बहिः पूर्ववद्दिक्पालान् द्वारपालान् यक्षदेवांश्च संस्थाप्य चिद्रूपं विश्वरूपेत्यादिविधिना कर्णिकार्चनं संक्षेपेण कृत्वा जयादिदेवीर्दिक्पालान् द्वारपालान् यक्षांश्च पूजयेत् । अथ जयादिदेवतार्चनम् ।

जयाद्याः शब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् २१५

काष्ठासन (पट्टा) स्थापित करे ॥ २१३ ॥ अब चार पीठोंकी पूजा कहते हैं । "तद्वेदीं" इत्यादि श्लोक कहकर बाह्यमंडलकी पूजाके लिये पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २१४ ॥ यहांपरभी पहलेकी तरह कर्णिकामें अरहंत आदि पदोंको लिखकर उस कमलपत्रपर पूर्व आदि दिशाओंमें "ओं जये" इत्यादि चार पद लिखे । फिर आग्नेयी आदि विदिशाओंके पत्तोंपर "ओं जंभे" इत्यादि चार पद लिखे । उसके बाद बाहरके चार दरवाजोंपर चौकोन मंडल लिखकर उसके बाहर पहलेकी तरह दिक्पाल, द्वारपाल और यक्षदेवोंको स्थापन करके "चिद्रूपं" इत्यादि कही हुई विधिसे कर्णिकाकी संक्षेपसे पूजा करे । फिर जयादि देवी, दि-

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

जये जयाद्ये विजये विजैनि जैने जितेपराजितेस्मिन् ।
जंभेवमोहनेस्ति भाः स्तंभिनि रक्ष रक्षास्मान ॥ २१६ ॥

स्वोपग्रहाय पत्रेषु पुष्पाक्षतानि क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

इहार्हतो विश्वजनीनवृत्तेः कृतौ कृताराातिजये जये त्वाम् ।
सद्गंधपुष्पाक्षतदीपधूपफलादिसंपादनया धिनोमि ॥ २१७ ॥

ओं ह्रीं जये देवि आगच्छागच्छ इदं............................... ।

जिनाधिराजे विजयैकविद्ये जगद्विजेतुः कुसुमायुधस्य ।
विजेतरि स्फारितभूरिभक्ति त्वामत्र यज्ञे विजये यजेहम् ॥ २१८ ॥

ओं ह्रीं विजये देवि... ।

कपाल, द्वारपाल, और यक्षोंको पूजे ॥ अब जया आदि देवताओंकी पूजा कहते हैं । जया इत्यादि श्लोक बोलकर आवाहनादिपूर्वक हर एककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञाके लिये पुष्प-अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ २१५ ॥ "जये" इत्यादि श्लोक बोलकर अपने उपकारके लिये पत्रोंपर पुष्प अक्षतको क्षेपण करे ॥ २१६ ॥ अब प्रत्येककी पूजा कहते हैं । "इहा" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर जया देवीको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ २१७ ॥ "जिना" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर विजयाको अर्घ चढावे ॥ २१८ ॥ "जग" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं"

जगज्जयोज्जागरिणां कषायद्विषां न केनापि जितं जिनेंद्रम् ।
आवर्जयंतामृजितोर्जितोजामूर्जास्तये त्वामजितेर्चयामि ॥ २१९ ॥
ओं ह्रीं अजिते.. ।

पराजितारेरपराजितास्त्रैरप्याश्रितस्यारिपराजयाय ।
जगत्प्रभोरत्र महे महामि पराजिते त्वामपराजितेद्य ॥ २२० ॥
ओं ह्रीं अपराजिते.. ।

व्यामोहनिद्रां भुवनानि जंभ विशंत्युद्धरतो जिनस्य ।
वितन्वतां यज्ञपजन्यहंत्रीं त्वा देवि जंभे परिपूजयामि ॥ २२१ ॥
ओं ह्रीं जंभे.. ।

चिरं जगन्मोहविषेणसुप्तं स्याद्वादमंत्रेण विबोधयंतम् ।
श्रीबुद्धमाराधयतां हि मोहे त्वां मोहयंतीमहितान्महामि ॥ २२२ ॥
ओं ह्रीं मोहे.. ।

बोलकर अजिताको जलादि चढावे ॥ २१९ ॥ "पराजि" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर अपराजिताको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ २२० ॥ "व्यामोह" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर जंभा देवी पर जलादि चढावे ॥ २२१ ॥ "चिरं" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर

जिनं महाभव्यविशुद्धिभावप्रासादसुस्तंभमुपास्ति यस्तम् ।
प्रकुर्वतं स्तंभयतां स्तभंतं स्तंभे सृजंतीं भवतीं यजामि ॥ २२३ ॥

ओं ह्रीं स्तंभे देवि.. ।

प्रवादिनां स्तंभयतोत्र मानस्तंभेन दूरादपि मंक्षु मानम् ।
जिनेस्य यज्ञेर्चनया सपत्नधीस्तंभिनि स्तंभिनि संस्तुवे त्वाम् ॥ २२४ ॥

ओं ह्रीं स्तंभिनि देवि.. ।

इत्येताः पृथुयशसो जयादिदेव्यो देशामभिरुचिते जिनेंद्रयज्ञे ।
पूर्णाहुतिमिह लंभिताः प्रपूज्य श्रेयांसि प्रददतु भव्यभाक्तिकेभ्यः॥ २२५ ॥

पूर्णाहुतिः ।

प्राच्याद्याग्नेयकोणादिपत्रेष्विष्टाः क्रमादिमाः। अष्टौ जयादिजंभादिदेव्यः शांतिं वितन्वताम् ॥

इष्टप्रार्थना । इति जयादिदेवतार्चनाविधानम् । अथ दिक्पालान् द्वारपालान् यक्षांश्च संक्षेपेण सत्कुर्यात् । इति बहिर्मंडलचतुष्टयार्चनविधानम् ।

मोहा देवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२२ ॥ "जिनं" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर स्तंभादेवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२३ ॥ "प्रवादि" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर स्तंभिनीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२४ ॥ "इत्येताः" इत्यादि श्लोक बोलकर स-

इत्थं निष्ठितपूज्यपूजनविधिः शक्रो महार्घेण तां
त्रिर्वेदीमवताय भूतिभरतो भक्त्या परित्यानतः ।
सद्रूपाश्चतुरोष्ट वा सुकुसुमैस्तं जापयन् प्रतस-
द्रूपं मंत्रमनादिसिद्धमुरुधीरीशानवेदीं यजेत् ॥ २२७ ॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं। चत्तारि मंगलं अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहुमंगलं केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगोत्तमा अरहंतलोगोत्तमा सिद्धलोगोत्तमा साहुलोगोत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारिसरणं पव्वज्जामि अरहंतसरणं पव्वज्जामि सिद्धसरणं पव्वज्जामि साहुसरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ह्रीं स्वाहा। अनादिसिद्धमंत्रः। इति मूलवेदिकार्चनविधानम्। अथोत्तरवेदिकार्चनम्।

वेद्यां चाग्यां सुरगिरिशिलावेदित्रत्कर्णिकायां
माग्वन्मंत्रानथ कजदलेष्वष्टसु श्र्यादिदेवीः ।

चको पूर्णार्घ देवे ॥ २२५ ॥ "प्राच्या" इत्यादि श्लोक बोलकर इष्टवस्तुकी प्रार्थना करे ॥ २२६ ॥ इसतरह जया आदि देवताओंकी पूजा हुई। इसके बाद दिकपाल, द्वारपाल और यक्षोंका संक्षेपसे सत्कार करे ॥ इसप्रकार बाह्य मंडलचतुष्ककी पूजाविधि जानना। "इसप्रकार" वह इंद्र पूजाविधि करके अनादि सिद्ध मंत्रको जपता हुआ ईशानवेदीको पूजे ॥ २२७ ॥ "णमो" इत्यादि स्वाहातक अनादिसिद्ध मंत्र जानना ॥ इसतरह मूलवेदी-

अष्टेंद्रादीन् क्षितिपुरबहिर्दिक्षु देवीजयाद्या
न्यस्य द्वारेष्वनु च चतुरो यक्षदेवान् यजामि ॥ २२८ ॥

ईशानवेद्यां यागमंडलपूजाप्रतिज्ञानाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् । अथ पूर्वविधिना कर्णिकांतःस्थापितां परब्रह्मादिपूजां विधाय पद्मदलेष्वष्टौ श्र्यादिदेवीः पूजयेत् । तथाहि ।

याः सामानिकपर्षदंबुजपरीवारान्वया ध्रूर्ध्वभू
पद्मादिह्रदपुष्करेंदुत्रिंशद्प्रासादवासा मुदा ।
सेवंते बहुधा जिनेंद्रजननीं श्र्यादीन्नयंत्यो गुणान्
भांती पुष्पमुखैः करात्तकलशैस्ताः श्र्यादिदेवीर्यजे ॥ २२९ ॥

श्र्यादिदेवीसमुदायपूजाविधानाय पत्राष्टके कुंकुमाघुलितपुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अथ पृथगिष्टिः ।

की पूजाविधि हुई । अब उत्तरवेदीकी पूजा कहते हैं । "वेद्यां" इत्यादि श्लोक पढकर ईशानवेदीमें यागमंडलकी पूजा करनेके लिये पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २२८ ॥ अब पहले कही हुई विधिके अनुसार कर्णिकाके मध्यमें स्थापित अरहंत आदि परमेष्ठीकी पूजा करके आठ कमलपत्रोंपर श्री आदि आठ देवियोंकी पूजा करे । उसीको कहते हैं । "याःसामा" इत्यादि श्लोक बोलकर श्रीआदि देवीयोंके समूहकी पूजा करनेके लिये आठ पत्तोंपर केशरसे लेपे हुए पुष्पअक्षतोंको क्षेपण करे ॥ २२९ ॥ अब जुदी जुदी पूजा कहते हैं । "श्र्याद्याः"

ऽपायाः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः।अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात्॥२३०॥

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

क्षोण्या पार्श्वततेंद्रकार्मुकतडिद्वंडद्युतिं तन्वतो
डिम्याद्रेरुपरित्यमुज्ज्वलयतः पद्मह्रदं पुष्करात् ।
यत्यद्रव्यवरैः सुराळह्रदतैर्गर्भं विशोध्य श्रियं
तन्वाना जिनमातरं भजति या सा श्रीस्तडिद्धार्च्यते ॥ २३१ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते श्रीदेवि आगच्छागच्छ इदं जलं........ ।

नानारत्नमयूखपार्श्वखचितक्षीरादवेळाक्षिपो
मूर्द्धन्युल्लसतो महाहिमवतः पद्मान् महापाद्मिके ।
संविद्वालसखीमुपेत्य विनयाल्लज्जां दृशोर्व्यंजती
यार्हन्मातुरुपासनां वितनुते सा ह्रीर्जपाभार्च्यते ॥ २३२ ॥

इत्यादि श्लोक बोलकर आवाहनादिपूर्वक हरएककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञा करनेके लिये पत्तोंपर पुष्प और अक्षत क्षेपण करे ॥ २३० ॥ "क्षोण्या" इत्यादि तथा "ओं सुवर्ण" बोलकर श्रीदेवीको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ २३१ ॥ "नानारत्न" इत्यादि तथा "ओं रक्त" इत्यादि बोलकर ह्री देवीको अर्घ चढावे ॥ २३२ ॥ "उद्यंतं" इत्यादि तथा "ओं

ओं रक्तवर्णे चतुर्भुजे पुण्पमुखकलशहस्ते ह्रीदेवि इदं........................ ।

उद्यंतं सहतोभितो हरिधनुष्कीर्णा रविं सीकरै—
मूर्द्धोर्वी निषधस्य चुंबति महापद्मादपि ज्यायसी ।
कंजादेत्य तिगिंछ एधितरुचेर्धैर्यं परं पुष्यतीं
या जैनां भजतोंबिकामुपहरे तां चीनवर्णां धृतिम् ॥ २३३ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुण्पमुखकलशहस्ते धृति देवि इदं........................ ।

पार्श्वोद्धासिविचित्ररत्नरुचिरां वैडूर्यगात्रीं गदां
द्वीपेनेव धृतां पुनात्युपरिमे नीलाचलं नीरजात् ।
भातः केसरिणि श्रियेत्य विधिवद्या सज्जयंती स्तुतौ
रुक्माभा वरिवस्यतीशजननीं तां कीर्तिमर्चाम्यहम् ॥ २३४ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुण्पमुखकलशहस्ते कीर्तिदेवि इदं........................ ।

भास्वद्भक्तिविचित्रितोभयवपुर्भोगेंद्रनागप्रती—
क्षिण्णो रुक्मिगिरेर्महांतमुपरित्यं पुंडरीकं श्रितात ।

स्व" इत्यादि बोलकर धृति देवीको जलादि चढावे ॥ २३३ ॥ "पार्श्वो" इत्यादि तथा "ओं स्व" इत्यादि बोलकर कीर्ति देवीको अर्घ चढावे ॥ २३४ ॥ "भास्वद्भ" इत्यादि तथा "ओं स्व" इत्यादि बोलकर बुद्धिदेवीको जलादि चढावे ॥ २३५ ॥ "रत्नाग्र" इत्यादि तथा "ओं

याज्जादेत्य हिरण्यरुक्परिचरत्यर्हत्सवित्रीं जग—
द्बोधं कंदलयंत्यलं बलिमहं तस्यै ददे शुद्धये ॥ २३५ ॥
ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते शुद्धिदेवि इदं......................।

रत्नांशुच्छुरितोभयांतकनकश्रोणीध्रशृंगास्निहः
रक्कुर्वाणमधित्यकां शिखरिणो यत्पुंडरीकं श्रिया।
आवभ्राति ततोंबुजादुपरतावायै भवोद्भासिनी
भर्माभा जुषतेंबिकां जिनपतेर्लक्ष्मीं यजे तामहम् ॥ २३६ ॥
ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते लक्ष्मी देवि इदं............।

दृश्यादृश्यवपुर्भिरस्फुटशची साक्षात्सुखं श्र्यादिभि–
स्तत्तन्मंगलधारणादिविधाभिर्देव्या यदुद्भाव्यते
तत्मत्यूहनिराकृतं विदधती तस्या मनोनिर्वृतिं
कांचित्कांचनकांतिरुत्किरति या शांतिर्मया सार्च्यते ॥ २३७ ॥
ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते शांति देवि इदं............।

सु" इत्यादि बोलकर लक्ष्मीदेवीको अर्घ चढावे ॥ २३६ ॥ "दृश्यादृश्य" इत्यादि तथा "ओं
सु" इत्यादि बोलकर शांतिदेवीको जलादि चढावे ॥ २३७ ॥ "संक्रांते" इत्यादि तथा "ओं

संक्रांतेंदु यथाम्रुखीनवलवकुर्क्षि जिनाध्यासितं
बिभ्रत्यावपुषीश्वरे गुणगणे भोगेषु भक्तेषु च ।
देव्याः पुष्टिमनुक्षणं प्रगुणयंत्यन्यासु या स्तभ्यते
गांगेयांगरुगर्हतोर्हति महे सा पुष्टिरिष्टिं न काम् ॥ २३८ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते पुष्टिदेवि इदं.................. ।

इत्यष्टता दिक्कुमारीर्जिनांबापरिचारिकाः । प्रसाद्य हविषां पूर्णाः पूर्णाहुत्यो विदध्महे ॥२३९॥

पूर्णाहुतिः ।

एवं संभाविताः कर्तुर्जिनजन्ममहोत्सवम् । श्रीमुख्यदेवतास्त्वष्टास्तुष्टये संतु यज्वनाम् ॥२४०॥

इष्टप्रार्थनाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् । एवं श्र्यादिदेवीरभ्यर्च्य दिक्पालादीन् पूर्ववत्क्रमेण पूजयेत् । इत्युत्तरवेदिकार्चनविधानम् ।

ऐतिह्यादिति यागमंडलपदं निर्वर्त्य वेदीविधिं
चिह्नत्यं शुभभावसंपतिपरां निर्माप्य भव्यात्मनाम् ।

सु" इत्यादि बोलकर पुष्टि देविको जलादि चढावे ॥ २३८ ॥ "इत्यष्टे" इत्यादि श्लोक बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ २३९ ॥ "एवं" इत्यादि श्लोक बोलकर इष्ट वस्तुकी प्रार्थनाकेलिये

दृष्ट्वामृश्य च सर्वेशः प्रतिकृतीराशाधरोंतश्चरत्-
कीर्तिः सोत्तरसाधकोनुरहसं गच्छेत्पुरा कर्मणे ॥ २४१ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि यागमंडलपूजाविधानीयो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

हे हुए क्रमसे पूजे। इस तरह उत्तर वेदीकी पूजा विधि हुई। मैंने (आशाधरने) यह वेदीका विधान शास्त्रके अनुसार कहा है। जो कोई इस विधीको जानकर और विचार कर करेगा वह मुमुक्षु भव्यजीव उत्तम सुखको अवश्य प्राप्त होगा ॥ २४१ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें यागमंडलकी पूजाविधी कहनेवाला तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥



अथो विविक्तदेशस्थः प्रतिष्ठाचार्यकुंजरः। प्रतिष्ठाविधये कुर्यात् परिकर्मेदमादृतः ॥ १ ॥
प्रागेकां सुखसंचार्यां प्रातिहार्यादिशालिनीम्। पुरोधाय सुरम्यार्च्यां प्रतिष्ठेयं निरूपयेत्॥२॥

शस्ताशस्तात्मभावार्जितदृपत्रजिनच्छेददृप्यत्परा यः
स्वर्गाच्छ्भ्रादथैत्य त्रिजगदुपकृतिव्यक्तिमाहात्म्यसंपत् ।
शक्राद्यैर्यातिरागादहमहमिकया सेव्यते सिद्ध्यधीशः
पश्यंत्यज्ञास्तदर्चां स्वचितामिह नये स्थाप्यतेर्हत्स तेभ्यः ॥ ३ ॥

अब चौथा अध्याय कहते हैं। याग मंडलकी पूजाके बाद उत्तम प्रतिष्ठाचार्य एकांतस्थानमें प्रतिष्ठा विधिके लिये इस आगे कहेजानेवाली क्रियाको करे ॥ १ ॥ सबसे पहले एक प्रतिमाको लावे। जोकि अच्छीतरह अपनेपर चल सके, प्रातिहार्य आदि सहित हो और देखनेमें बहुत अच्छी हो ॥ २ ॥ " शस्ता " आदि श्लोकोंमें जैसा प्रतिमाका वर्णन किया है वैसी प्रतिमाको [illegible]

कल्याणैः श्रितभूतभाविसुनयत्रित्वैभयैः पंचाभि-
श्चित्तं वित्तमशेषमोहमथनाद्धासत्यविद्याभिदि ।
प्रत्यग्ज्योतिषि तीर्थकृत्वनियतं निर्बीजयोगे स्फुरद्
ध्यात्वार्चां स्थिरचित्क्षणाष्टकपदे यो क्षेत्रबीजाक्षरम् ॥ ४ ॥

द्रव्यैः स्वैः सुनयार्जितैर्जिनपतेर्बिम्बं स्थिरं वा चलं
ये निर्माप्य यथागमं सुदृपदाद्यात्मनान्येन वा ।
लग्ने वाल्गुनि लंभयंति तिलकं पश्यंति भक्त्या च ये
ते सर्वेपि महोदयांतमुदयभव्यां लभंतेऽद्भुतम् ॥ ५ ॥

प्रतिष्ठेयनिरूपणा । अथ सकलीकरणम् । अत्रादावनेन मंत्रेण स्वहस्तौ पवित्रयेत् । ओं णमो अरहंताणं णमो केवलिणे सुअंगदेवि पसत्थ हत्थेहिं हुं फट् स्वाहा । हस्तद्वयपवित्रकरणमंत्रः । ततः

भव्यजीव उत्तमपदको पाते हैं ॥ ३ । ४ । ५ । यह प्रतिमाका वर्णन हुआ । अब सकलीकरण क्रिया कहते हैं । उसमें पहले " ओं णमो " इत्यादि मंत्रसे अपने हाथ पवित्र करे । उसके बाद सुरभिमुद्रा धारण करके इस आगेकी पवित्र विद्याको सात बार चिंतवन करे । वह विद्या "ओं णमो" से लेकर स्वाहा तक कही है। उसके बाद अंगन्यास करे वह [illegible]

सुरभिमुद्रां धृत्वा इमां शुचिविद्यां सप्तवारान् न्यसेत्। ओं णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आगासगामीणं णमो विज्झायाणं णमो सव्वोसहिपत्ताणं णमो सयं बुद्धाणं णमो केवलिणे स्वाहा । इमा च। ओं अर्हन्मुखकमलवासिनि पापात्मक्षयंकरि श्रुतज्वालासहस्रप्रज्वलिते सरस्वति मम पापं हन हन क्षां क्षीं क्षु क्षौं क्षः क्षीरधवले अमृतसंभवे वं वं हूं स्वाहा । शुचीकरणमंत्रौ । ततः सकलीकुर्यात् । ओं अं नमः सुहृदये, ओं सिं स्वाहा शिरसि, ओं आं वषट् शिखायां, ओं ओं घे घे कवचं, ओं सां हूं फट् स्वाहा अस्त्रं, ओ ह्रौं वषट् नयनयोः । पुनः ओं ह्रां णमो अरहंताणं स्वाहा हृदये, ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं स्वाहा ललाटे, ओं ह्रूं णमो आइरियाणं स्वाहा शिरोदक्षिणे, ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं स्वाहा पश्चिमे, ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं स्वाहा वामे । पुनस्तान्येव पदानि ललाटे मूर्ध्नि दक्षिणे पश्चिमे वामे चेति न्यसेत् । सकलीकरणमंत्रः । ततः ।

ओं " उसहाइजिणं पणमामि सया अमलो विरजो वरकप्पतरु ।
सवकामदुहा मम रक्ख सदा पुरु विज्जणही पुरु विज्जणिही ॥ ६ ॥

"ओं" इत्यादि पहला मंत्र बोलकर हृदय स्थानको स्पर्श करे । दूसरेसे मस्तकको, तीसरेसे चोटीको चौथेसे कवचको पांचवेंसे अस्त्रको. और छठेमंत्रसे नेत्रोंको छुए। अथवा "ओं ह्रीं" इत्यादि पहले मंत्रसे हृदयका स्पर्श करे, दूसरेसे मस्तकका, तीसरेसे शिरके दाहिनी तरफका, चौथेसे पश्चिमकी तरफका, पांचवेसे बांई तरफका स्पर्श करे। इन्हीं पदोंको बोलकर मस्त-

ओं " अट्ठेव य अट्ठसया अट्ठसहस्सा य अट्ठकोडीओ ।
रक्खंतु ते सरीरं देवासुरपणमिया सिद्धा ॥ ७ ॥ स्वाहा ।

अनेन स्वस्यांगप्रत्यंगपरामर्शः कार्यः । ततः ओं धनु धनु महाधनु । स्वाहा । इमां धनुर्विद्यां वामकरांगुलिपर्वसु विन्यस्य प्रतिमाग्रे वामपादांगुष्ठेन सरेफाग्रपुरस्सरं धनुरालिख्य वामपादेनाक्रम्य कायोत्सर्गेण स्थितः सन् ओं णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं थंभेइ जल जलण चिंतियमित्तेण पंचणमोकारो अरि मारि चोर राउल घोरुवसग्गं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः विणासेइ स्वाहा । इदं सप्तवारान् हृद्युच्चार्य अष्टोत्तरशतं धनुर्विद्यामावर्तयेत् । इति सकलीकरण विधानं । अथ प्रतिष्ठा ।

कके दक्षिण पश्चिम और वांयें भागमें स्थापन करे ॥ यह सकलीकरण मंत्रकी क्रिया हुई । उसके बाद छठे सातवें दो श्लोकमंत्र पढकर अपने अंग उपांगोंको छुए ॥ ६ ॥ ७ ॥ उसके पीछे "ओंधनु" इत्यादि धनुपविद्याको वांयें हाथकी उंगलियोंके पोरुओंमें स्थापनकर प्रतिमाके आगे वांयें पैरके अंगूठेसे रेफ सहित बाणयुक्त धनुपको लिखकर बांये पैरसे आच्छादितकर खड्गासनसे "ओं णमो" इत्यादि स्वाहा पर्यंत मंत्रको सातवार मनमें बोलकर एकसौ आठवार धनुपमंत्रको जपै । इसतरह सकलीकरण क्रियाका कथन किया । अब प्रतिष्ठा करनेकी विधि कहते हैं;—सकलीकरणादि कर्म करनेके बाद प्रतिष्ठाचार्य वेदीके पूर्वसिंहासनके

कृतकर्माधुनावेदीं प्राँच्यपीठाग्रभूतले । इह गंधांबुसंसेकसत्पुष्पप्रकारांचिते ॥ ८ ॥
भद्रासनं निवेशयात्र विश्वकर्मसमक्षतः । गर्भावतारकल्याणं स्थापयापीदमर्हताम् ॥ ९ ॥

ॐ मूलवेद्याः पूर्वस्यां दिशि जयादिपीठस्य पुरस्ताद्भद्रासनं निवेशयामीति स्वाहा । भद्रासननिवेशनम् ।

वंशक्षायिकदृक्सामिद्धसुधियां योस्मिन्मनूनामभू-
द्ये चेक्ष्वाकुकुरुग्रनाथहरियुग्वंशाः पुरोवेधसा ।
आधानादिविधिप्रबंधमहिताः सृष्टास्तदुत्थार्यभू-
भर्तृस्वामिकजीविता सुकुलजा जैन्यो जयंत्यंबिकाः ॥ १० ॥

भूत्यादित्रयदृग्विशुद्ध्यनुगचित्सत्कर्मणोआगम-
द्रव्यो गोतमगोत्रभागभिजनो नेमिस्तथा सुव्रतः ।
तद्वत्काश्यपगोत्रिणस्तदितरे णोकर्मनोआगम-
द्रव्योत्रेष्वभवन् स्वयं यदुदरेष्वंबाः प्रसीदंतु ताः ॥ ११ ॥

आगेकी जगहको गंधोदकसे छिडककर पुष्पोंको क्षेपण कर उस जगह पर कारीगरके सामने उत्तम सिंहासन रखे और "मैं अर्हत्प्रभुका गर्भकल्याणक स्थापन करता हूं" ऐसा कहे। उस समय "ॐ मूल" इत्यादि मंत्र बोलना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ "वंश" इत्यादि दो श्लोक बोलकर जिनमाताओंकी स्तुती करे ॥ १० ॥ ११ ॥ अब जिनमाताओंके नाम कहते है;—

मरुदेवीं वृषस्यांबा विजयामजितस्य च । सुषेणां संभवेशस्य सिद्धार्थां नंदनप्रभोः ॥१२॥
सुमंगलाह्वां सुमतेः सुसीमां पद्मरोचिषः । वसुंधरां सुपार्श्वस्य लक्ष्मणां चंद्रलक्ष्मणः॥१३॥
रामां श्रीपुष्पदंतस्य सुनंदां शीतलार्हतः । विष्णुश्रियं श्रेयसश्च वासुपूज्यप्रभोर्जयाम् ॥१४॥
सुशर्मलक्ष्मीं विमलार्हतोऽनंतस्य सुव्रताम् । ऐरिणीं धर्मनाथस्य कमलां शांत्यधीशिनः १५
सुमित्रां कुंथुनाथस्य अरभर्तुः प्रभावतीम् । मल्लेः पद्मावतीं वप्रां सुव्रतस्य मुनीशिनः॥१६॥
विनतां नमिनाथस्य शिवां नेमिजिनेशिनः। देवदत्तां च पार्श्वस्य वीरस्य प्रियकारिणीम्॥१७॥
चतुर्विंशतिमप्येताः सवित्रीस्तीर्थकारिणाम् । स्थापयामीह तद्गर्भपवित्रितजगत्त्रयाः ॥ १८ ॥

ऋषभनाथकी मरुदेवी अजितकी विजया, संभव नाथकी सुषेणा, अभिनंदनकी सिद्धार्था, सुमतिजिनकी सुमंगला, पद्मप्रभकी सुसीमा, सुपार्श्वकी वसुंधरा, चंद्रप्रभकी लक्ष्मणा, पुष्पदंतकी रामा, शीतलनाथकी सुनंदा, श्रेयांसनाथकी विष्णुश्री और वासुपूज्य प्रभुकी जया है ॥ १२ ॥ ॥१३॥१४॥ विमलनाथकी सुशर्मलक्ष्मी, अनंतनाथकी सुव्रता, धर्मनाथकी ऐरिणी, शांतिनाथकी कमला, कुंथुनाथकी सुमित्रा, अरनाथकी प्रभावती, मल्लिनाथकी पद्मावती, सुव्रतप्रभुकी देवदत्ता और महावीरप्रभुकी प्रियकारिणी—इन चौवीस जिनमाताओंकी स्थापना इस जगह करता हूं। इन्हींके गर्भसे तीन जगत पवित्र होता है । १५।१६।१७।१८॥ "ओं"

ओं मरुदेव्यादिजिनेंद्रमातरोत्र सुप्रतिष्ठिता भवंत्विति स्वाहा । जिनमातृस्थापनार्थं भद्रपीठस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

षण्मासान् भुवमेष्यतां नवदिवश्चाजग्मुपामर्हतां
पित्रोः सौधमपीद्धमुत्सृजति या रैदो महेंद्राज्ञया ।
स्वर्णा गावधुतामरद्रुमफलासारभ्रमं कुर्वतीं
व्यक्तुं तामिह रत्नवृष्टिमुचितं मुंचामि पुष्पोच्चयम् ॥ १९ ॥

ओं धनाधिपते अर्हत्पितासौधे रत्नवृष्टिं मुंच मुंचेति स्वाहा । कनकशलाका रत्नपंचकविमिश्रचित्रकुसुमांजलिं भद्रपीठस्याग्रतः प्रकिरेत् । रत्नवृष्टिस्थापनं ।

सर्वर्तुकामिवरवस्त्रफलप्रसूनशय्यासनाशनविलेपनमंडनानि ।
तत्तत्क्रियोपकरणानि तथेप्सितानि तीर्थेमशातुरुपदीकुरुतां धनेशः ॥ २० ॥

इत्यादि बोलकर जिनमाताओंकी स्थापनाके लिये सिंहासनके ऊपर पुष्पोंको क्षेपण करे। "षण्मासान्" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर सोनेकी सलाई पांच तरहके रत्न—इनसे मिले हुए पुष्पोंको सिंहासनके आगे बखेरै। इस तरह रत्नवर्षाका स्थापन हुआ॥१९॥ "सर्वर्तु" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर उत्तम कपड़े अंगूठी हार फल पत्र पुष्प आदिको सिंहासनके आगे रखे। इन सब वस्तुओंको शिल्पी ग्रहणकरे ॥ २० ॥ उसके बाद

ओं निधीश्वर जिनेश्वरमात्रे भोगोपभोगांगान्युपनयोपनयेति स्वाहा । चारुवस्त्रमुद्रिकाहारफल-पत्रपुष्पादिकं पीठाग्रे प्रतिष्ठयेत् । तच्च सर्वं विश्वकर्मा गृह्णीयात् ।

माताको सोलह स्वप्नोंका देखना।गर्जताहुआ सफेद ऐरावत हाथी १ बैल २ सिंह ३ देव हस्तियोंसे स्नान कराई गई लक्ष्मी ४ लटकतीं दो फूलोंकी मालायें ५ चांदनीयुक्त पूर्णचंद्रमा ६ ऊगता हुआ सूर्य ७ कमलोंसे ढके हुए सुवर्णमई कलशे ८ सरोवरमें क्रीडा करता मछलियोंका जोड़ा ९ दिव्य सरोवर १० चंचल लहरोंवाला समुद्र ११ रत्नजड़ा सिंहासन १२ मणियोंसे जटित विमान १३ नागेंद्रका भवन १४ प्रकाशमानरत्नोंकी राशि १५ धूमरहित जलती हुए अग्नि १६—ये सोलह स्वप्न हैं इनको देखकर माताको जगना । उसके बाद अपने पतिसें स्वप्नोंका फल सुनना । वह इस तरह है—पहले स्वप्नमें सफेद ऐरावत हाथी देखनेसे उत्तम पुत्रका होना, बैलके देखनेसे तीन लोकका गुरु होना, सिंह देखनेसे अनंत बलसहित होना, स्नान कराई गई लक्ष्मीके देखनेसे इंद्रोंकर सुमेरु पर्वतपर अभिषेक होना, पुष्पमाला देखनेसे धर्मतीर्थका प्रवर्तक होना, पूर्णचंद्रमा देखनेसे संसारको आनंदित करना, सूर्यके देखनेसे तेजस्वी होना, दो सुवर्णके घड़े देखनेसे रत्नादिकी खानिका स्वामी होना, मछलियोंका जोड़ा देखनेसे बहुत सुखी होना, सरोवर (तालाव) देखनेसे शुभलक्षणों सहित होना, समुद्रके देखनेसे केवलज्ञानी होना, सिंहासनके देखनेसे बड़े भारी राज्यका अधिकारी होना, विमान देखनेसे स्वर्गसे आकर जन्म होना, नागेंद्रका भवन देखनेसे अवधिज्ञानी

मंद्रं गर्जतमैन्द्रं द्विपमुडुपशयं तत्सगंधं गवेंद्रं
सिंहं शैलेन दंतं जलरुहि कमलां स्नाप्यमानां सुरेभैः ।
दाम्नी खे लंबमाने भ्रमदलिपटले चंद्रिकाकीर्णदिकं
चंद्रं प्रद्योतमर्कं सरसि झषयुगं क्रीडदन्योन्यरक्तम् ॥ २१ ॥
कुंभौ हेमौ सुधाद्यौ स्फुटकमलमुखौ छन्नमच्छाप्सरोब्जै-
श्चंचद्रत्नोर्मिमब्धिं तडिदुचितमरुच्चापजित्सिंहपीठम् ।
कांत्यान्योन्यं हसंत्या सुरफणिसदने द्यां करै रंजयंतं
रत्नौघं प्रज्वलंतं ज्वलनमपि निशातुर्ययामे द्विरष्टौ ॥ २२ ॥
स्वप्नान् दृष्ट्वा प्रबुद्धा झटिति घटितमुच्छृण्वती तूर्यनादान्
पत्युः प्रीतात्तदुक्त्या सुतनु सुतमिभस्ते स तादृग्महांतम् ।
सूते विश्वाग्रिमं गौः करिकुलकपितानंतवीर्यं स्मेंद्रै-
र्मेरौ स्नाप्य द्विमालं वृषसमयकरग्लौः प्रजाह्लादहेतुम् ॥ २३ ॥
भास्वान् दीप्रं विशारिद्वयमतिसुखिनं कुंभयुग्मं निधीशं
कासारो लक्ष्मसारं परविदमुदधिर्विष्टरं प्राज्यराज्यम् ।

होना, रत्नराशिके देखनेसे अनेक गुणोंका खजाना होना, निर्धूम अग्निके देखनेसे कर्मरूपी इंधनका जलाना—ये स्वप्नोंको फल है ॥ २१ । २२ । २३ । २४ ॥ स्वप्नोंको देखना स्थापन

घरेतारं सुरौकः फणिगृहमवधिज्ञानिनं सद्गुणाब्धिं
रत्नौघोद्दीप्तमग्निः स्तमितिविदितसतत्फलैर्पार्हदंवा ॥ २४ ॥

षोडश सत्पुष्पाणि तावंत्येव च सत्फलानि पारिवर्त्य पीठाग्रतः स्थापयेत् । स्वप्नावलोकनस्थापनम् ।

श्री ह्री धृते कीर्तिमती च लक्ष्मि शांते च पुष्टे च सहैत्य जिष्णोः ।
आज्ञानियोगेन तथा स्वभक्तया पित्रे निवेद्यात्ततदभ्यनुज्ञाः ॥ २५ ॥
विशोध्य गर्भं सुपवित्रदिव्यद्रव्यैर्यथास्थाननियोगमेनाम् ।
सुभक्तया गूढमुपास्यमानां शच्या भजध्वं पुरुदिक्कुमार्यः ॥ २६ ॥

ओं दिक्कुमार्यो जिनमातरमुपेत्य परिचरत परिचरतेति स्वाहा । सद्वस्त्रालंकारा अष्टौ वरकुमारीर्मंगलतांबूलहस्ताः संनिधाप्य पीठं परितः सकुंकुमरंजितपुष्पाक्षतं क्षिपेत् । गर्भशोधनपूर्ववद्दिक्कुमारीपरिचर्यास्थापनं ।

करनेकेलिये सोलह उत्तम पुष्पोंको तथा सोलह उत्तम फलोंको सिंहासनके आगे स्थापन करे । श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी शांति पुष्टि—इन देवियोंकर गर्भ शोधन करना ॥ २५ । २६ ॥ आठ कुमारी कन्यायें स्वच्छ वस्त्र आभूषणोंको पहनके हाथमें फल आदि मंगलीक द्रव्य लेकर सिंहासनके पास आके केशर मिले हुए पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे । य-

सर्वौषधिचंदनपंचमृद्भिर्विलिप्य तीर्थोदकपंचकेन ।
विशोध्य पीठं जिनमब्जगर्भे गर्भोपमेस्मिन्नवतारयामि ॥ २७ ॥

तामेव रहसि पुरा निरूपितप्रतिष्ठेयामर्हत्प्रतिमां नूतनासितनासितसद्वस्त्रप्रच्छादितां पुरस्सरटंकिकाकरविश्वकर्मसौधर्मेन्द्रौ महोत्सवेनानीय सुविशुद्धभद्रासनगर्भपद्मे निवेशयेतां ।

यो गंगांबुसुरत्नपुष्पकृतभूपस्कारामिंद्रासन—
द्रकूपं प्रमदाकुलीकृतजगद्गर्भे प्रविश्योत्तमे ।
लग्ने त्रामातिरंजयन् रविरिह प्राची परानुग्रह-
ग्राहाद्यन्वृतिवर्द्धतेस्म सुदृशां सोऽयं जिनस्तन्मुदे ॥ २८ ॥

ओं णमोर्हते केवलिने परमयोगिने शुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धकर्मेन्धनाय सौम्याय शांताय वरदाय

ह गर्भशोधन और दिक्कुमारियोंकी सेवाविधि स्थापन कीजाती है । सर्वौषधि चंदन आदिसे सिंहासनको पवित्र करके कारीगर और सौधर्मेंद्र दोनों उत्तम वस्त्रसे ढकी हुई प्रतिष्ठेय प्रतिमाको महान उच्छवके साथ लाकर शुद्ध सिंहासनके भीतर कमलपत्रमें स्थापित करें ॥ २७ ॥ उसके वाद " यो गंगां " इत्यादि तथा " ओंणमो " इत्यादि बोलकर कुंकुसे रंगे हुए चमेलीके पुष्प तथा अक्षतोंको मूलनायक और दूसरी प्रतिमाओंके ऊपर क्षेपण करें ॥ २८ ॥ गर्भावतार विधि कहते हैं । "दृक् " इत्यादि दो श्लोक बोलकर

अष्टादशदोपविवर्जिताय स्वाहा । जात्यकुंकुमपिंजारितजातिपुष्पाक्षतं तस्या अन्यासा च प्रतिष्ठेयमाना-नामुपरि क्षिपेत् । गर्भावतारणं ।

दृक्शुद्धयादिविशेषवद्धसुकृतस्कंधप्रसर्गांगिक-
स्फूर्जच्छुष्मणि विश्वकर्माणि निजव्यापारयोग्यं वपुः ।
सद्गुमस्तभरास्त्रिबोधरुचिभागास्येन योर्काब्दवद्
गर्भे मातुरिभाकृतिर्वसति वै सोत्रावतीर्णः प्रभुः ॥ २९ ॥
इत्युक्त्वा प्रणतामहत्तरिकया निर्दिश्यमाना पृथक्
स्थानाख्यादिभिदा जिनेंद्रजननीमभ्यर्च्य नुत्वा स्फुटं ।
नाथं पत्रमुदाभिनीय पितरं चापृच्छ्य जग्मुः पदं
स्वं शक्राः स जयत्ययं जिनपतेर्गर्भावतारोत्सवः ॥ ३० ॥

जिनमातृपूजनार्थं भद्रासनगर्भनिवेशितप्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

अथेंद्रैः सिद्धचारित्रशांतिभक्तिभिरादरात् । गर्भावतारकल्याणक्रिया तत्यास सूरिभिः॥३१॥

जिनमाताके पूजनके लिये सिंहासन (भद्रासन) में स्थापित प्रतिमाके आगे पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २९।३० ॥ उसके बाद वे इंद्र सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति शांतिभक्ति—इन तीनोंको करके गर्भावतार कल्याणकी समाप्ति करें ॥ ३१ ॥ इस तरह गर्भावतार कल्याणककी विधि

इति गर्भावतारकल्याणस्थापना । अथ जन्मकल्याणस्थापना ।

देवानां नमयन् शिरांसि समनांस्याकंपयन्नासना-
न्यभ्रं निर्मलयन् सदिक्सुमनसो देवद्रुमैर्वर्षयन् ।
जन्यन् शीतसुगंधिमंदमनिलं यः सिंधुमुद्वेल-
माधुन्वन् स धराधरां च निरगात् कुक्षेः शुभेद्धोपसः ॥ ३२ ॥

वस्त्रापनयनम् ।

किं तां सवित्रीमिह वर्णयामि किं चर्चये लग्नमथास्पदं तत् ।
यदेष देवो भुवनत्रयैकगुरुः स्वयं स्वप्रसवेधिचक्रे ॥ ३३ ॥
पुण्याहमद्याद्य मनोरथा नः पूर्णा जगंत्यद्य सनायकानि ।
प्रमोदते कोद्य न चेतनोस्मिन्नृजेपि जन्मात्ययिदं प्रपन्ने ॥ ३४ ॥

जिनजन्मस्थापनाय तस्या अन्यासां च प्रतिष्ठेयप्रतिमानामुपरि पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

पूर्ण हुई । अब जन्मकल्याणककी स्थापना कहते हैं । "देवानां" इत्यादि श्लोक पढ़कर वस्त्रको अलग कर देना ॥ ३२ ॥ "किं तां" इत्यादि दो श्लोक बोलकर जिन भगवानके जन्मकी स्थापना करनेके लिये मूलप्रतिमा तथा अन्य प्रतिष्ठेय प्रतिमाओंके ऊपर पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ३३।३४ ॥ पसेवरहित शरीर १ मलरहित शरीर २ सम चतुरस्र

निःस्वेदत्वमनारतं विमलता संस्थानमाद्यं शुभं
तद्वत्संहननं भृशं सुरभिता सौरूप्यमुच्चैः परम् ।
सौलक्षण्यमनंतवीर्यमुदितिः पथ्याप्रियासृक्य यः
शुभ्रं चातिशया दशेह सहजाः संत्वर्हदंगानुगाः ॥ ३५ ॥

सनवव्यंजनशतैरष्टाग्रशतलक्षणैः । विचित्रं जगदानंदि याज्जिनांगं तदस्त्विदं ॥ ३६ ॥

सहजदशातिशयस्थापनार्थं प्रतिमोपरि दशपुष्पीमावपेत् ।

भृंगाराब्दातपत्रोज्ज्वलचमररुहाण्युद्वहंत्योष्टशो या
द्वात्रिंशद्दिक्कुमार्यो जिनजनुषि भजंत्यंबिकायाश्चतस्रः ।

संस्थान ३ वज्रवृषभनाराच संहनन ४ सुगंधमय शरीर ५ अत्यंत सुंदर शरीर ६ शुभ एक हजार आठ लक्षणवाला शरीर ७ अतुल बल ८ हितमित वचन ९ दूधके समान सफेद लोहू १० ये दश अतिशय जन्मके साथ स्वभावसे ही उत्पन्न होते हैं ॥ ३५ ॥ जिनेंद्रका शरीर नौसौ व्यंजन और एकसौ आठ लक्षण सहित होता है वह यही है ॥ ३६ ॥ ऐसा कहकर स्वभावसे उत्पन्न दश अतिशयोंकी स्थापनाकेलिये प्रतिमाके ऊपर दस पुष्प रखे । "भृंगारा" इत्यादि तथा " ओं रुचक " इत्यादि कहकर भद्रासनपर विराजमान प्रतिमाके चारों तरफ कुंकुसे रंगे हुए पुष्प अक्षतोंको बखेरै ॥३७॥ यह विजयादि देवताओंका सत्कार स्थापन

गेहं विद्युत्कुमार्यो रुचकवरनगाग्रास्पदा द्योतयंते
या चाष्टौ जातकर्मा दधाति तदनुगास्ताः स्फुरंत्वत्र धरन्याः ॥ ३७ ॥

ओं रुचकवरागिरींद्राशिखरानिवासिन्यो विजयादिदेव्यो यथास्वमर्हत्प्रभुमिहेदानीं परिचरंत्विति स्वाहा । पीठस्थप्रतिमां सर्वतः कुंकुमरंजितपुष्पाक्षतं विकिरेत् । विजयादिदैवतोपास्तिस्थापनं ।

दिव्यद्रव्यविशुद्ध एव जठरे यो रत्नवृष्टिं क्षण—
प्रीतायाः पयसीव पद्मयमवसन्मातुः स्वयं शुद्धिमान् ।
यन्नामापि विशुद्धयेस्ति जगतो ध्यायंति यं योगिन—
स्तस्याप्याकरशुद्धिमेप विधिरित्यातन्वतां देवताः ॥ ३८ ॥

आकरशुद्धिविधानख्यापनार्थं तीर्थोदकाप्लुतपुष्पाणि प्रतिमोपरि निदध्यात् ।

घंटासिंहासनकजलरुहां निःस्वनैरदेयोस्त्रै—
ज्ञात्वातुल्यजिनजनिमुपेत्योच्चकैः स्वस्वभूत्या ।

किया । " दिव्य " इत्यादि श्लोक पढकर आकरशुद्धिकी विधि दिखलनेकेलिए तीर्थ जलसे धोयें हुए पुष्पोंको प्रतिमाके ऊपर क्षेपण करे ॥ ३८ ॥ " घंटा " इत्यादि श्लोक बोलकर इंद्र और यजमान आदिकोंके ऊपर उन अमुक नामवाले इंद्रादि भावोंको स्थापनकेलिए सौधर्म प्रतिष्ठाचार्य पुष्प और अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ३९ ॥ उसके वाद " अयं "

कल्पज्योतिर्वनभवनगीर्वाणनाथाः स्वयं यत्
तत्कल्याणं यथुरभिनयत्यत्रतं नाम तेमी ॥ ३९ ॥

इंद्रयजमानादिषु तत्तदिंद्रादिभावस्थापनाय सौधर्मः पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

अयं शच्या गुप्तं कृतवति नुतिं छद्मशयना—
न्निमील्यांबा मायातनयमुपहृत्यार्हति ते ।
समागत्यश्च्यादित्रजमनुव्रजंत्याक्षिकरणीः
शिरो निधानाद्यैः सफलयति सेंद्रोभ्रगगजः ॥ ४० ॥

इंद्राण्या भद्रासनादुद्धृत्य समर्थमाणां प्रतिमां जय जयेति वदन् प्रणतिशिराः करकमलाभ्यां गृहीत्वा सर्वसंघसमन्वित इमानि वृत्तानि पठन्नुत्तरवेदीं नीत्वा जन्माभिषेकोत्सवाय स्नपनपीठे निवेशयेत् ।

यः श्रीमदैरावणवाहनेन निवेशितोंके विधृतातपत्रः ।
ईशानशक्रेण सनत्कुमारमाहेंद्रसच्चामरवीज्यमानः ॥ ४१ ॥

इत्यादि श्लोक बोलकर इंद्राणी भद्रासनसे प्रतिमाको उठाकर जय जय शब्द करती हुई मस्तक नवाकर हस्तकमलोंपर रखती हुई सब जनसंघके साथ आगे कहे जानेवाले श्लोकोंको पढती हुई उत्तर वेदीपर ले जाकर जन्माभिषेक उत्सव करनेके लिए स्नान करनेके आसनपर रखे ॥ ४० ॥ फिर “ यः श्री ” इत्यादि आठ श्लोकोंको तथा “ ओं ह्रीं ” इत्यादिको

शच्यादिभिः श्र्यादिभिरप्युदारं देवीभिरात्तोज्ज्वलमंगलाभिः ।
पुरस्सरंतीभिरिवाप्सरोभिरग्रे नटंतीभिरुपास्यमानः ॥ ४२ ॥
शेषैस्तु शक्रैर्जय जीव नंद प्रसीद श्वश्वत्प्रतप क्षिपारीन् ।
इत्यादि वागुल्वणितप्रमोदैर्मुहुः प्रसूनैरुपहार्यमाणः ॥ ४३ ॥
सुरैः स्फुटास्फोटितगीतनृत्यवादित्रहास्योद्धुतवालितानि ।
समंगलाशीर्धवलस्तुतीनि स्वैरं सृजद्भिः परिचार्यमाणा ॥ ४४ ॥
अहो प्रभावस्तपसां सुदूरमपि व्रजित्वा प्रतिमास्त्रपीक्ष्यः ।
यः सैष साक्षाद्ध्रुवमीक्षितोर्हन्नभेद्यनादिः स्वयमात्मवंधः ॥ ४५ ॥
सविस्मयानंदमिति ब्रुवाणैरालोक्यमानोभिमुखागतैः खे ।
देवार्षिभिः स्पर्धितदेवयुग्मं नभोगयुग्मैरपि सेव्यमानः ॥ ४६ ॥
प्रदक्षिणाध्वव्रजनेन नीत्वा पूर्वोत्तरस्यां दिशि मेरुशृंगम् ।
निवेश्य तत्रत्यशिलोग्रपीठे क्षीरोदनीरैः स्नापितः सुरेन्द्रैः ॥ ४७ ॥
तं देवदेवं जिनमद्य जातं शय्यास्थितं लोकपितामहत्वम् ।
इमं निवेश्योत्तरवेदिपीठे प्राग्वत्क्रमस्मिन् विधिनाभिषिंचे ॥ ४८ ॥

बोलकर पांडुकशिलाके ऊपर सिंहासनपर विराजमान करे ॥ ४१।४२।४३।४४।४५।४६।४७।
४८ ॥ उसके बाद आकर शुद्धिके अभिषेक स्वरूप जन्मभिषेकको दिखलाते हैं । "रत्न"

ओं ह्रीं अर्हं श्रीधर्मतीर्थाधिनाथ भगवान्निह पांडुकाशिलापीठे तिष्ठ तिष्ठेति स्वाहा । उत्तरवेदिकास्नपनपीठे प्रतिमानिवेशनमंत्रः। अथातः आकरशुद्ध्यभिषेकरूपेण जन्माभिषेकमनुक्रमिष्यामः।

रत्नस्वर्णमयोत्तरीयरसनासंव्यानमौलिप्रभै—
मेरुर्भाति वनैः सहस्ररहितं यो योजनान्युच्छ्रितः ।
लक्षं सोयमियं च पांडुकशिला दीर्घा शतं स्फाटिकी
साष्टौ चार्धशतं तात्र सुरभिः श्रेष्टार्द्धचंद्राकृतिः ॥ ४९ ॥
सोत्रायं पृथुमंडपोप्युपकृतो देव्योर्घहस्ता इमा—
स्तास्तान्याप्सरसाममूनि नटितान्यास्येतता योजनम् ।
निम्नाश्चाष्ट सुरैः पयोर्णवजलैर्भृत्वार्णमाणा इमे
ते कुंभाः स जिनोऽयमस्मि स हरिस्तत्काप्यहो संभृतिः ॥ ५० ॥

अभिषेकप्रकरणसज्जीकरणाय समंतात्पुष्पाक्षतं विकिरेत् । प्रस्तावना । ओं ऋषभादिदिव्यदेहाय सद्योजाताय महाप्रज्ञाय अनंतचतुष्टयाय परमसुखप्रतिष्ठिताय निर्मलाय स्वयंभुवे अजरामरपदप्राप्ताय चतुर्मुखपरमेष्टिने अर्हते त्रैलोक्यनाथाय त्रैलोक्यपूज्याय अष्टदिव्यनागप्रपूजिताय देवाधिदे-

---

इत्यादि दो श्लोक कहकर अभिषेक आरंभकी तयारी करनेके लिये चारों तरफ पुष्प अक्षत बखेरे ॥ ४९।५० ॥ " ओं ऋषभा " इत्यादि " स्वाहा " तक मंत्र बोलकर प्रतिमाके अंग

वार्ये परमार्थसन्निहितोस्मि स्वाहा । अनेन प्रतिमाया अंगप्रत्यंगानि परमामृशन् सप्तवारानभिमंत्र्य सकलीं कुर्यात् । ततो दशापि लोकपालानावाहनादिविधिनोपचरेत् । तथाहि ।

इंद्रा मिथाद्धदेवा शरपतिवरुणाधाररे देशनाग्रे धिष्णोशा दिशु वेद्या ? ॥५१॥

इंद्रादिदिक्पालानामावाहनादिपुरस्सराघ्यंपणाय समस्तहव्यद्रव्यं जुहोमीति स्वाहा ।

अथ पृथगिष्टिः ।

दिगीशाः शब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैतान्वो यजे प्रत्येकमादरात्॥५२॥

दिक्षु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अत्र रूप्याद्रिस्पर्द्धीत्यादि वृत्ताष्टकं प्रागुक्तमेव वक्ष्यमाणमंत्रोपेतं प्रयुंजीत । तथाहि ।

उपांगोंको छूकर सातवार मंत्रितकर सकलीकरण क्रिया करे । उसके बाद दश लोकपालोंका आवाहन आदि विधिसे सत्कार करे । वह इस तरहसे है–" इंद्रा " इत्यादि तथा " इंद्रादि " बोलकर हवन करनेकी सामग्रीसे अवाहनादि पूर्वक इंद्रादिका सत्कार करे ॥ ५१ ॥ अब वेदीपूजा कहते हैं । " दिगीशा " इत्यादि श्लोक बोलकर दिशाओंमें पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ ५२ ॥ यहांपर " रूप्याद्रि " इत्यादि पहले कहे हुए आठ श्लोकोंका मंत्र पूर्वक प्रयोग करे । वह इस प्रकार है । " रूप्याद्रि " इत्यादि तथा " हे इंद्र " इत्यादि

रूप्याद्रि.............................. ॥ ५३ ॥

हे इंद्र आगच्छागच्छ इंद्राय स्वाहा, इंद्रपरिजनाय स्वाहा, इंद्रानुचराय स्वाहा, अग्नये स्वाहा, अनिलाय स्वाहा, वरुणाय स्वाहा, सौमाय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा ओं स्वाहा भूः स्वाहा स्वः स्वाहा, ओं इंद्राय स्वगणपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं गंधं पुष्पं दीपं धूपं चरुं वलिं स्वस्तिकं यज्ञ-भागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा ।

रुक्मारु.............................. ॥ ५४ ॥

हे अग्ने आगच्छगच्छ अग्नये स्वाहा............ ।

कल्पांताः.............................. ॥ ५५ ॥

हे यम आगच्छागच्छ यमाय स्वाहा............ ।

आरूढं.............................. ॥ ५६ ॥

हे नैऋत्य आगच्छागच्छ नैऋत्या स्वाहा.......... ।

मंत्र बोलकर इंद्रको जल आदि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ५३ ॥ "रुक्मारु" इत्यादि तथा "हे अग्ने" इत्यादि बोलकर अग्निकुमारदेवोंको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ ५४ ॥ "कल्पांता" इत्यादि तथा "हे यम" इत्यादि बोलकर यमदेवको जल आदि चढावे ॥ ५५ ॥ "आरूढं" इत्यादि तथा "हे नैर्ऋत्य" इत्यादि बोलकर नैर्ऋत्य दिक्पालको अर्घ चढावे ॥ ५६ ॥

नित्यांभ .... ॥ ५७ ॥

हे वरुण आगच्छागच्छ वरुणाय स्वाहा.................... ।

वलाच्छ.. ॥ ५८ ॥

हे पवन आगच्छागच्छा पवनाय स्वाहा.................... ।

हंसौघे.. ॥ ५९ ॥

हे धनदागच्छागच्छ धनदाय स्वाहा........................ ।

साञ्नावा.. ॥ ६० ॥

हे ईशान आगच्छागच्छ ईशानाय स्वाहा.................. ।

वक्षौजस्तर्जिपृष्ठश्वसनसमतरः कूर्मराजाधिरूढं

क्षुद्रछीवेभकुंभाक्रमणचणसृणिस्फारणव्यग्रपाणिम् ।

"नित्यांभ" इत्यादि श्लोक तथा "हे वरुण" बोलकर वरुणको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ ५७ ॥ "वलाच्छं" इत्यादि तथा "हे पवन" इत्यादि बोलकर पवन कुमारको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ ५८ ॥ "हंसौघे" इत्यादि तथा "हे धनद" इत्यादि बोलकर कुवेरको अर्घ चढावे ॥ ५९ ॥ "साञावा" इत्यादि तथा "हे ईशान" इत्यादि बोलकर ईशानको जलआदि आठ द्रव्य चढावे ॥ ६० ॥ "वक्षौज" इत्यादि तथा "हे धरणेंद्र"

सांश्लिष्टं दृक्सहस्राद्वितयघृणिफणारत्नरुक्त्वाल-
व्रश्लौघापीडमर्हंच्छ्रितमहि यमधौर्चामि पद्मासमेतम् ॥ ६१ ॥

हे धरणेंद्र आगच्छागच्छ धरणेंद्राय स्वाहा........................ ।

वैरिस्तंवेरमास्रोल्लसदरुणसटाटोपशुभ्रांगभीक्—
द्रालेंदुस्पर्द्धिदंष्ट्रोत्क्रमखरनखरारक्तदृक् सिंहसंस्थम् ।
कुंतास्त्रं रोहिणीष्टं कुवलयसुमनः स्रक् श्रितां शंभयुक्तं
ज्योत्स्ना पीयूषवर्षं यज यजनपरं सोममर्घं महामि ॥ ६२ ॥

हे सोम आगच्छागच्छ सोमाय स्वाहा............................. ।

एवं सत्कृत्य दिक्पालानेभ्यो मंत्रैः पुनर्ददे । अप्कुंडे सप्तशः सप्तधान्यमुष्टिभिराहुतिः ॥६३॥

ओं आं क्रौं इंद्राय स्वाहा । अनेन जलपूर्णकुंडे सप्तमे सप्तधान्यमुष्टिभिरिंद्राहुतिं दद्यात् ।

इत्यादि बोलकर धरणेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ६१ ॥ " वैरिस्तं " इत्यादि तथा " हे सोम " इत्यादि बोलकर सोम दिक्पालको जलआदि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ६२ ॥ " एवं " इत्यादि तथा " ओं आं " इत्यादि बोलकर जलसे भरे हुए कुंडमें सातवार सात धान्योंकी मुठी भरकर आहुतियां दे ॥ ६३ ॥ इसीतरह अग्नि आदिके कुंडमेंभी जानना । उसके बाद फिर

एवमन्यादिभ्योपि । अथ पुनस्तामेव प्रतिमां जिनमंत्रेण सप्तवारानाभिमंत्र्याकरशुद्धिं विदध्यात् । जिनमंत्रो यथा । ओं अर्हद्भ्यो नमः, पादानुसारिभ्यो नमः, कोष्ठबुद्धिभ्यो नमः, बीजबुद्धिभ्यो नमः । सावधानिभ्यो नमः,परमावधिभ्यो नमः, ओं ह्रौं वल्गु २ निवल्गु २ महाश्रवण । ओं ऋषभादिवर्धमानेभ्यो वषट् वौषट् स्वाहा ॥ अथाभिषेकः ।

पूरं पूरमयस्तदावाधिपयः सिंधोपसृत्यामरै—
र्हस्ताहस्तिकयार्पितैर्गलल्लुलन्मुक्ताफलस्रग्भरैः ।
श्रीखंडद्रवचर्चितैः परिदिनश्रीकर्मणा भर्मणात्
कृष्णैः साष्टसहस्रमानकलितैः कुंभैः सिताब्जाननैः ॥ ६४ ॥
आतोद्यध्वनिगीतमंगलरवैः सहर्षहर्षप्लुतां
देवानां नटदप्सरोगणवपुः श्रीभिश्च कीर्णांबरे ।
पार्श्वेन्द्रासनभासि पांडुकशिलासिंहासने प्राङ्मुखं
सौधर्मप्रमुखा निवेश्य जिनपं जन्मन्यासिंचत् किल ॥ ६५ ॥

उसी प्रतिमाको जिनमंत्रसे सातवार मंत्रित करके आकरशुद्धि करे । वह जिनमंत्र " ओं अर्हं " यहांसे लेकर " स्वाहा " तक है ॥ अब अभिषेक वर्णन करते हैं । " पूरं " इत्यादि तीन श्लोक पढकर कलशोंपर पुष्प अक्षत और जलको क्षेपण करे ॥६४।६५।६६॥ "गोवृषं"

धूलीपल्लवमंगलौषधिफलत्वग्मूलसर्वौषधी
संपृक्ताखिलतीर्थवारिसुभृतैर्मंत्रातिपूतैः कुटैः ।
अष्टाभिः स्वपदे स्थितं स्थिर मुदा वेद्यांचलं चारु तद्
बिंबं चाकरशुद्धिसेचनमिदं तज्जातकर्मार्पये ॥ ६६ ॥
एतत्रयं पठित्वा कलशेषु पुष्पाक्षतोदकं क्षिपेत् ।
गोवृंदशृंगतो गजपतेर्दंतान्महातीर्थतः
शैलेंद्रा नृपतोरणादुरुसरित्तीराच्च पद्माकरात् ।
आनीताभिरुपस्कृतेन शुचिभिर्मृद्भिः सुतीर्थांभसा
पूर्णेन स्नपयामि हेमकलशेनार्च्यां जिनार्चां मुदा ॥ ६७ ॥
शिल्प्यादीन् संमान्य सूत्रधारेण धूलीकलशाभिषेकः । कुल्याभिषेकः ।
कुल्याभिः शुचिभिः सतोः स्वसुरपो पित्रोश्च पत्यात्मजैः
संयुक्ताभिरशल्पिकाभिरनिशं सक्ताभिरर्हन्मते ।

इत्यादि बोलकर कारीगर आदिका सत्कार करके शुद्धवालू आदिसे अभिषेक करे ॥ ६७ ॥ " कुल्याभिः " इत्यादि बोलकर उत्तम कुलकी स्त्रियोंसे प्रोक्षण (जलसे अभिषेक) करावे ॥ ६८ ॥ इन्हीं स्त्रियोंसे प्रतिमा योग्य उवटना करावे । वेल, ऊमर, चंपा, आम, वकुल,

सिद्धार्थाक्षतसत्फलोद्गमनिशादूर्वादिमैत्रीयुषा
काडमुखोद्धृतेन जिनपं संप्रोक्षयामि श्रियै ॥ ६८ ॥

प्रोक्षणकप्रणयनम् । एताभिरेव च स्त्रीभिः प्रतिष्ठायोग्यमूलादिवर्तनं कारयेत् ।

बिल्वोदुंबरचंपकाम्रबकुलन्यग्रोधनीपार्जुन—
प्लक्षाशोकपलाशपिप्पलदलप्रच्छादितश्रीमुखैः ।
पुण्याशोष्यसरित्तडागसरसीपूर्वोक्ततीर्थाम्बुभिः
पूर्णैः पूर्णमनोरथैरिव कुटैः कुर्वे निषेकं विभोः ॥ ६९ ॥

ओं णमो अरहंताणं सव्वसरीरावच्छिदे महाभूप आय २ गिण्ह २ स्वाहा । एष मंत्र उत्तरत्रापि योज्यः । द्वादशपल्लवाभिषेकः ।

दूर्वापद्मकदनागुरुयवश्रीखंडवर्हिस्तिलै—
र्नंद्यावर्तकजातिकुंदकुसुमैः स्वर्णार्जुनव्रीहिभिः ।
भूम्यप्राप्तपवित्रगोमयनदीकूलोद्यमृद्रोचना—
सिद्धार्थैश्च समं भृतैः सुपयसा कुंभैः प्रभुं स्नापये ॥ ७० ॥

वड़, कदंब, अर्जुन, पाकर, अशोक, ढाक, पीपल इन बारह वृक्षोंके पत्तोंसे ढके हुए जलके कलशोंसे "ओं णमो" इत्यादि मंत्र बोलकर अभिषेक करे ॥ ६९ ॥ यह द्वादश पल्लवका

अष्टादशमंगलद्रव्याभिषेकः ।

श्यामाशमींदीवरभृंगविष्णुक्रांतागुडूची सह देविकाभिः ।
मिश्रैः पवित्रैः सलिलैः सुपूर्णरौप्यैर्जिनार्चां स्नपयामि कुंभैः ॥ ७१ ॥

सप्तौषधस्नपनम् ।

लवंगभल्लातकविल्वजातीफलाम्रकाम्रामलवारिपूर्णैः ।
शुभ्रैर्घटैरिष्टफलाप्तिहेतोः संस्नापये स्नातकनाथबिंबम् ॥ ७२ ॥

फलपंचकस्नपनम् ।

उदुम्बराश्वत्थशमीपलाशन्यग्रोधकल्कव्यातिकीर्णमर्णः ।
तैर्थं वहद्भिः कलशैर्वलक्षैर्भक्त्याभिषिंचामि जिनेंद्रमूर्तिम् ॥ ७३ ॥

अभिषेक हुआ । " दूर्वा " आदि बोलकर दूब आदि अठारह मंगलीक वस्तुओंसे मिले हुए जलके घड़ोंसे अभिषेक करे ॥ ७० ॥ यह मंगल द्रव्याभिषेक हुआ । " श्यामा " इत्यादि बोलकर उसमें कथित श्यामा आदि सात वनस्पतियोंसे मिले हुए जलपूर्णकलशोंसे अभिषेक करे ॥ ७१ ॥ " लवंग " इत्यादि बोलकर उसमें कहे हुए लवंग, भल्लातक, बेल, जायफल, आम-इन पांच उत्तम फलोंसे मिश्रित निर्मल जलसे भरे हुए घड़ोंसे प्रतिमाका अभिषेक करे ॥ ७२ ॥ यह फलपंचक स्नपन हुआ ॥ " उदुंबरा " इत्यादि बोलकर उसमें कथित

वल्लिपंचकस्नपनम् ।

> व्याघ्री गुडूची सहदेवि सिंही वरी कुमारी शतमूलिकानाम् ।
> मूलैर्बलायाश्च युतेन सर्वैः कुंभांभसाहं स्नपये जिनार्चाम् ॥ ७४ ॥

दिव्यौषधिमूलाष्टकस्नपनम् ।

> कत्कूलैला जातिपत्रलवंगश्रीखंडोग्रा कुष्ठसिद्धार्थमध्या ।
> सर्वौषध्यावासितैस्तीर्थतोयैः कुंभोद्गीर्णैः स्नापयाम्यर्हदर्चाम् ॥ ७५ ॥

सर्वौषधिस्नपनम् । एवं जन्माभिषेकस्थानीयमाकरशुद्ध्यभिषेकं विधायानेन मंत्रेण जिनार्चामधिवासयेत् । ओं णमो भयवदो वड्ढमाणस्स रिस्सहस्स जस्स चक्कुजलंतं गच्छइ आयासं पायालं लोयाणं भूयाणं जूए वा विवादे वा रणांगणे वा गयंगणे वा थंभणे वा मोहणे वा सव्वजीवसत्ताणं अपराजिदो भवदु मे रक्ख रक्ख रक्ख स्वाहा । श्रीवर्धमानमंत्रः ।

ऊमर, पीपल, शमी, ढाक, वड़–इन पांचोंकी छालसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे स्नपन करे ॥ ७३ ॥ “ व्याघ्री ” इत्यादि बोलकर उसमें कथित व्याघ्री (एरंड) गिलोइ, आदि आठ उत्तम औषधियोंके मूलसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे अभिषेक करे ॥ ७४ ॥ “ कत्कूलै ” इत्यादि बोलकर उसमें कही गई औषधियोंसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे

यस्योन्मील्य निसर्गजे श्रवणयोर्वज्रेण रंध्रे हरिः
शच्यासेचनकं वपुस्त्रिजगतां भक्त्याभिसंस्कारयेत् ।
त्रैवर्ण्योज्ज्वलसूत्रदृब्धयवमात्सिद्धार्थरत्नाश्रिय—
श्चर्चा चारुभुजेस्य भूषणमयं बध्नंतु ताः कंकणम् ॥ ७६ ॥

इंद्रकरहीरकक्तकर्णवेधादनंतरं प्रोक्षणकाधिकृतनारीभिर्जात्यकुंकुमश्रीखंडागरुकर्पूरचर्चनपूर्वकं दक्षिणभुजे षोडशाभरणात्मककंकणविधानम् ।

गृह्णंति यस्य समयामृतधौतचित्ता नामानि कोटिमृषयः कलुषक्षयाय ।
मेरौ महेंद्र इव संव्यवहारहेतोस्तं व्याहरेहमिह यष्टमतेन नाम्ना ॥ ७७ ॥

अभिषेक करे । यह सर्वौषधिस्नपन विधि हुई ॥ ७५ ॥ इसीप्रकार जन्माभिषेकके स्थानरूप आकार शुद्धिका भी अभिषेक करके आगे कहे जानेवाले मंत्रसे जिन प्रतिमाका संस्कार करे ॥ " ओं णमो " इत्यादि " स्वाहा " तक श्रीवर्धमानमंत्र है । " यस्यो " इत्यादि बोलकर कर्णवेध करके स्त्रियोंसे केशर चंदन अगुरु कपूरकर लेप किये गये सोलह आभूषणोंके साथ दाहिनी भुजाकी तरफ कंकण बांधे ॥ ७६ ॥ " गृह्णंति " इत्यादि बोलकर प्रभुका नाम रखनेके लिये कुंकुसे रंगे हुए पुष्प अक्षतोंको प्रतिमाके ऊपर क्षेपण करे ॥७७॥

नामकरणार्थं कुंकुमाक्तपुष्पाक्षतं प्रतिमोपरि क्षिपेत् । अथानंदस्तवः ।

जय देव प्रसिद्धेन स्वनाम्ना गां पुनीहि मे । जय शुद्ध नय स्वांतं स्वभक्त्या मेऽनुरंजय ७८
जय दिव्यांगगात्राणि स्वनत्या मे कृतार्थय । जय तेजोनिधे स्वामिन् नेत्राब्जे मे विनिद्रय ७९
यद्दर्शनविशुद्ध्यादिभावना दैवतं विभो । तपस्तप्त्वा जगज्ज्योतिस्तज्ज्योतिस्ते तानिण्यति ८०
यात्वयज्ञा हतैः पुण्यैस्तद्रागद्वारसंगतैः । त्वयि प्रयुज्यते कोपाल्लक्ष्मीस्तान्येव हंति सा॥८१॥
सा चेयं च विभूतिस्ते कापीश जगतां दृशः। लब्ध्वा विशुद्ध्या तद्वृद्ध्या स्वस्याह्नान्वयशुद्धताम्॥
भुंजानोभ्युदयं चार्हन् जनैर्भोगीव लक्ष्यते । बुधैर्योगीव तत्त्वं तु जानाति त्वादृगेव ते॥८३॥
नमस्तेऽचिंत्यचरित नमस्ते त्रिजगद्गुरो । नमस्ते त्रिजगन्नाथ नमस्तेत्यंतानिस्पृह ॥ ८४ ॥
नमस्ते केवलज्ञान नमस्ते केवलेक्षण । नमस्ते परमानंद नमस्तेऽनंतविक्रम ॥ ८५ ॥
एवमानंदतः स्तुत्वा शक्रः पूर्ववदादरात् । जन्माभिषेककल्याणक्रियां कृत्वा स्फुटं नटेत् ॥८६॥

उसके बाद आनंदस्तुतिका पाठ "जय देव" इत्यादिसे लेकर पचासीवें श्लोकतक पढे ॥७८॥ ७९।८०।८१।८२।८३।८४।८५॥ इसप्रकार वह इंद्र आनंदसे भक्तिपूर्वक स्तुतिकरके और जन्माभिषेक कल्याणकी क्रिया करके अच्छीतरह तांडवनृत्य करे ॥ ८६ ॥ यह जन्माभिषेककी

इति जन्माभिषेकविधानम् ।

अथोद्धृत्य निजस्कंधे तामर्हत्प्रतिमां मुदा । आरोप्य व्यंजयन्निंद्रस्तमैंद्रं परमोत्सवम् ॥८७॥
संधेन महता युक्तः प्राप्य तां मूलवेदिकाम् । त्रिःपरीत्य पठन्मंत्रमिमं न्यस्येत्तदासने ॥८८॥

ओं " एतद्राजांगणं तत्सुरकृतसुपमं सिंहपीठं तदेतत्
देवोयं जातकर्मोद्यत इयममरीसेव्यमाना प्रबोध्य ।
देवी साचोपनीता प्रमदवरवशा सेवमानास्तथैते
देवाः सर्वेर्हतीमं परिकरमयमेवेत्यमुं स्थापयेऽस्मिन् ॥ ८९ ॥

ओं नमोर्हते केवलिने परमयोगिने अनंतविशुद्धपरिणामपरिस्फुरच्छुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धकर्मबीजाय प्राप्तानंतचतुष्टयाय सौम्याय शांताय मंगलाय वरदाय अष्टादशदोषरहिताय स्वाहा । मूलवेदीमध्यस्थापितभद्रासने प्रतिमानिवेशनमंत्रः । अथ जिनमातृस्नपनम् ।

विधि हुई । उसके बाद इंद्र उस अर्हत्प्रभुकी प्रतिमाको हर्षके साथ अपने कंधेपर रख परम उत्सवको दिखाता हुआ बहुत साधर्मियों सहित उस मूलवेदीमें लेजाकर तीन परिक्रमा देके इस आगे कहे जानेवाले मंत्रको पढता हुआ उस सिंहासन पर विराजमान करे ॥८७॥८८॥ वह मंत्र " ओं एतद्रा " इत्यादि श्लोकसे लेकर स्वाहा तक है । इससे मूलवेदीके भद्रासनपर

अंव प्रसीद दृशमेषु चतुर्निकायगीर्वाणभर्तृषु निधेहि सनम्रवत्सु।
एतास्वर्पद्रिदयितासु ललाटघृष्टपादाग्रभूषु मुदमुल्वणयस्मितेन ॥ ९० ॥
नित्याश्रियेभ्युदयदुर्मदिनां त्वयीशे त्वज्ज्योतिरेतदपि नः परमक्तवत्याम् ।
कर्मस्विहाभ्युदयिकेषु प्रतीति कोत्र प्राच्याशयोस्तमयपाक्युदयार्कसूतेः ॥९१॥
मग्नाः निमज्जंति जगंत्यमूनि मंक्ष्यंति वा मोहार्णवे कः।
इहोपगृह्णाति भवादृशीदृक् सर्वज्ञवीजं यदि न प्रसूते ॥ ९२ ॥
त्वं कल्याणी त्रिभुवनजनन्येकमूरव्यासि त्वं
कीर्तिज्योत्स्नां किरयति सदा क्षालयंती जगत्ते ।
स्त्रीसर्गेग्रे गणयति शिवांगेष्वपि स्वं त्वमेव
त्वत्पूताः स्मो नियतमधुना विश्वमान्ये नमस्ते ॥ ९३ ॥
पीठिकायां कुंकुमाक्तकुसुमानि क्षिप्त्वा प्रणमेत् ।

जिनदेवीं जिनाभ्यर्णां स्तुत्वा दिव्यांवरादिभिः। प्रसाद्यानंदनाट्येन स्वयं चाराध्य तं पुनः ९४

प्रतिमाको रखा जाता है ॥ ८९ ॥ अब जिनमाताके अभिषेककी विधि कहते हैं– " अंव प्रसीद " इत्यादिसे लेकर तिरानवै तक श्लोक बोलकर वेदीमें कुंकुमसे मिले हुए फूलोंको डालकर प्रणाम करे ॥९०।९१।९२।९३॥ उसके वाद जिनदेवीको उत्तम वस्त्रादिसे पूज तथा

रक्षायां तस्य दिग्नाथान् देवताः परिकर्मणि । भोगसंपादने श्रीदं क्रीडने शक्रपुत्रकान् ९५
अंगुष्ठे चामृतं स्तन्यलौल्यच्छेदाय वासवः । यद्वदस्थापयत्तद्वदर्चायां स्थापयाम्यहम् ॥९६॥

दिव्यवस्त्रगंधभूषणस्वस्तिकशाल्यक्षीरान्नविचित्र-भक्ष्यपक्वान्नदुग्धदधिघृतशर्कराचारुपुष्पफलपत्र-दीपधूपादि भोज्यवस्तुजातं कांचनभाजने विरचय्य शिलायां निवेशयेत् ।

सिद्धयुद्वाह महोत्सुकोपि तदलंकर्माणकालाप्तये
निर्ग्रंथं परपर्वनृत्यविधिना धर्मेण शासद्धराम् ।
यः सम्राडिति लक्ष्यते त्रिजगतीनाथोसतीवेश्वरं
यो भक्तेति कुमार एव च भजन् भोगान्यसाम्यत्र तम् ॥ ९७ ॥

स्तुतिकर प्रभुकी रक्षाके लिये दिक्पालोंको, देवताओंको सेवाके लिये, भोगादि सामग्रीके लिये कुवेरको, खेलनेकेलिये इंद्रपुत्रोंको, दूध पीनेकी लालसाको दूर करनेकेलिये अंगूठेमें अमृतको जैसे पहले इंद्रने प्रभुके पास रखा था उसी तरह मैं भी इस प्रभुकी प्रतिमाके सामने स्थापित करता हूं ॥ ९४।९५।९६ ॥ ऐसा कहकर उत्तम वस्त्र सुगंधित पदार्थ आभूषण (गहने) सातिया खीर अनेक पकान्न दूध दही घी मिश्री उत्तम फूल फल पत्ते दीप धूप आदि भोगोंकी सामग्री सोनेके पात्रमें रखकर शिलापर रखे । " सिद्धयु " इत्यादि बोलकर पुण्यके उदयसे प्राप्त राज्य संपदा आदि उपभोगोंकी स्थापना करनेके

पुण्यविपाकसंपादितसौराज्यसंपदुपभोगस्थापनाय कुंकुमारुणितपुष्पाणि प्रतिमोपरि विकिरेत् ।

एवं वैषयिकैः सुखैः सुरनराधीशामपि पार्थितैः
शश्वत्तीतमनाः सुराधिपनृपैः राज्ञार्थिभिः सेवितः ।
कालैकक्षपणीयमोहमहिमाव्याधृतिसंसूचक—
प्रेक्षातंकिततीर्थकृच्छिवरतोप्यास्ते द्वितीयाश्रमे ॥ ९८ ॥

देवोपनीतभोगोपभोगानुभवनाय प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । इति जन्मकल्याणस्थापना ॥ २ ॥ अथ निष्क्रमणकल्याणं ।

प्राप्ते सामज्वरवदणुता वृत्तमोहे विवेक—
ज्योतिष्युद्यत्यथ किमपि तत्कारणं वीक्ष्य मंक्षु ।
निर्विण्णोर्हत्समरससुधास्वादनोकः सहैत्य
प्रीत्यानत्य सततदुपथीनभ्यनंदत्सुरर्षीन ॥ ९९ ॥

लिये केशरसे रंगे हुए पुष्पोंको प्रतिमाके ऊपर बखेरै ॥ ९७ ॥ "एवं" इत्यादि श्लोक बोलकर देवोंसे लाये गये भोग उपभोगोंका अनुभव दिखानेके लिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ ९८ ॥ इस प्रकार जन्मकल्याणकी स्थापना हुई ॥ (२) ॥ अब तपकल्याणकका वर्णन करते हैं । "प्राप्ते" इत्यादि श्लोक बोलकर शमसुखके एक स्वादी होनेकी स्थापनाके

प्रशमसुखैकरासिकत्वस्थापनार्थं जिनोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

विजयस्व जिनाधीश स्वयंभूरद्य खल्वसि। वाक्ति स्वायंभुवं ज्योतिः शिवप्रस्थानमेव नः१००
दुग्धां कामामियं चित्तं सुद्रव्यादिचतुष्टयी। एनामेवेयमन्वेतु सुष्ठूत्साहोयमेधताम् ॥ १०१ ॥
जृंभतां तत्परं ज्योतिः प्रीयंतां प्राणिनोऽखिलाः। भव्यात्मानः प्रबुध्यंतां छिद्यंतां कर्मशृंखलाः
निर्मलोन्मुद्रितानंतशक्तिचेतयितृत्वतः। ज्ञानं निःसीमशर्मात्मन् विंदन् प्रतपत्पदे ॥ १०३ ॥
इमं विधिं नियोगेन साधर्मप्रणयेन वा। वाचालयेमहि कृत्ये तु त्वादृशो जाग्रयुः स्वयम् १०४
इति स्तुतो शिवोद्योगं लौकांतिकसुरैः सुरैः। कृतनिःक्रमकल्याणं स्थापयाम्यत्र तं प्रभुम् १०५

निःक्रमणकल्याणोपक्रमस्थापनाय चंदनालुलितपुष्पाक्षतं प्रतिमोपरि क्षिपेत् ।

न्यग्रोधो मदगंधि सर्जमुशनश्यामे शिरीषोर्हता-
मेते ते किल नागसर्जजटिनः श्रीतिंदुकः पाटलः ।
जंब्वश्वत्थकपित्थनंदकविठाम्रावंजुलश्चंपको
जीयासु र्बकुलोत्र वांशिकधवौ शालश्च दीक्षाद्रुमाः ॥ १०६ ॥

लिये भगवानके ऊपर पुष्पोंकी अंजलि क्षेपण करे। ९९ ॥ उसके बाद प्रभुके वैराग्य होनेके समय लौकांतिक देवोंकर " विजयस्व " इत्यादि छह श्लोकोंसे स्तुति करना। १००।१०१ १०२।१०३।१०४।१०५ ॥ फिर तपकल्याणका आरंभ स्थापन करनेके लिये चंदनसे मिश्रित

ओं णमो अरहंताणं जिनदीक्षावनवृक्षा अत्रावतरंत्विति स्वाहा । जिनदीक्षावनवृक्षस्थापनाय मूलवेद्या प्रत्याग्निवेशितायाः प्रतिष्ठेयमहाप्रतिमायाः पुरस्तात्पुष्पाणि प्रकिरेत् ।

कल्पांतार्णववीचिविभ्रमनिपानाक्रांतदिकं प्रभुः
शक्रैरेत्य कृता स्तवादिकाविधिः स्वं वर्गमापृच्छ्यमां ।
त्यक्त्वा भूपखगामरोढशिबिकामारुह्य गत्वा वनं
पर्यंकस्य उदग्मुखो नतशिवो वा प्राङ्मुखः प्रव्रजेत् ॥ १०७ ॥
सोयं मुक्तिपुरीं प्रयान् विजयतां स्तादस्य पंथाःशिवो
नंद्यादस्य मनो विशुद्धिरनिशं सैद्धा गुणाः पात्वमुम् ।
क्रोधादिप्रतिरोधिनोस्य सुतपःशस्त्रैः पतंतु क्षताः
संतश्चैनमनारतं परिचरंत्वेतत्पदं प्रेप्सवः ॥ १०८ ॥

पुष्प अक्षतोंको प्रतिमाके ऊपर क्षेपण करे । " न्यग्रोधो " इत्यादि तथा " ओं णमो " इत्यादि बोलकर भगवानके वड़ सप्तपर्ण आदि दीक्षावनवृक्ष स्थापन करनेकेलिये मूलवेदीके पश्चिमकी तरफ स्थापित प्रतिष्ठेय महाप्रतिमाके आगे पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ १०६ ॥ " कल्पांता " इत्यादि श्लोक बोलकर मूलवेदकि सिंहासनसे प्रतिमाको उठाकर उत्तम पालकीमें वैठाकर महान उच्छवके साथ लेजाकर पहले स्थापनकिये गये दीक्षावन वृक्षके

एतत्पठन् मूलवेदीपीठात् प्रतिमामुत्क्षिप्य दिव्यशिविकामारोप्य महोत्सवेन नीत्वा पूर्वस्थापितदीक्षावनवृक्षतले निवेशयन्निमं मंत्रं पठेत् । ओं नमो सिद्धाणं भगवान् स्वयंभू रत्न सुनिविष्टो भवत्विति स्वाहा । अनेनैव मंत्रेण शेषप्रतिमास्वपि निष्क्रमणकल्याणस्थापनाय पुष्पाणि क्षिपेत् ।

स्वस्त्यस्मै वनशाखिने हृपदियं स्ताचांद्रकांती मुदे ।
ये दीक्षांगमिनो न्यधान्नम इमान् राज्ञः समं दीक्षितान् ।
शक्रः सतत्स्वधियोधिरत्नपटलौ प्रत्यग्रहीत्तत्कचा-
स्तीर्थेषु प्रतपत्वलं तदुपदा हृक्षोर्णवः पंचमः ॥ १०९ ॥
ममेद्महमस्येति मतिं भित्वार्हतोज्झिताः ।
पुनंतु विश्वस्त्रग्वस्त्रभूषाः संपूजिताः सुरैः ॥ ११० ॥

ओं नमो भगवतेर्हते सद्यः सामायिकप्रपन्नाय कंकणमपनयामीति स्वाहा । कंकणमपनीय दीक्षाविस्थापनाय प्रतिमादिषु पुष्पाणि क्षिपेत् । वनप्रस्थानप्रव्रज्याग्रहणाविस्थापनं ।

नीचे स्थापन करे और उस समय " ओं णमो " इत्यादि स्थापनमंत्र बोले ॥ १०७।१०८ ॥ इसी मंत्रसे अन्य प्रतिमाओंमें भी तपकल्याण स्थापन करनेकेलिये पुष्पोंको क्षेपण करे " स्वस्त्यस्मै " इत्यादि दो श्लोक तथा " ओं नमो " इत्यादि बोलकर कंकणादिको उतार कर दीक्षास्थापनकेलिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंको क्षेपण करे । इस तरह वनमें जाना,

स्वामीसिद्धप्रभुगुणरतः सर्वसावद्ययोग-
व्यावृत्तात्मा स्खलितविमुखस्तत्क्षणादुद्धतेन ।
तस्मिं बोधत्रय इव मनःपर्ययेणोपगूढो
व्युत्कृष्टांगः स्वरसविलसद्भावनो देदिवीति ॥ १११ ॥

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययाख्यसम्यग्ज्ञानचतुष्टयख्यापनाय चतुर्वर्तिदीपावतारणं विदध्यात् ।

अथेंद्राः सिद्धचारित्रयोगशांतिभक्तिभिः। जिननिष्क्रमणकल्याणक्रियां कुर्युः ससूरयः११२

स्वं विंदन् स्वतया परंपरतया तीव्रैस्तपोभिर्भवान्
कृष्ट्वा पाकमवाप कष्ट्यनिशं कर्मांशतः शातयन् ।
आकैवल्यपदाग्रयोत्तरविशुद्ध्युद्धिद्यमानात्मवित्
सांद्रानंदरसं स्वयं पिवति यः सोयं जगत्त्रायताम् ॥ ११३ ॥

दीक्षा ग्रहण करना, केशलोंच करना आदिका स्थापन हुआ ॥ १०९।११० ॥ " स्वामी " इत्यादि बोलकर मतिश्रुत अवधि मनःपर्यय-इन चार ज्ञानोंको वतलानेके लिये चार वत्तियोंवाला दीपक जलावे ॥ १११ ॥ उसके वाद वे इंद्र सिद्ध चारित्र शांति आदि भक्तिको करके भगवानके तपकल्याणकी क्रियाको करें ॥ ११२ ॥ " स्वं विंदन् " इत्यादि बोलकर

विशिष्टतपोनुष्ठानप्रतिष्ठार्थं प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

ततोर्चां तां पुनर्वेदीं नीत्वा ताभिः सद्यांजसाऽध्यानावतारितजिनां योजयेत् तिलकादिना ११४

एप क्रमश्चलार्चानां विस्तरेण प्ररूपितः। स्थिराणांतु यथास्थाने सर्वमेनं प्रकल्पयेत्॥११५॥

किंच — गर्भावतारादिविधिः समस्तं स्थानस्थिता चाल्याजिनेन्द्रबिंबे ।
संकल्प्य सिंहासनपादपीठमध्येस्य हैमीं निदधे शलाकाम् ॥ ११६ ॥

श्रीपादपीठसिंहपीठयोर्मध्ये सुवर्णशलाकानिवेशनम् । इति निःक्रमणकल्याणस्थापना । अथातस्तिलकदानविधानं । तत्रादौ तावकल्याणपंचकरोपणमनुवर्णयिष्यामः ।

यद्गर्भावतरे गृहे जनयितुः प्रागेव शक्राज्ञया
षण्मासान्नव चानु रत्नकनकं वित्तेश्वरो वर्षति ।

विशेषतपस्या स्थापन करनेकेलिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करें ॥ ११३ ॥ उसके वाद उस प्रतिमाको वेदीपर लेजाकर तिलकादि क्रियासे युक्त करे ॥ ११४ ॥ यह क्रम चल प्रतिमाओंका विस्तारसे कहा गया है परंतु स्थिर प्रतिमाओंका उसी स्थान पर कल्पना करे ॥ ११५ ॥ "गर्भाव" इत्यादि बोलकर भद्रासनोंके मध्यमें सोनेकी सलाई रक्खे। यह निष्क्रमण कल्याणकी स्थापना हुई ॥ ११६ ॥ अब तिलकदानविधि कहते हैं । उसमें सबसे पहले पांच कल्याणोंका स्थापन कहते हैं। जिस प्रभुके गर्भमें आनेके पहलेही छह

भर्त्तुर्वा माणिगर्भिणी सुरसरिन्नीरोक्षिता पोडश-
स्वप्नेक्षामुदितां भजंति जननीं श्रीदिक्कुमार्योसि सः ॥ ११७ ॥
प्रच्छन्नं जननीमुपास्य शयनादानीय शच्यार्पितं
यं तत्वास चतुर्णिकायविबुधः श्रीमत्करींद्राश्रितः ।
सौधर्मांकनिवेशितं सुरगिरिं नीत्वाभिषिंच्यावया
संयोज्योपचरत्यजस्रमसमैर्भोगैः स भास्येप नः ॥ ११८ ॥
किं कुर्वाण सुरेंद्ररुद्रविषयानंदाद्विरक्तस्तुतो
यो लौकांतिकनाकिभिः शिविकया निःक्रम्य गेहान्महैः ।
दिव्यैः सिद्धनतीद्धयावनतरुं पूत्वा परादीक्षया
भुंक्ते शुद्धनिजात्मसंविदमृतं स त्वं स्फुरस्येप नः ॥ ११९ ॥

महिने तथा आनेके वाद नौ महीने इस तरह पंद्रह महीने इंद्रकी आज्ञासे कुवेरने पिताके घर रत्न आदिकी वर्षा की तथा सोलह उत्तम स्वमोंके देखनेसे हर्षित जिनमाताकी दिक्कुमारियां सेवा करती हुईं ॥ ११७ ॥ जिसके जन्म कल्याणकमें इंद्राणीने माताको निद्रामें मग्न करके प्रभु वालकको लाकर इंद्रको सौंप दिया, फिर उसे ऐरावत हाथीपर विठाके सुमेरु पर ले जाकर इन्द्रादिने अभिषेक किया, उसके वाद राज्यसंपदा आदि भोगोपभोगकी दिव्य सामग्रीसे शोभायमान हुए ॥ ११८ ॥ उसके वाद किसी

सम्यग्दृष्टिकृशाकृशव्रतशुभोत्साहेषु तिष्ठन् क्वचित्
धर्मध्यानबलादयत्नगलिताभायुस्त्रयः सप्त यः ।
दृष्टि प्रभकृती समातपचतुर्जातित्रिनिद्रा द्विधा
श्वभ्रस्थावरसूक्ष्मतिर्यगुभयोद्योतान् कषायाष्टकम् ॥ १२० ॥
क्लैव्यं स्त्रैणमथादिमेन नवमे हास्यादिषट्कं नृतां
क्षित्वोदींच पृथक्क्रुधादिदशमे लोभं कषायाष्टकं ।
निद्रा सप्रचलामुपांत्यसमये दृग्धीमविघ्नाश्चतु-
र्द्विः पंच क्षिपते परेण चरमे शुक्लेन सोऽर्हन्नसि ॥ १२१ ॥

निमित्तको पाकर भोगोंसे वैराग्यरूप हुए, उससमय लौकांतिक देवोंने आकर स्तुति की फिर दिव्य पालकीमें बैठाकर वनमें लेगये वहां पर दीक्षावृक्षके नीचे बैठके प्रभुने सिद्धोंको नमस्कार कर आप ही दीक्षा धारण की, केशलोंच करके ध्यानमें मग्न शुद्ध निजस्वभावामृतका स्वाद लेते हुए। ऐसे प्रभु हमारे कल्याण कर्त्ता हो ॥ ११९ ॥ जिस प्रभुने धर्मध्यान और शुक्लध्यानके बलसे अनायासमें ही गुणस्थान क्रमसे कर्म प्रकृतियोंका क्षय किया। यह क्रम कर्मकांडमें विस्तारसे लिखाहुआ है। विस्तारके भयसे यहां नहीं लिखा। क्षयके क्रमसे चार घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान आदि अनंतच-

र्थव्यंजनमंगगीरापि पृथक्त्वेनापि संक्रामता ।
कर्मांशानव स्थितेन मनसा मोदार्भकोत्साहवत्
कुंठेन द्रुमिवाणुशः परशुना छिंदन् यतिप्वध्यासि ॥ १२२ ॥
क्षुण्णे मोहरिपौ भजन्नुरुयथाख्याताभिराज्याश्रियं
शुद्धस्वात्मनि निर्विचारविलसत्पूर्वोदितार्थश्रुतः ।
स्वच्छंदो छळदुत्कलोज्ज्वळचिदानंदैकभावो लस-
च्छेपारिव्रजवैभवः स्फुटमसि त्वं नाथ निर्ग्रंथराट् ॥ १२३ ॥
विश्वैश्वर्यविघातिघातिदितिजो छेदो गतानंतदृक्
संविद्वीर्यसुखात्मिकां त्रिजगदाकीर्णे सदस्या स्थितः ।
जीवन्मुक्तिमूर्पीद्रचक्रमहितस्तीर्थं चतुस्त्रिंशता
कुर्वाणोतिशयैः पुनात्यपि परान् संप्रातिहार्याष्टकैः ॥ १२४ ॥

उदय पाकर सयोगकेवली हुए। उससमय इंद्रने समवसरणकी रचना की। उसी समय चौंतीस अतिशय आठ प्रतिहार्य तथा पूर्वोक्त अनंतज्ञानादि चार—इसतरह छयालीस गुण मंडित हुए दिव्यध्वनिद्वारा तिर्यंचों आदि जीवोंका कल्याण करते हुए॥ १२०। १२१।१२२ १२३। १२४॥ उसके वाद प्रभुने योगोंको रोककर शुक्लध्यानके वलसे मोक्षअवस्थाके

देवव्यक्तिविशेषसंव्यवहृतिव्यक्त्युल्लसल्लांछन-
श्रीमत्त्वत्क्रमपद्मयुग्मसततोपास्तौ नियुक्तं शुभैः ।
यक्षद्वंद्वमवश्यमेतदुचितैः प्राच्यैरिदानींतनै-
र्देवेंद्रैरपि मान्यते शिवमुदोप्येष्यद्भिरीशिष्यते ॥ १२५ ॥
द्वौ गंधौ रसवर्णबंधनवपुः घातकान् पंचशः
षट् षट् संहननाकृतीः शुभगतिः स्वस्वानुपूर्व्यामुभे ।
खत्रय्ये परघातकागुरुलघूच्छ्वासोपघाता यशो
नादेयं शुभसुस्वरस्थिरयुगैः स्पर्शाष्टकं निर्मितम् ॥ १२६ ॥
त्र्यांगोपांगमपूर्णदुर्भगयुगे प्रत्येक नीचैः कुले
वेद्यं चान्यतरद्द्विसप्ततिमुपांत्ये सूरयोगं क्षणे ।
आदेयं सनिजानुपूर्व्यनृगतिं पंचाक्षयोऽतिशयः
पर्याप्तत्रसबादराणि सुभगं मर्त्यायुरुच्चैः कुलम् ॥ १२७ ॥

अंतके दो समयोंमेंसे पहले समयमें पचासी कर्म प्रकृतियोंमेंसे बहत्तर प्रकृतियोंका क्षय किया और अंतसमयमें अवशेष तेरह प्रकृतियोंका नाशकर कर्मोंसे मुक्त हुए तीनलोकके शिखरपर जा विराजे ॥ १२५ । १२६ । १२७ । १२८ । १२९ ॥ इसप्रकार पूर्वोक्त श्लोकोंको

वेद्येनान्यतरेण तीर्थकृमार अष्टादशाप्यंतिमे
निष्कृत्यप्रकृतीरनुत्तरसमुच्छिन्नाक्रियध्यानतः ।
यः प्राप्तो जगदग्रमेकसमयेनोर्ध्वंगमात्माष्टभिः
सम्यक्त्वादिगुणैर्विभाति स भवानत्रार्थितोच्यांज्जगत् ॥ १२८ ॥
मुक्तिश्रीपरिरंभनिर्भरचिदानन्देन येनोज्झितं
देहं द्राक् स्वयमस्तसंहतितडिद्वामेव मायामयम् ।
कृत्वाग्नींद्रकिरीटपावकयुतैः श्रीचन्दनाद्यैर्मुदा
संस्कृत्याभ्युपयांति भस्म भुवनाधीशाः स जीयात् प्रभुः ॥ १२९ ॥

एतत्पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पांजलिमापयेत् । इति कल्याणपंचकारोपणविधानं । अथ संस्कारमालाधिरोपणम्।

न्यस्यामथेह विंबेष्ट चत्वारिंशतमर्हतः । संस्कारान् दृष्टिलाभादिशिवांतपदगोचरान्॥१३०॥

पढकर प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंकी अंजलि क्षेपण करे । यह कल्याणपंचककी आरोपणाविधि हुई । अब संस्कारमालाकी आरोपण विधि कहते हैं । "न्यस्या" इत्यादि श्लोक बोलकर सम्यग्दर्शनप्राप्तिके संस्कारसे लेकर मोक्षप्राप्तितक संस्कार स्थापनेकी प्रतिज्ञा करे ॥ १३० ॥

सद्दर्शनस्य संस्कारः स्फुरत्वयमिहार्हति । संज्ञानस्यैव सद्वृत्तस्यैप सत्तपसोप्ययम् ॥१३१॥
एप वीर्यचतुष्कस्य मात्रष्टतयमंडले । प्रवेशस्यायमेपोष्टशुद्ध्यवष्टंभनिष्ठिते ॥ १३२ ॥
परीपहजयस्यायं त्रियोगासंयमच्युतेः । शीलमस्यायमेप त्रिकरणासंयमारतेः ॥ १३३ ॥
अयं दशा संयमोपरमस्यैपोक्षनिर्जितेः । अयं संज्ञानिग्रहस्य दशधर्मधृतेरयम् ॥ १३४ ॥
अष्टादशसहस्राणां शीलानामयमेपकः । चतुरभ्यधिकाशीतिगुणलक्षसमाश्रयः ॥ १३५ ॥
विशिष्टधर्मध्यानस्य अयमेपोतिशायिनः । अप्रमत्तयमस्यायं सुदृढश्रुततेजसः ॥ १३६ ॥
अकंपमकरणश्रेण्यारोहणस्यापुकोसकौ । अनंतगुणशुद्धेश्चाप्यामप्रत्तकृतेरयम् ॥ १३७ ॥
अयं पृथक्त्ववीतर्कवीचारप्रणिधेरयम् । अपूर्वकरणस्यैपो निवृत्तिकरणस्य च ॥ १३८ ॥
बादराणां कपायाणामयं किट्टिकृतेरयम् । सूक्ष्माणामेप पूर्वेपां किट्टिनिर्लेपनस्य च॥१३९॥
एपोन्येपामयं सूक्ष्मकपायचरणस्य च । प्रक्षीणमोहनस्यायं यथाख्यातविधेरयम् ॥ १४० ॥
अयमेकत्ववीतर्कवीचारध्यानभूरयम । घातिघातस्य कैवल्यज्ञानदृष्ट्युद्यतेरयम् ॥ १४१ ॥
तीर्थप्रवर्तनस्यायमेप सूक्ष्मक्रियस्य च । शैलेशीकरणस्यायं परसंवरवत्यसौ ॥ १४२ ॥
योगकिट्टिकृतेरेष तन्निर्लेपनगाम्यसौ समुच्छिन्नक्रियस्यायं श्रितोयं निर्जरां पराम् ॥१४३॥

"सद्दर्शन" इत्यादि एकसौ पैंतालीस तक श्लोक बोलकर अभिप्राय मनमें धारण करके प्रतिमाके ऊपर पुष्पांजली क्षेपण करे ॥ १३१ से १४५ ॥ इसप्रकार अडतालीस संस्कारोंकी

सर्वकर्मक्षयस्यायमनादिभवपर्ययः । विनाशस्याशुकोनंतसिद्धत्वादिगतेरयम् ॥ १४४ ॥
आदेयसहजज्ञानोपयोगैश्वर्यचार्यसौ । एष देहसाद्दात्येक्षोपयोगैश्वर्यगोचरः ॥ १४५ ॥

एतदर्थारोपणपरायणांतःकरणः पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । इत्यष्टचत्वारिंशत्संस्कारमालारोपणविधानम् । अथ मंत्रन्यासविधानम् ।

विश्वोद्भासि परब्रह्मव्यंजकं स्यात्पदांकितम्। शब्दब्रह्मेति मंत्रालीं न्यस्यामीह जिनेशिनः१४६

मंत्रन्यासप्रतिज्ञानाय प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

भालनेत्रश्रवोनासाकपोलरदपंक्तिषु । स्कंधयोर्मूर्ध्नि जिह्वाग्रे ओंमायार्हं रमोत्तरान् ॥ १४७॥

स्थापनाका विधान हुआ । अब मंत्रन्यास विधि कहते हैं—मैं स्यात्पदसे चिन्हित, जगतका प्रकाशक और परब्रह्मको कहनेवाले ऐसे शब्दब्रह्म इस मंत्रको अर्थात् ब्रह्म नामको जिनेश्वरमें स्थापित करता हूं ऐसा कहकर मंत्रन्यासकी प्रतिज्ञा प्रगट करनेकेलिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंकी अंजलि चढावे ॥ १४६ ॥

उसके बाद "भाल" इत्यादि चार श्लोक बोलकर ओं ह्रीं अर्हं श्रींपूर्वक अकारादि वर्णोंको शरदऋतुके निर्मल चंद्रमाके समान चिंतवन करे तथा प्रतिष्ठेय प्रतिमामें हाथसे स्थापन करे। वह इसतरह हैं—"ओं" इत्यादिको ललाटमें दाहिनी वांई तरफ स्थापन करे, इसीप्रकार 'इई' को नेत्रोंमें, उऊको कानोंमें, ऋॠ को नाकमें, ऌॡको गालोंपर, एऐ को दांतोंमें, ओ औ को कंधेके दोनों भागोंमें, अं को मस्तकमें, अःको जीभके अगाड़ीके भागपर, कवर्गको दाहिनी

स्वरान् द्विशः पृथक्कद्वाक्षोर्दक्षिणवामयोः । कचवर्गौ तथा कुक्ष्योष्टतवर्गौ पृथक् पफौ ॥ १४८ ॥
ऊर्वोर्ब गुह्यके नाभ्यां भं मं मांसलतापदे । देहे य मूर्ध्नि रं लं पृष्टेऽधिसंधि वं ॥ १४९ ॥
शं जानुनोर्गुल्फयोः पं पादयोः संनिवेश्य हं । सर्वप्राणपदे साक्षाज्जिनमेपोऽवतारये ॥ १५० ॥

ओं ह्रीं अर्हं श्रीं एतत्पूर्वकानकारादिवर्णान शरच्चंद्रगौरान् यथोक्तस्थानेषु मनसा ध्यात्वा प्रतिष्ठेयप्रतिमासु करेण विन्यसेत् । तथाहि । ओं ह्रीं अर्हं श्रीं अ आ ललाटे दक्षिणतः प्रभृति न्यसेत्, ओं ह्रीं अर्हं श्रीं इई दक्षिणेतरनेत्रयोः । एवं सर्वत्र । उऊ कर्णयोः ऋ ॠ नासापुटयोः, ऌ ॡ गंडयोः, ए ऐ ऊर्ध्वाधो दंतपंक्त्योः, ओ औ स्कंधयोः, अं मस्तके, अः जिह्वाग्रे, क ख ग घ ङ दक्षिणभुजे, च छ ज झ ञ वामभुजे, ट ठ ड ढ ण दक्षिणकुक्षौ, त थ द ध न वामकुक्षौ, प दक्षिणोरौ, फ वामोरौ, ब गुह्ये, भ नाभिमंडले, म स्फिजोः, य शरीरस्थाने उदरे, र ऊर्ध्वरोमांचे मस्तकादिकेशेष्वित्यर्थः, ल पृष्ठे, व ग्रीवाकक्षादिसंधिषु, श जानुयुग्मे, ष गुल्फमूलयोः, स पदयोः ह सर्वप्राणस्थाने हृदये । इति मंत्रन्यासविधानं । अथ प्रतिष्ठातिलकदानं ।

भुजामें, चवर्गको बांई बांहमें, टवर्गको दाहिनी कूखमें, तवर्गको बांई कूखमें, प दाहिनी जांघमें, फ बांई जांघमें, ब गुह्यस्थानमें 'भ नाभिस्थानमें, म चूतड़ोंमें, य उदरमें, र शिरके केशोंमें, ल पीठमें, व गले कांख आदिकी संधिओंमें, श घुटनोंमें, ष पैरोंमें, हकारको हृदयस्थानमें, स्थापन करे ॥ १४७ । १४८ । १४९ । १५० ॥ यह मंत्रन्यास विधि हुई । अब प्रति-

प्रीत्यै पिंगा प्रियंगूफलमचिरफलं मंगलार्थं दधि स्यात्
सिद्धार्था वांछितार्थान् ददाति सुमनसः सौमनस्यं महायुः ।
दूर्वा श्रीखंडलोहप्रभृतिसुरभितामृद्धिमृद्धिश्च वृद्धिं
वृद्धिः शैत्यं तुषारो क्षतविशदयशांस्यक्षताश्चेत्यमीभिः ॥ १५१ ॥
शुच्या कौसुंभवस्त्राभरणघुसृणसन्माल्यभाजा चतुष्के
तिष्ठंत्या भर्तृवस्त्रांचलयुतवसनप्रांतया यव्दपत्या ।
कोणोद्भासि प्रदीपामलजलपवित्ताभ्यर्चितायां शिलायां
पिष्टैर्दत्वा गुडार्द्रांस्तिलकयतु कृतावाहनादिर्जिनार्चाम् ॥ १५२ ॥
चत्वारि मंगलं स्वाहेत्यंतेन प्रणवादिना । प्रियंगुः स्थापकैर्जप्त्वा धार्या हैमादिपात्रगा ॥१५३

तिलकद्रव्यसज्जीकरणं । अत्र स्थापनानिक्षेपेण यमाश्रित्याबाहनादिमंत्राः कथ्यंते तद्यथा । ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा एहि २ संवौषट् आवाहनं, ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आउसा तिष्ठ २ ठ ठ स्थापनं, ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा अत्र सन्निहितो भव २ वषट् सन्निधीकरणं

प्रातिलकदानकी विधि कहते हैं ॥ हरताल आदि तिलक द्रव्य सोनेके पात्रमें रखकर "सि-द्धार्था" इत्यादि तीन श्लोक तथा "ओं" इत्यादिसे आवाहनादि करके जिन प्रतिमामें तिलक लगावे अथवा उसके आगे तिलक द्रव्य चढावे ॥ १५१ ।१५२। १५३ ॥ इसप्रकार वह इंद्र

कृत्वैवं कर्म शक्रोर्चां पूरकेण जिनं स्मरन् । सुलग्ने रेचकेनांतः प्रियां वा तत्पदं न्यसेत् ॥ १५४ ॥

तिलकमंत्रः । इति तिलकदानाविधानं । अथाधिवासनाविधानं ।

गंधाक्षतस्रग्वस्त्रान्नयवालीकंकणेषुभिः । चरुधूपारार्तिकफलैर्विरूढकयवारकैः ॥ १५५ ॥

सवर्णपूरेक्षुवालिवार्तिभृंगारकैरिमैः । मंत्राभिमंत्रितैश्चित्तैः सार्घस्वस्त्ययनैः क्रमात् ॥ १५६ ॥

एष निष्पतिघो देव्यस्केवलज्ञाननिर्वृतिम् । प्रतिष्ठितमहार्चायां जिनेंद्रमधिवासये ॥ १५७ ॥

स्वासन्नीकृतचंदनाद्यधिवासनद्रव्येषु पुष्पाक्षतं प्रक्षिप्य तत्कालप्रतिष्ठिताहर्त्प्रतिमां नमस्कुर्यात् ।

कर्पूरगकलवंग एला कररंवितं चंदनौघैः ।
दूरं स्फुरत्परिमलैर्जिनभर्तुराराद् विद्राणसौरभमदैरपि चर्चयेंघ्रीन् ॥ १५८ ॥

ॐ नमोर्हते सर्वशरीरावस्थिताय पृथु २ गंधं २ गृहाण स्वाहा ।

पूरक प्राणायामसे जिनेंद्र देवका स्मरण करता हुआ रेचक प्राणायामसे चरणकमलोंमें तिलकद्रव्य चढावे ॥ १५४ ॥ यह तिलकदान विधि हुई । अब अधिवासनाविधि कहते हैं– केवलज्ञान कल्याणसे प्रतिष्ठित हुई महान् अर्हंत प्रतिमामें अर्हत्प्रभुको स्थापित करके चंदन अक्षत आदिसे पूजा करे ॥ १५५ । १५६ । १५७ ॥ वह पूजा इसप्रकारसे है–पहले आवाहन-नादि करके पुष्प अक्षत क्षेपण करे । फिर "कर्पूर" इत्यादि श्लोक तथा "ओं नमो" इत्यादि बोलकर चंदन चढावे ॥ १५८ ॥ "शुंभत" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर अक्षत

शुंभच्छारदपार्विकेंदुसुहृदामामोदनर्मोल्वण-
घ्राणप्राणितचेतसां द्युतटिनीतोयाभिषिक्तात्मनाम् ।
अच्छेदार्जितसाधुशीलयशसां शाल्यक्षतानां चयै-
राचारैरिव पंचभिः सुरचनैरर्हत्पदाब्जे यजे ॥ १५९ ॥

ओं नमोर्हते सर्वशरीरावस्थिताय पृथु २ अक्षतानि गृहाण २ स्वाहा ।

सौरभ्यसांद्रमकरंदपरागजाती मंदारमल्लिकमलादिमयेन दाम्ना ।
कल्याणपंचकरुचिं शरपंचकेन प्रव्यंजता जिनपते रचयामि पूजाम् ॥ १६० ॥

ओं नमोर्हते जय सर्वतो मेदिनीपुष्प वरपुष्पाणि गृहाण २ स्वाहा । पंचशरमालारोपणम् ।

जल्पच्छुक्लतया परां विमलतां तात्कालिकीं लभ्यतां
नव्यत्वेन लसद्दशापरिचयेनोत्कर्षपर्याप्तता ।
माहार्घेण महर्घतां च परमध्यानस्य दुर्लक्ष्यतां
सूक्ष्मत्वेन ददे जिनस्य वदने वस्त्रं प्रनष्टाहते ॥ १६१ ॥

चढावे ॥ १५९ ॥ "सौरभ्य" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर पुष्प चढावे ॥ १६० ॥
"जल्प" इत्यादि दो श्लोक तथा "ओं नमो" इत्यादि बोलकर वस्त्र और औमाला सहित सात

ओं नमो अर्हं सर्वतो दह २ तेजोधिपतये सहभूताय धूपं गृहाण गृहाण स्वाहा । अष्टासु दिक्षु धूपघटाष्टकानिवेशनम् ।

स्फूर्जज्ज्योतिः सज्जितैः कज्जलांहो दाहं दाहं स्नेहमेभिर्वहद्भिः ।
दीपैः शुद्धज्ञानरोचिः कलापमख्यैरर्हं देवमाराधयामः ॥ १६७ ॥

ओं नमोर्हते सर्वतः प्रज्वल २ अमिततेजसे दीपं गृहाण स्वाहा ।

श्रीमद्दाडिममोचचोचरुचका क्षौटा मघोटा शिवा
जंबूजंभलनागरंगपनसद्राक्षाकपित्थादिजैः ।
छायागंधरसप्रमाकृतिदशाभेदैर्मनोहारिभिः
साक्षात्पुण्यफलैर्जिनेंद्रचरणावभ्यर्चयामः फलैः ॥ १६८ ॥

ओं नमोर्हते सहभूताय फलानि गृहाण गृहाण स्वाहा ।

मुद्गाद्यशेषाद्विदलप्रसूतैर्वालांकुराक्षिप्तगुणप्ररोहैः ।
विरूढकैः प्रौढविशुद्धभावं यजे जिनं भव्यशुभोद्भवाय ॥ १६९ ॥

॥ १६६ ॥ "स्फूर्ज" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर दीपक चढावे ॥ १६७ ॥ "श्रीमद्दा" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर फल चढावे ॥ १६८ ॥ "मुद्रा" इत्यादि बोलकर दो द-लवाले धान्यके अंकुरे शुभउदय होनेके लिये चढावे ॥ १६९ ॥ "यवादि" बोलकर जौका

विरूढकस्थापनम् ।

यवादिजैर्मंगलदानदक्षैर्यावारकैः कांतिजिताश्मगर्भैः ।
जगत्पतेः सिद्धवधूविवाहवेदीमिमां भूमिमलंकरोमि ॥ १७० ॥

यवारकस्थापनम् ।

सहानवस्थानहतान स्वपंचवर्णोन्वयेन द्युविमानवर्णान् ।
आक्षिप्यतोभि प्रभु वर्णपूरान स्ववासिपुण्याय निवेशयामि ॥ १७१ ॥

वर्णपूरकस्थापनम् ।

व्याहारान् जिनवाक्यवन्मधुरताशैत्यप्रसादोद्धुरै-
रिक्षन् स्वादुविपाकवद्भिरितरान् मत्यादिशक्ती रसैः ।
स्थूलैरायतिशालिभिः कलयुतं कोदंडकृप्त्यै ।
प्रभारिष्टरसोन्मुखं जिनपतिः पुंड्रेक्षुभिः प्रार्चये ॥ १७२ ॥

इक्षुस्थापनम् ।

वस्तुं सभाभुवि मनोज्ञफलप्रवालपुष्पावलीरुपहृता द्युवनश्रिये वा ।
चित्रामपिष्टमयपुष्पफलप्रवालरूपास्तनोमि वलिवर्तिततीर्जिनाग्रे ॥ १७३ ॥

आटा स्थापन करे ॥ १७० ॥ "सहान" इत्यादि बोलकर पांच रंगोंको चढावे ॥ १७१ ॥ "व्याहारान्" इत्यादि बोलकर पोंडा चढावे ॥ १७२ ॥ "वस्तु" इत्यादि बोलकर घीकी वत्ती

स्वीकार्यापि शिवाय सद्वृत्तमिमे कूर्मोवतार्यार्तिकं
तस्योत्क्षिप्य च धूपमध्वमघहृत्तच्छ्रीमुखोद्घाटनम् ॥ १८३ ॥

ॐ उसहादिवड्ढमाणाणं पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं महइ महावीरवड्ढमाणसामीणं सिज्झउ मे महइ महाविज्जा अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं सयलकलाधराणं सज्जोजादरूवाणं चउतीसातिसयविसेससंजुत्ताणं बत्तीसदेविंदमाणिमउडमत्थयमहियाणं सयललोयस्स संतिपुट्ठिकल्लाणाओ आरोगाकराणं बलदेववासुदेवचक्कहररिसिमुणिजदिअणागारोवगूढाणं उहयलोयसुहयफलयराणं थुइसयसहस्सणिलयाणं परापरपरमप्पाणं अणाइणिहणाणं बलिवाहुबालिसाहिदाणं वीरवीरे ओं हां क्षां सेणवीरे वड्ढमाणवीरे हंसं जयंते पराइएवज्जसियलंममयाणं सस्सदवंभपइट्ठियाणं उसहाइवीरमंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालपइट्ठियाणं इत्थ साण्णिहिदा मे भवंतु मे भवंतु ठ ठ क्ष क्ष स्वाहा । श्रीमुखोद्घाटनमंत्रः ।

येनोन्मील्य समस्तवस्तुविशदोद्भासोद्भटं केवल-
ज्ञानं नेत्रमदर्शिमुक्तिपदवी भव्यात्मनामृव्यथा ।
तस्यात्रार्जुनभाजनार्पितसिता क्षीराज्यकर्पूरयुक्
वक्रस्वर्णशलाकया प्रतिकृतौ कुर्वे दृगुन्मीलनम् ॥ १८४ ॥

बाबन विधि हुई । अत्र केवलज्ञान कल्याणका स्थापन करते हैं–"इत्यध्रु" इत्यादि श्लोक तथा ओं उसहा" इत्यादि श्रीमुखोद्घाटन मंत्र बोलकर भगवानके मुखको उघाड़े ॥ १८३ ॥ "येनो" इत्यादि तथा "ओं नमो" इत्यादि नेत्रोन्मीलनमंत्र बोलकर नेत्रोंको उघाड़े ॥१८४॥

ओं नमो अरहंताणं अमियरसायणं विमलतेयाणं संति तुट्ठि पुट्ठि वरद सम्मादिट्ठीणं वृपभं अमयवरसणं स्वाहा । नेत्रोन्मीलनमंत्रः । अथ गुणाध्यारोपणं ।

यत्सामान्यविशेषयोः सह पृथक् स्वान्यत्वयोर्दीपव—
च्चित्तं द्योतकमर्हतः समुदभूत्ते दृक् चिदो ये च यत् ।
तद्व्यापारनिबंधि वीर्यमपि यत्सौख्यं तदव्याकुली—
भावोऽनंतचतुष्टयं तदिह तद्बिंबे न्यसाम्यांतरम् ॥ १८५ ॥

अनंतज्ञानादिचतुष्टयप्रतिष्ठार्थं प्रतिमोत्तमांगे चतुःपुष्पीमारोपयेत् ।

सौभिक्षं भवतिस्म योजनशतं यत्संसदं सर्वतः
सार्धक्रोशयुगोज्झितक्षितितलं यत्रे स्पृहं सद्गतम् ।
यश्चेष्टास्वसितांगसंगवशतोप्यप्राणघातोंगिनां
या तावत्यपि विग्रहस्य कवलाहारं विनैव स्थितिः ॥ १८६ ॥
हुंडामप्यवसर्पिणीं प्रतिवदन् यो नोपसर्गोद्भव—
स्तैजोवैभवतश्चतुर्मुखतया वीक्ष्यैकमुख्योपि या ।

अब गुणोंकी आरोपणविधि कहते हैं—"यत्सामान्य" इत्यादि बोलकर अनंतज्ञान आदि अनंत चतुष्टयकी स्थापनाकेलिये प्रतिमाके मस्तकके ऊपर चार पुष्प चढावे ॥ १८५ ॥ "सौ-

निद्रास्वप्यखिलासु यः परिदृढीभावो दृढः सर्वदा
यच्छायाविरहस्तिरश्चरदिनेऽप्यंगे क्षिपेयेपि च ॥ १८७ ॥
पक्ष्मस्पंदविपर्ययोऽनिशमृते व्याधेः प्रयत्नाच्च यो
यो मूर्तेर्नखकेशवृद्ध्युपरमो मर्त्यप्रकृत्यत्ययात् ।
ते घातिक्षयजा दशाप्यतिशया वाह्याश्च चेतश्चमत्-
कारोद्रेककृतो जिनस्य निहिता बिंबे मयात्राधुना ॥ १८८ ॥
घातिक्षयजदशातिशयस्थापनार्थं पीठिकायां दश पुष्पाणि क्षिपेत् ।
धूलीशालोऽतः क्षितौ चैत्यगेहप्रासादालयो नाट्यशालाः सरांसि ।
मानस्तंभाश्चाथिदिग्वीथ्यतोर्णः पूर्णं खेयं वेदिरस्यं विदिक्षु ॥ १८९ ॥
वेदीभूपा पुष्पवाट्यस्ततोंतो नाट्याशोकाद्याश्च भूहर्म्यशाला ।
वेदीरुद्धाश्च ध्वजोर्वीशतारमाकारांतो नाट्यकल्पद्रुमोर्वी ॥ १९० ॥
वेदीरुद्धातः स्तूपदिव्यालयोर्वीयत्पार्श्वतः सनाथार्कशाला ।
तन्मध्येऽर्हन्गंधकुट्यासने भागवास्यानां नापिह स्थापयामि ॥ १९१ ॥

"निद्रा" इत्यादि तीन श्लोक बोलकर केवलज्ञानके समय होने वाले दस अतिशयोंके स्थापन करनेके दस फूलोंको वेदीपर चढावे १८६ । १८७ । १८८ ॥ "धूली" इत्यादि तीन

समवसरणस्थापनार्थं प्रतिमायाः समंतात् पुष्पाक्षतं क्षिपेत । इति समवसरणस्थापनम् ।

उपानीयं यतोदेवैर्देवदेवातिशायिनः । चतुर्दशाद्भुता भावाः स्थापयामीह तानपि ॥ १९२॥
ब्रुवतोर्द्धार्द्धसर्वांगि मागधोक्तिमयी प्रभोः । सभायामन्वकार्यंत मागधैर्वागिहास्तु सा॥१९३
जातिकारणवैरैकधस्मरेप्याश्रमे पुष्यन । यया प्रीतिकरा भर्तृभक्तान् मैत्रीह भातु सा॥१९४
सर्वर्तुसंपद्भ्राजिष्णु द्रुमा रत्नमयी ह्युवत । या गिभाव्दतलासर्जि प्रभुभक्त्यास्तु सा प्रभुः १९५॥
यो विस्रसा विहरति प्रभौ मृद्धतिलोन्ववात् । यश्चाभूतपरमानंदः सर्वेषां तामिहापि तौ॥१९६॥
संमार्जनं योजनं यद्वोर्जिनाग्रेनिलैः कृतम् । या गंधोदकवृष्टिश्च मेघैस्ते भवतामिह ॥१९७॥
यांतं तं सर्वतः पद्माः पंक्तिद्वात्रिंशता तताः । सप्तसोधपदोर्श्वैको यत्तत्पद्मायनं त्विदम् १९८
विभुवैभवनिध्यानहृपिता पुलकानि च । फलभारानतव्रीहिव्याजाद्भूया सा त्विह ॥१९९ ॥
प्रभोर्दिशावसंहर्पाद्यन्नैर्मल्यं दधुर्दिशः । तद्योगादिव यत्खं च प्रसन्नं तद्भवत्विह ॥ २०० ॥
वरमद विभुभक्तुमेतैतेत्यभितो व्यधुः । यद्भावनाः समस्तान्यदेवाञ्वनं तदस्त्विह ॥ २०१ ॥
रत्नरुक् चक्रदीपारसहस्रेण रविं क्षिपन । धर्मचक्रं चचाराग्रे यत्प्रभोस्तत्स्फुरत्विदम्॥२०२॥
छत्रचामरभृंगारकुंभाब्दव्यजनध्वजान् । स्वसुप्रतिष्ठान् यानिंद्रो भर्तुस्तेनेत्र संतु तो ॥२०३॥

श्लोक बोलकर समवसरण स्थापन करनेके लिये प्रतिमाके चारोंतरफ पुष्प और अक्षत फेंके ॥ १८९ । १९० । १९१ ॥ " उपानीयं " इत्यादि बारह श्लोक बोलकर देवकृत अतिशयोंके स्थापन करनेकेलिये वेदीपर चौदह पुष्प चढावे ॥ १९२ से २०३ ॥

चतुर्दशदेवोपनीतातिशयस्थापनार्थं पीठिकायां चतुर्दश पुष्पाणि क्षिपेत् । इति दिव्यातिशय-स्थापनम् ।

स्पृश्याः स्पृशंतो नापद्भिर्यन्नामापि तथापि तम् । येनेंद्रो यष्टभक्त्या तव प्रातिहार्याष्टकं त्विदम्॥

अष्टमहाप्रातिहार्यस्थापनाय पीठिकायामष्टपुष्पी क्षिपेत् ।

रत्नांशुवर्गेन्द्रधनुर्न्यातास्या हरिवाहनम् । यच्चक्रे धर्मैकात्मा सिंहपीठं तदस्त्वदः ॥२०५॥

ओं सिंहासनश्रियै स्वाहा । सिंहासने पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

मनाग्यभेद्यो मेघौघध्वनिजिद्योजनं सद । व्याप्नुवन् यो न केनापि व्याघात्येप सतद्ध्वनिः ॥

ओं ध्वनिश्रियै स्वाहा । सरस्वत्यां पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

यक्षैर्दोधूयमानार्हद्देहं छायाछलाश्रिता । या चामरचतुःषष्टिर्नानटीतिस्म सास्त्वियम्॥२०७॥

ओं चतुःषष्टिचामरश्रियै स्वाहा । चामरधारियक्षयोः पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

चक्षुष्ये पश्यतां सप्त भासयत्यनिशं भवान् । भामंडले त्रुडन् यत्र विश्वतेजोऽस्यदोस्तु तत् ॥

" स्पृश्याः " इत्यादि बोलकर आठ प्रातिहार्य स्थापन करनेकेलिये वेदीमें आठ पुष्प चढा-वे ॥ २०४ ॥ " रत्ना " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर सिंहासनके आगे पुष्प च-ढावे ॥ २०५ ॥ " मनाग्य " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर सरस्वतीके आगे पुष्प चढावे ॥ २०६ ॥ " यक्षै " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर चमर धारण करनेवाले यक्षोंके आगे पुष्पांजलि चढावे ॥ २०७ ॥ " चक्षुष्ये " इत्यादि तथा " ओं " बोलकर भा-

ओं भामंडलश्रियै स्वाहा । भामण्डले पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

रत्नरोचि नदद्भृंगखगोवातचलल्लतः । विश्वाशोकीकृते व्यक्तं योऽशोको नटदेप सः २०९

ओं रक्ताशोकाश्रियै स्वाहा । रक्ताशोके पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

मुक्तप्रारोहमालंवि मुक्त्वा लंबूप लक्षणः । छत्रत्रयं स्मावत् श्रीनिधिं यन्न्यात्यदोस्तु तत् ॥

ओं छत्रत्रयाश्रियै स्वाहा । छत्रत्रये पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

सभ्याः शृण्वंत्वसभ्योक्तीर्मितीवातीव योध्वनत् । सार्धद्वादशकोटयुद्यद्वादित्रोयं स दुंदुभिः ॥

ओं दुंदुभिश्रियै स्वाहा । दुंदुभौ पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

गंगांभः सुभगे गुंजद्भृंगौघा सुमनस्तमे । सुमनोभिः सुमनसां वृष्टिर्या सर्जे सास्त्वसौ २१२

ओं पुष्पवृष्टिश्रियै स्वाहा । मालाविद्याधरयोः पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

इत्यष्टौ प्रातिहार्याणि प्रतिमायां जिनेशिनः । स्थापितानि च निघ्नंतु भाक्तिकानां सदापदः ॥

मंडलके आगे पुष्पांजलि चढावे ॥ २०८ " रत्न " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर लाल अशोकके आगे पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २०९ ॥ " मुक्त " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर तीन छत्रोंकेलिये पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २१० ॥ " सभ्या " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर दुंदुभिवाजेकेलिये पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २११ ॥ " गंगांभ " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर पुष्पमाला धारण करनेवालोंके आगे पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २१२ ॥ " इत्यष्टौ " इत्यादि बोलकर प्रतिमाके आगे आठ पुष्पोंको चढावे ॥

प्रतिमाग्रेष्टपुष्पीं क्षिपेत् । इत्यष्टमहाप्रातिहार्यस्थापनम् ।

वंशे जगत्पूज्यतमे प्रतीतं पृथग्विधं तीर्थकृतां यदत्र ।
तल्लांछनं संव्यवहारसिद्ध्यै बिंबे जिनस्येदमिहोल्लिखामि ॥ २१४ ॥

लांछने पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

शक्रेण सत्कृत्य सुभाक्तिकत्वात् त्रातुं नियुक्तो जिनशासनं यः ।
कामान् दुहन्नीश जुषां यथास्वं प्रतिष्ठितस्तिष्ठतु सैष यक्षः ॥ २१५ ॥

यक्षोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

तद्वत्स्वपूर्वेष्वतिवत्सलत्वान्निवारयंती दुरितानि नित्यम् ।
यथोचितं शासनदेवतेति न्यस्तात्र यक्षी प्रतपत्वसह्यम् ॥ २१६ ॥

शासनदेवतोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

येनेह दर्शनविशुद्ध्यधिदैवतेन विश्वोपकाररसिकेन दिवीव गर्भम् ।
न्यूपे प्रमोदरसवर्षणपर्वणैव सर्वाणि सैष निहताद् दुरितानि नोऽर्हन् ॥ २१७ ॥

॥ २१३ ॥ " वंशे " इत्यादि बोलकर चिन्हके आगे पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २१४ ॥ " शा-
क्रेण " इत्यादि बोलकर यक्षके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २१५ ॥ " तद्वत " इत्यादि
बोलकर शासनदेवताके ऊपर पुष्पांजलि चढावे ॥ २१६ ॥ " येने " इत्यादि पांच श्लोक

आधीभिराधिभिरवाविपर्यीकृताया निर्गत्य मातुरुदराज्जनयन् मुदं यः ।
लोकोत्तराणि बुभुजेत्र सुखान्यजस्रं श्रेयांसि स जयतु न सदायम् ॥ २१८ ॥

समयाधिगमास्तमोहतंद्रे स्वयमुद्बुध्य झटित्यपास्तसंगम् ।
प्रशमैकरसो चरत्तपो यः स जिनोयं हरतां भवज्वरं नः॥ २१९ ॥

यः सम्यक्त्वरमावगाढदृगुपष्टंभात्समं वेदिता
द्रष्टा विश्वमुपेक्षितात्मपरमानंदोऽध्यतिष्ठद्विरम् ।
स्फूर्जत्तीर्थकरत्वनामसुकृतोद्रेकादनुमाणतीं
दिव्यां सभ्यसमीहितार्थकथनीं नस्तत् स्फुरत्वेष नः ॥ २२० ॥

योष्टादशशीलसहस्रसंयुक्तश्चतुरशीतिगुणलक्षः ।
परिणम्य कृत्स्नकर्मच्युतोष्ट भजते गुणान् सचेहास्ताम् ॥ २२१ ॥

एतत्पंचकं पठित्वा कल्याणपंचकस्थापनाभिव्यक्तये प्रतिमायां पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

इति सिद्धामरसाक्षाज्जीवन् मुक्तिश्रियं स्वसात्कृत्य ।
भजतो जगतो पत्युः कंकणमिह मोक्षयाम्येषः ॥ २२२ ॥

बोलकर पांचकल्याणोंके प्रगट करनेकेलिये प्रतिमाके आगे पुष्पांजलि चढावे ॥ २१७ से २२१ ॥ " इति " इत्यादि श्लोक तथा " ओं " इत्यादि बोलकर प्रतिमाके आगे पुष्प क्षेपण

ओं " सत्तक्खरसक्कारं अरहंताणं णमोत्ति भावेण । जो कुणइ अणण्णमणो सो गच्छइ उत्तमं ठाणं " ॥ कंकणमोक्षणं । ॐ "केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासियण्णाणो । णव केवलल्द्धुग्गमसुजणियपरमप्पववएसो" असहायणाणदंसणसहिओ इदि केवली हु जोएण। जुत्तोत्ति सजोगिजिणो अणाइणिहणारिसे उत्तो" ॥ इत्येषोऽर्हत्साक्षादत्रावतीर्णो विश्वं पात्विति स्वाहा। प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । अर्हद्देवसाक्षात्करणविधानम् । ओं " खवियघणघाइकम्मा चउतीसातिसयपंचकल्लाणा । अट्ठवरपाडिहेरा अरहंता मंगलं मज्झ " भूयासुरिति स्वाहा ॥ परमोत्सवेन महार्घमवतारयेत् ।

सिद्धश्रुतचारित्रर्षिशांतिभक्तिभिरन्विताः । केवलज्ञानकल्याणक्रियां कुर्वंतु याजकाः ॥२२३॥

इति केवलज्ञानकल्याणकस्थापनविधानम् ।

न्यस्य निर्वाणकल्याणं सूत्रोक्तविधिना ततः । सिद्धश्रुतचारित्रर्षिशिवशांतीन् स्तुवंतु ते॥२२४॥

इति निर्वाणकल्याणस्थापनम् ।

करे ॥ २२२ ॥ यह अर्हंत प्रभुका साक्षात्करण हुआ । " ओं " इत्यादि स्वाहातक बोलकर महान् उत्सवके साथ महार्घ चढावे ॥ इसप्रकार प्रतिष्ठा करनेवाले सिद्ध श्रुत चारित्र ऋषि शांति भक्तियां सहित केवलज्ञानकल्याणकी क्रिया करें । । २२३ ॥ इसतरह केवलज्ञानकल्याणकी स्थापना विधि हुई ॥ उसके बाद वे इंद्र शास्त्रकथित विधिसे निर्वाण कल्याणका स्थापन करके सिद्ध श्रुत चारित्र ऋषि शिव शांति स्तुतिका पाठ करें ॥२२४॥ जिसतरह

तथा सामान्यतोबिंबे गुणाद्यारोप्यमर्हताम् । यथास्वं च पृथक्कूल्यं स्वर्गावतरणादिकम् २२५

अप्यंगुष्टमितामनेन विधिना जैनीं प्रतिष्ठाप्य ये
शास्त्रोक्तां प्रतिमां भजंति विधिवन्नित्याभिषेकादिभिः ।
तेऽर्हद्भक्तिदृढानुरंजितधियो भुक्त्वा शिवाधर-
श्रामण्योभ्युदयावलीरनुभवंत्यात्यंतिकीं निर्वृतिम् ॥ २२६ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि जिनप्रतिष्ठाविधानीयो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

स्वर्गसे अवतार लेना आदि क्रियायें हुई हैं उसीतरह अर्हतके प्रतिबिंबमें गुणादिकी स्थापना करनी चाहिये ॥ २२५ ॥ इसतरह निर्वाण कल्याणकी स्थापनाका विधान हुआ । जो अंगुष्ठप्रमाण शास्त्रोक्त जिन प्रतिमाको भी इसी पूर्वकथित विधिसे प्रतिष्ठित करके हमेशा अभिषेकादि विधिसे पूजते हैं वे मुमुक्षु इस लोकमें उत्कृष्ट भोगोंको भोगकर बादमें अनंतसुखरूप मोक्षको पाते हैं ॥ २२६ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें अर्हतप्रतिष्ठाकी विधिको कहनेवाला चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

शश्वच्चेतयते यदुत्सवमिमं ध्यायंति यद्योगिनो
येन प्राणिति विश्वमिंद्रनिकरा यस्मै नमस्कुर्वते ।
वैचित्री जगतो यतोस्ति पदवी यस्यांतरप्रत्ययो
मुक्तिर्यत्र लयस्तनोतु जगतां शांतिं परं ब्रह्म तत् ॥ ३ ॥

अनेन जिनाग्रे शांतिधारा प्रकल्प्येत्थं बलिं दद्यात् । ओं अर्हद्भ्यो नमः सिद्धेभ्यो नमः सूरिभ्यो नमः पाठकेभ्यो नमः सर्वसाधुभ्यो नमः । अतीतानागतवर्तमानत्रिकालगोचरानंतद्रव्यगुणपर्यायात्मकवस्तुपरिच्छेदकसम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानचारित्राद्यनेकगुणगणाधारपंचपरमेष्ठिभ्यो नमः । ओं पुण्याहं २ प्रीयंतां २ ऋषभादि महति महावीर वर्धमानपर्यंतपरमतीर्थंकरदेवान् तत्समयपालिन्योऽप्रतिहतचक्रचक्रेश्वरीप्रभृतिचतुर्विंशतिशासनदेवताः गोमुखयक्षप्रभृतिचतुर्विंशतियक्षा आदित्यचंद्रमंगलबुधबृहस्पतिशुक्रशनिराहुकेतुप्रभृत्यष्टाशीतिग्रहाः वासुकिशंखपालककर्कोटपद्मकुलिकानंततक्षकमहापद्मजयविजयनागाः देवनागयक्षगंधर्वब्रह्मराक्षसभूतव्यंतरप्रभृतिभूताश्च सर्वेप्येते जिनशासनवत्सलाः

कर परब्रह्मका मनमें ध्यान करे ॥ २ ॥ यह देवताविसर्जनकी विधि हुई । "शश्व" इत्यादि बोलकर जिनदेवके आगे शांतिधारा छोड़के इसप्रकार पूजन करे ॥ ३ ॥ "ओं अर्ह" इत्यादि बोलकर पुष्प क्षेपण करे । इसमें राजा प्रजा कुटुंब आदि सब जीवोंके कल्याण होनेका चिंतवन किया जाता है । इसीको पुण्याहवाचन भी कहते हैं "ये सामग्री" इत्यादिसे अर्हंतसे

ऋण्यार्यिकाश्रावकश्राविकायष्टृयाजकराजमंत्रिपुरोहितसामंतारक्षिकप्रभृतिसमस्तलोकसमूहस्य शांति-वृद्धिपुष्टितुष्टिक्षेमकल्याणम्वायुरारोग्यप्रदा भवंतु । सर्वसौख्यप्रदाश्च संतु । देशे राष्ट्रे पुरे च सर्वदैव चौरारिमारीतिदुर्भिक्षावग्रहविघ्नौघदुष्टग्रहभूतशाकिनीप्रभृत्यशेषानिष्टानि प्रलयं प्रयांतु, राजा विजयी भवतु प्रजासौख्यं भवतु, राजप्रभृतिसमस्तलोकाः सततं जिनधर्मवत्सलाः पूजादानव्रतशीलमहामहोत्सव-प्रभृतिपूद्यता भवंतु, चिरकालं नंदंतु । यत्र स्थिता भव्यप्राणिनः संसारसागरं लीलयोत्तीर्यानुपमं सिद्धिसौख्यमनंतकालमनुभवंति तच्चाशेषप्राणिगणशरणभूतं जिनशासनं नंदत्विति स्वाहा ।

ये सामग्रीविशेषदृढिमभरहृयात्क्षिप्तदुर्वारवैरि-
व्रातप्रेष्यत्पताकासततपरिचितज्ञानसाम्राज्यलीलाः ।
भूतार्थोच्छेदकंदव्यवहरणघटोद्भिन्नपृक्तोक्तियुक्ति-
क्षिप्तार्तं मन्यमाना जगदतिपुनते ते जिनाः पांतु विश्वम् ॥ ४ ॥
स्फूर्जच्छलश्रुदर्चिर्भरमसितदशासाकृतेनःपतंगाः
स्वांगाकाराक्षरैकक्षणस्मरनिराकारसाकारचित्काः ।
व्योम्नो विश्वैकधाम्नः कृततिलकरुचः मष्टमारंभरीणां
व्यंजंतः स्वं सदान्याज्जिनसमयजुषाः संतु सिद्धाः शिवाय ॥ ५ ॥

कल्याण होनेका चिंतवन है ॥ ४ ॥ "स्फूर्ज" इत्यादि बोलकर सिद्धोंसे कल्याण प्रार्थना॥५॥

भ्राजिष्णुशक्तिविभवा भवसिंधुसेतुसर्वज्ञशासनविभासनबद्धकक्षाः ।
याः पूजयंति विविधाद्भुतसिद्धिकामास्ताश्चाष्टविघ्नमवंतु जयादिदेव्यः ॥ १६ ॥
शक्रादेशात्तीर्थकृद्देवमातुर्याः सेवंते स्वस्वयोग्यैर्नियोगैः ।
ताः सर्वज्ञाराधनातत्पराणां संत्वष्टापि श्रेयसे श्र्यादिदेव्यः ॥ १७ ॥

अन्येपि दौवारिकलोकपालग्रहोरगानाहृतयक्षमुख्याः ।

देवा यथास्वं प्रतिपत्तिहृष्टा निघ्नंतु विघ्नान् जिनभाक्तिकानाम् ॥ १८ ॥

तद्द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभः प्रदेशः संतन्यतां प्रतपतु प्रततं स कालः ।
भावः स नंदतु सदा यदनुग्रहेण प्रस्तौति तत्त्वरुचिमाप्तगवी नरस्य ॥ १९ ॥
किं बहुना ।

शांतिः स तनुतां समस्तजगति संगत्वतां धार्मिकैः

श्रेयःश्री परिवर्द्धतां नयधुराधुर्यो धरित्रीपतिः ।

योंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १५ ॥ " भ्राजिष्णु " इत्यादि बोलकर जया आदि आठ देवियोंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १६ ॥ " शक्रा " इत्यादि बोलकर श्री आदि आठ देवियोंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १७ ॥ " अन्येपि " इत्यादि बोलकर इनके सिवाय अन्य देवताओंसे प्रार्थना ॥ १८॥ " तद्द्रव्य " इत्यादि बोलकर द्रव्य क्षेत्र काल भावोंके शुभ मिलनेकी प्रार्थना ॥ १९ ॥ बहुत कहनेसे क्या, सब जगतमें शांति रहे, धर्मात्माओंकी संगति मिळे, कल्याण करनेवाली लक्ष्मी

सद्विद्यारसमुद्गिरंतु कवयो नामाप्यघः स्यात्तु मा
प्रार्थ्यं वा कियदेक एव शिवकृद्धर्मो जयत्वर्हताम् ॥ २० ॥

एतेत्मार्थपरा शक्राः छत्रचामरशालिनीम् । भृंगारहस्ता मुक्तांबुधारापूतपुरो धराम् ॥२१॥
जिनार्चामनुयांतोग्रे प्रनृत्यत्कलशांगनाः । महान् तूर्यस्वनैर्भव्यजयकोलाहलोल्बणैः ॥ २२ ॥
पूरयंतो दिशः सप्तधान्यपुष्पाक्षतादिभिः । कल्पयंतो बलिं शांत्यै त्रिःपरीयुर्जिनालयम् २३

इति बलिविधानम् ।

अथाचार्योऽभिषेक्तव्यः फलपुष्पाक्षतद्युतः । जिनगंधांबुकुंभेन यष्ट्रे दद्यात्तदाशिषम् ॥२४॥

तद्यथा ।

आयुस्तन्वंतु तुष्टिं विदधतु विधुनंत्वापदो घ्नंतु विघ्नान्
कुर्वंत्वारोग्यमुर्वीं वकयाविलासितां कीर्तिवल्लीं सृजंतु ।

बढे, न्यायमार्गपर चलनेवाला राजा हो, कविजन उत्तम विद्यारसको प्रगट करें, पापका नाम भी न रहे, अन्य विशेष प्रार्थना क्या करें संसारमें एक मोक्षको दाता जैनधर्मकी ही जय हो ॥ २० ॥ आत्मकल्याण करनेमें लीन,छत्र चमर लिये हुए,स्वच्छ जलसे भरी झाड़ीको हाथमें लिए हुए, जिनमूर्तिके आगे नृत्य करते हुए इंद्र, सात तरहके धान्य पुष्प अक्षत आदि पूजा द्रव्यसे पूजा करते हुए जिनमंदिरकी तीन परिक्रमा दें ॥ २१।२२।२३ ॥ यह बलिविधान हुआ । उसके बाद प्रतिष्ठाचार्य गंधोदक अक्षत पुष्प फल दीप धूपसे प्रतिष्ठाविधि करनेवाले

धर्मं संवर्धयंतु श्रियमभिरमयंत्वर्पयंत्विष्टकामान्
कैवल्यश्रीकटाक्षानपि जिनचरणाः संजयंतु सदा वै ॥ २५ ॥
आज्ञैश्वर्यमकार्यकार्यविचयैः संतानवृद्धिर्जयः
सौभाग्यं धनधान्यवृद्धिरभयं निःशेषशत्रुक्षयः ।
पांडित्यं कविता परार्थपरता कार्तज्ञमोजस्विता
मानित्वं विनयो जयश्च भवतादर्हत्प्रसादेन वः ॥ २६ ॥
कांताः कांतिकलानुरागमधुराः पुण्यास्त्रिवर्गांकुरा
भृत्याः स्वाम्यनुरक्तिशक्तिरुचिरा श्च्योतन्मदाः कुंजराः ।
वाहास्तर्जितशक्रसूर्यतुरगाः शौर्योद्धताः पत्तयो
भूयासुर्भवतां जिनेंद्रचरणांभोजप्रसादात्सदा ॥ २७ ॥
गांभीर्यंमौदार्यमजर्यमार्यशौर्यं सशौंडीर्यमवार्यवीर्यम् ।
धैर्यं विपद्यार्जवमार्यभक्तिः संपद्यतां श्रीजिनपूजनाद्वः ॥ २८ ॥

इंद्रको आशीर्वाद दे ॥ २४ ॥ वह ऐसे है कि " आयु " इत्यादि ग्यारह आशीर्वाचक श्लोक पढकर यज्ञके शिरपर अक्षत आदिका क्षेपण करे ॥ २५ से ३५ ॥ यह आशीर्वाद विधि हुई । उसके बाद यज्ञ " यज्ञोचितं " इत्यादि बोलकर जनेऊ आदिक यज्ञदीक्षाके

भवतु भवतामर्हद्भक्त्या सदा मुदितं मनो
ग्रहमुपचिता चौरौचित्यं मदासेन परस्परः ।
प्रणयिविवशैः स्वैसंवौसौद्यागयमीहितं
स्थितिरपि चित्ते प्रज्ञापराधपराहतिः ॥ २९ ॥
दृक्संशुद्धिरतोन्यतोस्तु भवतामर्हत्प्रतिष्ठाविधे
जातु क्वापि कथंचिदीपदपि मा शीलं व्रतं म्लायतु ।
दूरादेव शिरस्यधीरमरयो वध्नंतु देवांजलिं
प्रेम्णा सद्गुणसंपदा च सुहृदः श्लिष्यंतु पुष्णंतु च ॥ ३० ॥
यष्टृणां याजकानां प्रतिनुतिकृतामभ्यनुज्ञायकानां
भूयस्यांतःपुरस्य क्षितिपतनुभुवां मंत्रिसेनापतीनाम् ।
सामंतानां पुरोधः पुरविषयवनादिस्थवर्णाश्रमाणां
सर्वेषामस्तु शांत्यै सततमयमिह स्थापितो विश्वनाथः ॥ ३१ ॥
विचित्रैः स्वैर्द्रव्यं प्रतिसमयमुच्चाद्विपदपि
स्वरूपादुल्लोलैर्जलमिव मनागप्यविचलम् ।

जिन्होंको गुरु (आचार्य) के चरण कमलोंके आगे रखकर नमस्कार करे । यह यज्ञदीक्षा

अनेहो माहात्म्याहितनवनवीभावमखिलं
प्रणिण्वाणाः स्पष्टं युगपदिह ते पांतु जिनपाः ॥ ३२ ॥
संभुज्यार्थिभिः संविभज्य च यथाविध्येवमेवाथवा
निर्विण्णास्तृणवद्विसृज्य कमलां स्वं स्वं स्वयं केऽपि ये ।
संवेद्यामलकेवलाचलचिदानंदे सदैवासते
ते सिद्धाः प्रथयंतु वः प्रति शिवश्रीसद्विलासान् सदा ॥ ३३ ॥
ज्ञात्वा श्रद्धाय तत्त्वं भजति समरसास्वादमानान्यनीहा-
वृत्त्या प्राणानुसर्पन्मरुदनु च कचानष्टमे ब्रह्मरंध्रे ।
भृश्यत्यज्ञाय मोहो मृतिमयति मनः केवलं चापि माया-
च्छून्यध्यानेन येषां प्रमदभरमिमे योगिनस्तन्वतां वः ॥ ३४ ॥
नार्पत्यान् विस्मयांतर्हितपतनरुजो दत्तझंपान्वितन्वन्
निःश्रेणीकृत्य भोगं वलयितपृथुतन्मूलमाद्राहितांघ्रि ।
श्रीकुंडद्रंगगृह्यावनितरुशिखरा द्यौवतीर्णः स्ववर्ण-
स्यासंगं संगमस्य व्यथितबहुमहाः वीरनाथः स वोऽव्यात् ॥ ३५ ॥

विसर्जनकी विधि हुई ॥ ३६ ॥ उसके बाद गुरुकी आज्ञासे शांति पाठ करके कार्यको

एता आशिषः पठित्वा यष्टुः शिरस्यक्षतान् क्षिपेत् । इत्याशीर्वादविधानम् ।

यज्ञोचितं व्रतविशेषकृतो प्रतिष्ठन् यष्टा प्रतींद्रसहितः स्वयमे पुरावत् ।
एतानि तानि भगवज्जिनयज्ञदीक्षाचिन्हान्यथैष विसृजामि गुरोः पदाग्रे ॥ ३६ ॥

एतत्पठित्वा यज्ञोपवींतादियज्ञदीक्षाचिन्हानि गुरुपादमूले संन्यस्य नमस्येत् । इति यज्ञदीक्षाविसर्जनम् । ततो गुर्वनुज्ञया शांतिभक्त्या निष्ठापयेत् । अथ जिनप्रतिष्ठानिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं । शेषं पूर्ववत् । ततश्चैशान्यदिशमष्टदलकमलमालिख्य चैत्याभिमुखमेतत्पठित्वा पंचागं प्रणामादिक्पालेभ्यो निजनिजमंत्रपूतयज्ञांगशेषेण सर्वशः पूजां दत्त्वा जिनगंधोदकतीर्थोदककलशैः सर्वशांतयेम्भः संप्लावयेत् ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाथ शास्त्रोक्तं न कृतं मया तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनप्रभोः ॥ ३७॥

ततश्च क्षमापणाविधिमिममनुतिष्ठेत् ।

समाप्त करे । वह ऐसे है कि–" अथ जिन " इत्यादि " करोम्यहं " तक बोलकर समाप्ति विधि करे । उसके बाद समाधि भक्ति करे । उसके बाद ईशानदिशामें आठ पत्रोंवाला कमल बनाकर प्रतिमाके सामने " ज्ञानतो " इत्यादि श्लोक पढकर पंचांग प्रणाम करे । फिर पूजाकी बची हुई सामग्री सबको चढानेकेलिये देकर कलशोंसे जलधारा सब विघ्नोंकी शांतिके लिये चढावे । " ज्ञानतो " इत्यादिका अर्थ–हे जिनेंद्र मैंने जानकर अथवा अज्ञानसे शास्त्रकथितरीतिसे जो क्रिया नहीं की है वह सब आपके प्रसादसे समाप्त ही हो

चतुर्विधमहासंघं संतर्प्याहारभेषजैः । योग्योपकरणं दत्वा यष्टा संपूजयेत्स्वयम् ॥ ३८ ॥
अत्र ये द्रष्टुमायाता प्रतिष्ठाव्यापृताश्च ये । तांबूलगंधपुष्पाद्यैस्तान संमान्य विसर्जयेत् ॥ ३९ ॥
प्रतिष्ठाचार्यमानम्य तस्यात्मानं समर्प्य च । वस्त्राभरणाद्यैश्च संपूज्य क्षमयेत्ततः ॥ ४० ॥
संमान्य सूत्रधारादीन् स्वर्णवस्त्रान्नभूषणैः । गांधर्वनर्तकादींश्च यथार्हं तत्समर्पयेत् ॥ ४१ ॥
सार्वकालिकपूजार्थं भूसुवर्णार्पणादिकम् । वित्तानुसारतो दद्यात्पूजोपकरणानि च ॥ ४२ ॥

इति क्षमापना ।

॥३७॥ उसके वाद क्षमा करानेकी विधि करे । वह इस तरह है—प्रतिष्ठा करानेवाला यजमान जिनकल्याणक महोत्सवके वाद आहार औषध दानसे मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका—इन चारों संघोंको संतुष्ट करके और उनके योग्य धर्मसाधनके उपकरण (शास्त्र वगैरः) देकर आप उनकी पूजा करे ॥ ३८ ॥ उसके वाद जो प्रतिष्ठा देखनेकेलिये आये हों अथवा प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करानेके अभिप्रायसे आये हों उन सबको पान सुपारी फूलोंकी माला आदिसे सत्कार करके जानेको कहे ॥ ३९ ॥ उसके वाद प्रतिष्ठाचार्यको नमस्कार कर उसको कुछ भेंट देकर कपड़े और आभूषण आदिसे संमानकर क्षमा करावे ॥ ४० ॥ प्रतिष्ठाके सहायक तथा गंधर्व व नृत्यकरनेवालोंको वस्त्र अन्न आभूषण और कुछ धन योग्यताके अनुसार दे ॥ ४१ ॥ उसके वाद जिनप्रतिमाकी हमेशा पूजा होनेके लिये जमीन रुपया या कुछ जायदाद आमदनीके अनुसार दे कि जिसमें मंदिर पूजा हमेशा होती रहे और पूजाके उपकरण (वर्तन आदिक)

इत्यर्हत्प्रतिमान्यासविधिर्व्यासेन वर्णितः । तादृक्सामग्र्यभावेसौ मध्यवर्त्यपि कल्पितः ४३

तद्यथा ।

कृत्वा पुराकर्म कृतमंडपादिप्रतिष्ठितिः । मंत्रैरेवार्चयित्वा च मंडलान्यखिलान्यपि ॥ ४४ ॥
प्रतिष्ठेयां निरूप्यार्चां प्रयुक्तसकलक्रियः। संस्कृत्याकरशुद्ध्याथ वेदीपीठे निवेशयेत् ॥४५॥
कृत्वा कल्याणसंस्कारमालामंत्रादिरोहणम् । दत्वा तिलकमंत्राधिवासना संप्रकाशने ॥४६॥
सन्नेत्रोन्मीलने कृत्वा कृत्वा चाभिषवादिकम्। संक्षेपेणाथ शक्तिश्चेन्नुभक्तः स्थापयेत्प्रभुम्४७
तत्रैकमेव सज्जायाग्रर्चयेद्यागमंडलम् । द्वास्थानंतरमथैव यजेच्च श्र्यादिदेवताः ॥ ४८ ॥

वनवाके दे ॥ ४२ ॥ यह क्षमावनीकी विधि समाप्त हुई ॥ इसप्रकार अर्हंतकी प्रतिमाकी स्थापना विधि विस्तारसे वर्णन की गई है । यदि उतनी सामग्री न हो तो मध्यमरीतिसे भी स्थापना होसकती है ॥४३॥ वह इसतरह है । मंडपादि वनवाकर मंडलादिकी रचना कर उन सबको केवल मंत्रोंसे ही पूजकर प्रतिष्ठा होनेवाली जिन प्रतिमाको आकर शुद्धि आदि कही गई विधिसे संस्कारित करके वेदीके सिंहासन पर विराजमान करे ॥ ४४ । ४५ । ४६ ॥ फिर पांच कल्याण संस्कारमालारोपण तिलक अभिषेकादि करे ॥ यह मध्यमरीति है । जिसकी थोड़ी शक्ति हो वह दो वार भोजनकी प्रतिज्ञा कर प्रभुकी स्थापना करे ॥ ४७ ॥ उसके वाद एक यागमंडलकी पूजा करे फिर द्वारपाल और श्री आदि देवताओंकी पूजा करके मंडपके वाहर शुद्ध स्थानमें ऊंचे आसनपर मूर्तिको विराजमान करके अभिषेक करे ।

ततो मंडपवाह्यैकोदेशेर्चाया सुसंस्कृते । कुर्यादाकरशुद्धिं तां शेषं मध्यवदाचरेत् ॥ ४९ ॥

इति मध्यमसंक्षिप्तप्रतिष्ठानुष्ठानविधानम् ।

प्रासादस्य ध्वजं चिन्हं तेनासौ शोभते यतः । शुभप्रदश्च सर्वेषां तस्मात्तमधिरोपयेत् ॥ ५० ॥
हस्तत्रिभागविस्तीर्णैरर्धहस्तायतैर्दृढैः । वस्त्रोत्तमसुसंश्लिष्टैर्ध्वजं निर्मापयेच्छुभम् ॥ ५१ ॥
सितं रक्तं सितं पीतं सितं कृष्णं पुनः पुनः । यावत्प्रासाददीर्घत्वं तावत्संघट्टयेत् क्रमात् ५२
चंद्रार्धचंद्रमुक्तास्रक्किंकिणीतारकादिभिः । नाना सद्रूपयुग्मैश्च चित्रैः पत्रैर्विचित्रयेत् ॥ ५३ ॥
अधश्छत्रत्रयं मूर्धस्तस्याधः पद्मवाहनम् । तस्याधः कलशं पूर्णं पार्श्वयोः स्वस्तिकं लिखेत् ५४
दीपदंडौ लिखेत्स्वस्ति शिखायाः पार्श्वयोस्तथा । पार्श्वयोरातपत्रस्य श्वेतचामरयुग्मकम् ॥५५॥

और वाकी क्रियाओंको अर्थात् क्षमावनी आदिको पूर्वकथित रीतिसे करे ॥ ४८ । ४९ ॥ यह मध्यम और संक्षेपरीतिसे प्रतिष्ठाकी विधि कही गई है ॥ उसके वाद जिन मंदिरके शिखरपर धुजाको चढावे उससे मंदिरकी शोभा होती है और सबको कल्याण देता है ॥ ५० ॥ बारह अंगुल लंबी और आठ अंगुल चौड़ी मजबूत उत्तम कपड़ेकी धुजा बनवावे ॥ ५१ ॥ धुजाका कपड़ा सफेद लाल सफेद पीला सफेद काला फिर सी क्रमसे रंगवाला तयार करावे ॥ ५२ ॥ धुजामें चंद्रमा माला घंटरियां तारे इत्यादि अनेक चिन्ह बनाके चित्रित करे ॥ ५३ ॥ कलश सातिया दीपदंड छत्र चमर धर्मचक्र लिखकर धुजाके ऊपर जिनबिंबका आकार बनावे। उसमें एक छत्र लगावे। उस धुजामें

मूर्धाधो धवलच्छत्रे ध्वजे वा यक्षमालिखेत् । श्यामं चतुर्भुजं हस्तयुग्मेन रचितांजलिम् ५६
पराभ्यां दधतं मूर्ध्नि धर्मचक्रमृजुस्थितम् । जिनबिंबोर्धमूर्धाने श्वेकछत्रसमान्वितम् ॥ ५७ ॥
दीपदंडादिसंयुक्तं नानालंकरणान्वितम् । हस्तिपृष्टसमारूढं सर्वज्ञाख्यममुं लिखेत् ॥ ५८ ॥
अशोकासननिर्यासचंपकाम्रकदंबकाः । पूगवंशादयोन्येपि दंडस्य भवभूरुहाः ॥ ५९ ॥
सादायायाममानार्धं त्रिभागं वा चतुर्थकम् । ध्वजदंडस्य मानं तद्यथाशोभं प्रकल्पयेत् ॥६०॥
प्रासादस्योर्ध्वतुर्यांशे वेदिका वेदिकस्थितम् । आधारं धनदंडस्य यथोक्तं परिकल्पयेत्॥६१॥
अथ मंडलमभ्यर्च्य संक्षेपाद् ध्वजदेवता । प्रतिमाप्यानादिसिद्धमंत्रेणाष्टोत्तरं शतम् ॥ ६२ ॥
स्वधिवास्य ध्वजं स्तुत्वा तन्मंत्रेण घृतादिभिः । अशोकाश्वत्थवत्राद्यदर्भमालाभिवेष्टितम् ६३
ध्वजदंडं समभ्यर्च्य ध्यात्वा रत्नत्रयात्मकम् ।तच्चूलिकां तथैवाभिषिच्य धीशक्तिरूपिणीं६४
संचिंत्य मंडपपुरो गर्ते शाल्यादिपूरिते । पूजिते दधिदूर्वाद्यैस्तदूर्ध्वं स्थापयेद् दृढम् ॥ ६५॥

अशोक चंपा आम कदंब सुपारी वंश आदिके वृक्ष चिन्हित करे ॥ ५४ से ५९ ॥ धजाके दंडेका प्रमाण शोभाके अनुसार होना चाहिये ॥ ६० वह प्रमाण मंदिरकी ऊंचाईसे चौथाई हो तो अच्छा है । और वेदीके ऊपर भी धुजा चढाना चाहिये ॥ ६१ ॥ उसके बाद धुजाके मंडल और प्रतिमाकी स्तुतिकरके अनादिमंत्र (णमोकार मंत्र)को एकसौ आठवार जपकर धुजाको दंडमें लगाके " ॐ नमो " इत्यादि ध्वजारोपणमंत्रको बोल शुभ लग्नमें शिखरमें

मंत्रमुच्चार्य तं दर्पणप्रतिबिंबितयक्षं तज्जलैरभिषिंच्य गंधादिभिश्चार्चयित्वा मुखवस्त्रं दत्वा नयनोन्मीलनं सुमुहूर्ते कुर्यात् । इति ध्वजदेवताप्रतिष्ठाविधानम् ।

एवं कृत्वा ध्वजारोहं पुण्यं प्राप्याद्भुतं कृती । भुक्त्वा तथादिसुभगः श्रेयोनिर्वृतिमश्नुते ॥७८॥

इति ध्वजारोपणविधानम् ।

प्रासादप्रतिमे अनेन विधिना ये कारयित्वार्हतां

भक्त्यानिहुतशक्तयो विदधते नित्याभिषेकादिकान् ।

वेदीके नीचे पूर्व दिशामें धुजाको रख उसमें चिन्हित यक्ष देवको इसप्रकार प्रतिष्ठित करे। "ओं" इत्यादि बोलकर आवाहन स्थापन सन्निधीकरण करे । उसके बाद सर्वौषधीसे मिलेहुए जलाशयके जलसे भरे कलशोंको आगे रख अमृतादि पूर्व कथितमंत्रसे उस जलको मंत्रितकर धुजाके आगे लिखे हुए पत्तेको रख चंदन अक्षत पुष्पोंसे " ओं ह्रीं " इत्यादि मंत्र बोलता हुआ दर्पणमें स्थित यक्षके आकारकी पूजा शुभ मुहूर्तमें करे । यह धुजाकी प्रतिष्ठाविधि कही गई है ॥ इस रीतिसे धुजारोहण करता हुआ बुद्धिमान पुरुष महान पुण्यका उपार्जन करके तथा पुण्यफल भोगके मोक्षसुखको पाता है ॥ ७८ ॥ यह धुजा चढानेकी विधि पूर्ण हुई । मोक्षके इच्छुक जो भव्यजीव अर्हंत जिनका मंदिर और प्रतिमाको तयार कराके अपनी

पूजाज्ञा विभवाधिपत्यमहिमोदग्राः शिवाशाधरा-
स्ते भुक्त्वा पदवीर्भजंति परमानंदैकसांद्रं पदम् ॥ ७९ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि अभिषेकादिविधानीयो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

शक्तिको न छिपाकर भक्तिसहित प्रतिदिन अभिषेक पूजा करते हैं वे उत्तम भोगोंको भोगकर परमानंद स्वरूप मोक्ष पदको पाते हैं ॥ ७९ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित प्रतिष्ठासारोद्धारमें अभिषेका विधिको कहनेवाला पांचवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥



अथ सिद्धप्रतिमादिप्रतिष्ठाविधानान्यभिधास्यामः—

आचार्यो मंडपे रम्ये सद्वेद्यां चूर्णसत्तमैः । स्वस्वमंडलमालिख्य संपूज्य तिलकद्रवैः ॥ १ ॥
हेमादिपात्रे हेमादिलेखन्या यंत्रमुद्धृतम् । तन्मध्ये न्यस्य जात्यादिपुष्पैरष्टोत्तरं शतम् ॥ २ ॥
स्वस्वमंत्रेण संजप्य निविश्योत्तरमंडपे । वेद्यास्नपनपीठेर्चां धूलीकुंभेन पूर्ववत् ॥ ३ ॥
स्नपयित्वा मंगलादिद्रव्यसंदर्भगर्भितैः । तीर्थांबुसंभृतैः कुंभैर्मु . ? पल्लवैः ॥ ४ ॥
दधिदूर्वाक्षतकुशस्रक्चित्रैर्मंत्रसंस्कृतैः . प्रापय्याकरशुद्धिं प्राक् यंत्रस्योपरि विष्टरे ॥ ५ ॥
..........कीर्त्य तस्यामारोप्य तद्गुणान् । आवाहनादिकं कृत्वा तां युंज्यात्तन्मयीं स्मरन् ॥

अव सिद्ध आदिकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठाविधिको कहते हैं । प्रतिष्ठाचार्य सुंदर मंडपकी सुंदर वेदीमें उत्तम चूर्णसे अपने २ मांडले लिखकर पूजे । फिर घिसे हुए चंदन या कुंकुसे सोनें आदिके पात्रमें सोनें आदिकी सलाईसे यंत्र लिखकर उसमें एकसौ आठ चमेलीके पुष्पोंको रख अपनें २ मंत्रसे मंत्रित करे । फिर उत्तर मंडपमें वेदीके अभिषेकके सिंहासनपर प्रतिमाको रख जलादिसे अभिषेक पहलेकी तरह करे । ॥ १ । २ । ३ । ४ । ५ ॥ उसके वाद उस प्रतिमामें उसके गुणोंका स्थापनकर तन्मयी स्मरण करता हुआ आवाहना-

तिलकेन सुलग्नेधिवास्य व्यक्तास्यलोचनं । ततोऽभिषिंच्य चाभ्यर्चेत्ततः कुर्यात् क्रियाधिकम्

ततो विशेषः ।

स्नानादिविधिमाधाय सिद्धचक्रं यथागमम् । उद्धृत्य वेदिकापीठे न्यस्य श्रीचंदनादिभिः ॥८॥
संपूज्य सिद्धमात्मानं ध्यायन्नष्टोत्तरं शतम् । जातीपुष्पैर्जपेन्मूलमंत्रेण ज्ञानमुद्रया ॥ ९ ॥

ओंकाराधो त्रिभागी वलयनन्यस्तमूर्द्धाग्निमद्दं
ह्रीं पिंडात्मादितौनाहतममृतपृपरस्यांदिनालं लिखित्वा ।
अस्यौसेत्यौ नयो युक् सकलशशिवृतं तद्बहिस्तद्बहिस्तु
संज्ञानालोकचर्या वलतप इति चानादिसंसिद्धमंत्रः ॥ १० ॥
तद्बाथ स्वरोयं वसुदलकमलं चांतरे तद्दलाना—
मों ह्रीं श्रीं र्हं मुखांत्यानिलवियदमुखा शेषवर्गैश्च युक्तम् ।

दि करे ॥ ६ ॥ फिर शुभ लग्नमें तिलकविधि मुखोद्घाटन नेत्रोन्मीलन आदि पूर्वोक्त क्रिया करके अभिषेकपूर्वक पूजा करे ॥ ७ ॥ यहां एक क्रिया विशेष है कि स्नानादिविधि करके शास्त्रके अनुसार सिद्धचक्रको चंदनादिसे वेदीपर लिखकर पूजके सिद्ध आत्माका ध्यान करता हुआ ज्ञानमुद्रासे एकसौ आठ चमेलीके फूलोंसे जाप करे ॥ ८ । ९ ॥ "ओंकारा" इत्यादि तीन श्लोकोंमें कही गई विधिके अनुसार सिद्धचक्र बनावे ॥ १० । ११ । १२ ॥

विन्यस्यानाहतंते शिरसि विरहितं चांतरालेषु चाद्यं
पंचानां सतायनां वलयतु कुशलः क्रौंरुधामा ययांत्रिः ॥ ११ ॥
पत्रांतमंत्रपूर्वैर्जिनवितनुचतुस्तीर्थसमेधचक्र—
पादू वाक्यैर्ण...ततनुमयानाहतग्रंथनाद्यैः ।
स्वस्वस्थानास्थिताशेषमुपरि दधतं सप्तकं वारकं वा
रवर्णा ब्रह्माणं च स नग्रहमवानिष्टतं सत् करि रं करोति ॥ १२ ॥

इति बृहत्सिद्धचक्रोद्धरणम् ।

साम्री सार्धदुशीर्ष अ.................................... ।
पेतोद्यसारं विनयमुखगुरूद्दिष्टवर्णाविशिष्टं
मंत्रेद्धां सैद्धचक्रं विदधतु सुधियोध्यात्ममध्यात्मबुद्धाम् ॥ १३ ॥
ओं ह्रीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा इदं वारि गंधं................ ।
ऊर्ध्वाधो रयुतं सविंदु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं
वर्गापूरितदिग्गतांबुजदलं तत्संधितत्त्वान्वितम् ।

यह बृहत्सिद्धचक्रका उद्धार हुआ । "साम्री" इत्यादि श्लोकमें कथित रीतिसे लघु सिद्धचक्र वनाके "ओं" इत्यादि बोलकर जलादि चढावे ॥ १३ ॥ "ऊर्ध्वाधो" इत्यादिमें

अंतःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकारसंवेष्टितं
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकंठीरवः ॥ १४ ॥

इति लघुसिद्धचक्रोद्धरणं । अत्रायं मंत्रः । ओं अर्हं अ सि आ उ सा ह्रीं अर्हं स्वाहा । शेषं पूर्ववत् ।

ततोभिषिच्य तीर्थांभःकुंभैःप्रागुक्तकल्पनैः । गुणैरिवार्चामष्टाभिः सिद्धस्तोत्रं पुरो हितम् ॥ १५ ॥
पठित्वा तद्गुणारोपप्रभृत्याप्याद्य तां स्मरन् । साक्षात्सिद्धं तिलकयेच्चंदनेन सहेंदुना ॥ १६ ॥

आकारशुद्धिं कृत्वा यस्यानुग्रहेत्यादि सिद्धस्तोत्रमधीत्य प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । ततः—

आकारैर्वियुतं युतं च युगपन्निध्यातृबोद्धृस्फुटं
विश्वं स्वाभिनिवेशसौम्यमसमानंदैकसंवेदनं ।
स्वस्वादक्षसमक्षमाक्षयतमस्थामावगाहोत्तमं
भात्वत्रागुरुलघ्वनंतगुणमप्यष्टात्मसिद्धं वपुः ॥ १७ ॥

कहे गये सिद्धचक्रका उद्धार करके "ओं" इत्यादि मंत्रका जाप करे ॥ १४ ॥ यह लघुसिद्धचक्रका उद्धार हुआ । शेष विधि पहलेकी तरह करे । फिर सिद्ध प्रतिमाका जलसे भरे हुए घड़ोंसे अभिषेक कर आठ गुणोंको स्मरण करता हुआ तिलक विधि करे ॥ १५।१६ ॥ आकारशुद्धि करके "यस्यानुग्रह" इत्यादि पूर्व कथित सिद्ध स्तोत्रका पाठ करके प्रति-

एतत्पठन्नर्चां समंतात् परामृशेत्। गुणारोपणम्। ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरिमेष्ठिभ्यो नमः अत्रागच्छ। ओं ह्रीं तिष्ठ २ ठ ठ स्वाहा। ओं ह्रीं मम सन्निहितो भव २ वषट् स्वाहा। आवाहनादिमंत्रः। अ सि आ उ सा सिद्धाधिपतये नमः। तिलकमंत्रः। आ-
ततश्च मुखवस्त्रादिविधीन् कृत्वाचरेत् क्रियाम्। सिद्धभक्त्यैवमाचार्याद्यर्चान्यासेपि कल्पयेत्॥

ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये मुखवस्त्रं ददामीति स्वाहा। मुखवस्त्रमंत्र। ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये मुखवस्त्रमपनयामीति स्वाहा। श्रीमुखोद्घाटनमंत्रः। ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये प्रबुध्यस्व २ ध्यातृजनमनांसि पुनीहि पुनीहीति स्वाहा। नेत्रोन्मीलनमंत्रः। ओं ह्रीं सिद्धाधिपतिं तीर्थोदकेनाभिषिंचामीति स्वाहा। तीर्थोदकस्नपनम्। ओं ह्रीं पुंड्रेक्षुप्रमुखरसैरभिषिंचामीति स्वाहा। रसस्नपनं। ओं ह्रीं हैयंगवीनघृतेन स्नपयामीति स्वाहा। घृतस्नपनम्। ओं ह्रीं धारोष्णगव्यक्षीरपूरेणाभिषुणोमीति स्वाहा। दुग्धस्नपनं। ओं ह्रीं जगन्मंगलेन दध्ना स्नपयामीति स्वाहा। दधिस्नपनं। ओं ह्रीं दिव्यप्रभूतसुरभिकषायद्रव्यकल्ककाथचूर्णैरुपस्करोमीति स्वाहा। उद्वर्तनादिविधानम्। ओं ह्रीं विचित्रपवित्रमनोरमफलैर-

माके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करे। उसके बाद "आकारे" इत्यादि बोलकर प्रतिमाका चारोंतरफसे स्पर्श करे॥ १७॥ "ओं ह्रीं" इत्यादि मंत्रसे आवाहनादि करे "असि" इत्यादि तिलकमंत्रसे तिलकदान विधि करे। उसके बाद मुखोद्घाटन नेत्रोन्मीलन सिद्धभक्ति आदि विधी करे। इसीतरह आचार्य आदिकी भी प्रतिमास्थापनामें पूर्वकथित

वतारयामीति स्वाहा । फलावतारणं । ओं परमसुरभिद्रव्यसंदर्भपारिमलगर्भतीर्थांबुसंपूर्णसुवर्णकुंभाष्टकतो-
येन परिषेचयामीति स्वाहा । कलशाष्टकाभिषेकः । एष मंत्र आकरशुद्ध्यभिषेकेपि योज्यः । ओं ह्रीं
परमसौमनस्यनिबंधनगंधोदकपूरेणाप्लावयामीति स्वाहा । गंधोदकस्नपनमंत्रः । ओं ह्रीं असि आ
उ सा सिद्धाधिपतिं लोकोत्तरनीरधाराभिः परिचरामीति स्वाहा । तीर्थोदकमंत्रः । एवं हरिचंदनेप्यूह्यं
मंत्राष्टकम् । हरिचंदन इव कलमक्षतपुंजाष्टकमंदारप्रमुखकुसुमदामार्द्धि विविधसान्नायान्नसारदशामुख-
प्रदीपितदीपकाष्टकसुगंधद्रव्यसंयोजनादिशेषसंभूतध्वजधूपघटाष्टकबंधुरगंधवणरसप्रीणितबहिरंतःकरणम-
हाफलस्तवकाष्टकजलादियज्ञां दूर्वादर्भदधिसिद्धार्थादिमंगमद्रव्यविनिर्तितमहार्घसत्कारोपचारैः परिचरा-
मीति स्वाहा । जलाद्यर्नीतसपर्याविधानम् । ततः क्रियां कृत्वाभिमतप्रार्थनार्थमिदं पठित्वा पुष्पांजलिं
प्रकल्पयेत् ।

आयुर्द्राघयतु व्रतं द्रढयतु व्याधीन् व्यपोहत्वयं
श्रेयांसि प्रगुणीकरोतु वितनोत्वासिंधु शुभ्रं यशः ।
शत्रून् शातयतु श्रियोभिरमयत्वश्रांतमुन्मुद्रय-
त्वानंदं भजतां प्रतिष्ठित इह श्रीसिद्धनाथः सताम् ॥ १९ ॥

क्रिया ५८ ॥ १८ ॥ " ओं " इत्यादि मंत्र बोलकर मुखोद्घाटन नेत्रोन्मीलन जलादि भि-
षेक पूजा आदि क्रिया करनी चाहिये । उसके बाद इष्ट प्रार्थनाके लिये " आयु " इत्यादि

ततश्च पूर्ववद्विसर्जनादिकमनुतिष्ठेत् इति सिद्धप्रतिष्ठाविधानम् । अथाचार्यप्रतिष्ठाविधानम् ।
गणभृद्वलयं वेद्यामभ्यर्च्य स्नपयेच्च तम्। पंचाचारान् स्मरेत्पंच कलशांश्चतुरः पुनः ॥ २० ॥
चतुरोत्रानुयोगांश्च..................निर्त्रीणि तन्मनाः ॥ २१ ॥
ततो महर्षिस्तवनं पठित्वा चतुरो विधीन्। कृत्वा तिलकयेत्साक्षात्सूर्यादीन् प्रतिमां स्मरन्॥२२
मुखवस्त्रादिकर्माणि विधाय च विधिं ततः। क्रियाकांडोदितां कृत्वा यथावद्विधिमाचरेत् ॥२३॥

अथ गणधरवलयमनुशिष्यते । पूर्वं षट्कोणचक्रे क्ष्मावीजाक्षरं लिखेत् तदुपरि अर्हं इति न्यसेत् तस्य दक्षिणतो वामतश्च ह्रीं विन्यसेत् पीठादधः श्रीं न्यसेत् । ततः ओं अ सि आ उ सा स्वाहेत्यनेन श्रीकारस्य दक्षिणतः प्रभृत्युत्तरतो यावत्प्रादक्षिण्येन वेष्टयेत् । ततः कोणेषु षट्स्वपि मध्ये अप्रतिचक्रे फडिति सव्येन स्थापयेत् । तथा कोणांतरालेषु विचक्राय स्वाहेति षड्बीजानि झौंकारोत्तराणि अपसव्ये

श्लोक पढकर पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ १९ ॥ फिर पूर्वकी रीतिसे विसर्जन आदि करे । यह सिद्धप्रतिमाकी प्रतिष्ठा विधि कही गई ॥ अब आचार्यप्रतिष्ठाकी विधि कहते हैं । बुद्धिमान् गणधर वलय (चक्र) को वेदीमें स्थापन कर पांच कलशोंसे स्नपन करे और दर्शनाचार आदि पांच आचारोंको स्मरण करता हुआ उस चक्रकी पूजा करे ॥ २० ॥ फिर चार अनुयोगोंका चिंतवन करके महर्षिस्तवन पढके तिलकादि क्रिया करे ॥ २१।२२ २३ ॥

विन्यसेत् । तद्बहिर्वलयं कृत्वाष्टसु पत्रेषु णमो जिणाणं, णमो, ओहिजिणाणं णमो कुट्ठबुद्धीणं, णमो बीजबुद्धीणं, णमो पदाणुसारीणं—इत्यष्टौ पदानि क्रमेण लिखेत् । ततस्तद्बहिस्तद्वत् षोडशपत्रेषु णमो संभिण्णसोदाराणं, णमो पत्तेयबुद्धाणं, णमो सयं बुद्धाणं, णमो बोहियबुद्धाणं, णमो उजुमदीणं, णमो विउलमदीणं, णमो दसपुव्वीणं, णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं, णमो विउव्वणइड्ढिपत्ताणं, णमो सिज्जाहराणं, णमो चारणाणं, णमो समणाणं, णमो आगासगामीणं, णमो आसिविसाणं, णमो दिट्ठिविसाणं—इति षोडशपदानि विलिखेत् । ततस्तद्बहिस्तद्वच्चतुर्विंशतिपत्रेषु णमो घोरगुणपरक्कमाणं, णमो घोरगुणवंभयारीणं, णमो आमोसहिपत्ताणं, णमो खेल्लोसहिपत्ताणं, णमो जल्लोसहिपत्ताणं, णमो विडौसहिपत्ताणं, णमो सव्वोसहिपत्ताणं, णमो मणबलीणं, णमो वचिबलीणं, णमो कायबलीणं, णमो खीरसवीणं, णमो सप्पिसवीणं, णमो महुरसवीणं, णमो अमियसवीणं, णमो अक्खीणमहाणसाणं, णमो वड्ढमाणाणं, णमो लोए सव सिद्धायदणाणं, णमो भयवदो महदि महावीर वड्ढमाण बुद्धिरिसीणं । चतुर्विंशतिपदान्यालिख्य ह्रींकारमात्रया त्रिगुणं वेष्टयित्वा क्रौंकारेण निरुद्ध्य बहिः पृथ्वीमंडलं ह्रीं श्रीं अर्हं असि आउसा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा । अनेन मध्यपूजां विदध्यात् । णमो अरहंताणं णमो जिणाणं इत्यादि ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आउसा अप्रतिचक्रे झ्रौं

“ अथ ” इत्यादिसे कहे गये गणधरचक्रको बनावे । और पूर्वकी तरह आकरशुद्धि आदि क्रिया करके “ निर्वेद ” इत्यादि महर्षि स्तवन पढता हुआ आचार्य आदिकी प्रतिमाको

झ्रौं स्वाहा। एतेष्ट चत्वारः। अथ पूर्ववदाकरशुद्ध्यादिकं कृत्वा निर्वेदेत्यादि महर्षिस्तवनं पठन्नर्चां समंतात्परामृष्य गुणारोपणं कुर्यात्। ओं ऱ्हूं णमो आइरियाणं आचार्यपरमेष्ठिन्नत्र एहि २ संवौषट् ओं ऱ्हूं तिष्ठ २ ठ २, ओं ऱ्हूं मम सन्निहितो भव २ वषट्। तथा ओं ह्रीं णमो उवज्झायाणं उपाध्यायपरमेष्ठिन्नत्र एहि २ संवौषट् ओं ह्रौं तिष्ठ २ ठ ठ, ओं ह्रौं सन्निहितो भव भव वषट्। तथा ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं साधुपरमेष्ठिन्नत्र एहि २ संवौषट्। ओं ह्रः तिष्ठ २ ठ ठ, ओं ह्रः सन्निहितो भव २ वषट्। इत्याचार्यादीनामावाहनादिमंत्राः। ततश्च ओं ऱ्हूं णमो आइरियाणं धर्माचाराधिपतये नमः इत्यादिमंत्रैः सिद्धप्रतिमावत्तिलकादिविधीन् विदध्यात्। एवमुपाध्यायसाधुपरमेष्ठिनोरपि कल्पः कल्पयेत्॥ इत्याचार्यादिप्रतिष्ठाविधानम्। अथ श्रुतदेवतादिप्रतिष्ठाविधानम्।

वेद्यां सारस्वतं यंत्रं विलिख्य तस्य शोधनम्। अनुयोगैरिवाचार्यैश्चतुर्भिस्तीर्थवार्घटैः॥२४

यंत्रेर्चां न्यस्य गां स्तुत्वा कृत्वा कर्मचतुष्टयम्।........त यन्मूलमंत्रेणान्यं विधिं सृजेत्२५

स्पर्श करके उसमें गुणोंका स्थापन करे। फिर "ओं ह्रं" इत्यादि बोलकर आचार्य उपाध्याय सर्वसाधुका आवाहन आदि करे। उसके बाद "ओं ह्रं" इत्यादि मंत्रसे सिद्ध प्रतिमाकी तरह तिलक आदि विधि करे। यह आचार्य आदि धर्मगुरूकी प्रतिष्ठाविधि हुई॥ अब सरस्वतीकी प्रतिष्ठा विधि करते हैं। प्रतिष्ठाचार्य वेदीमें सारस्वत यंत्र लिखकर उसको सामनेके दर्पणमें प्रतिबिंबित कर चार जलके घड़ोंसे अभिषेक करे। उस यंत्रमें सरस्वतीकी मूर्तिको रख स्तुतिपूर्वक पूजा करे तथा सरस्वतीमंत्रका जाप करे॥ ॥ २४। २५॥

अथ सारस्वतमंत्रमनुशिष्येत् । पूर्वं कर्णिकायां ह्रींकारमालिखेद्बाह्ये हंकारं सविसर्गसकारं च लिखित्वा ओं ह्रीं श्रीं वद २ वाग्वादिनि भगवति सरस्वति ह्रीं नमः इत्यनेन मूलमंत्रेण वेष्टयेत् । तद्बहिः पूर्वादिक्रमेण चतुर्षु ओं वाग्वादिन्यै नमः, ओं भगवत्यै नमः, ओं सरस्वत्यै नमः, ओं श्रुतदेव्यै नमः । इति चतुराख्या लिखेत् । तद्बहिरष्टसु पत्रेषु ओं नंदायै नमः, ओं स्तंभिन्यै नमः इत्यादि चाष्टौ देवीर्लिखेत् । तद्बहिश्च षोडशपत्रेषु ओं रोहिण्यै नमः इत्यादि मंत्रैः षोडश विद्यादेवीः स्थापयेत् । ततः पूर्वाद्यष्टदिक्षु इंद्राय स्वाहेत्यादिमंत्रैरष्टौ दिक्पालान् विन्यसेत् । पूर्वैशानदिशोश्चांतराले ओं अधोनागेभ्यः स्वाहेति नागान् विन्यसेत् । पश्चिमदिक्पालस्योपरिष्टाच्च ओं ऊर्ध्वब्रह्मणे नमः इति परमब्रह्म प्रतिष्ठयेत् । इंद्रादवश्च ओं ह्रीं मयूरवाहिन्यै नमः इति वागधिदेवतां स्थापयेत् । ततस्त्रिर्मायामात्रया क्रौंकारेण निरुध्य तदावेष्ट्य बहिः पृथ्वीमंडलं विलिखेत् इति । अथ ओं ह्रीं श्रुतदेव्यः कलशस्नपनं करोमीति स्वाहा । इत्यनेन कलशानभिमंत्र्याकरं शोधयेत् । ततो बोधेनेत्यादि श्रुतदेवीस्तवनं पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

बारह अंगं गिज्जा दंसणतिलया चरित्तवच्छहरा ।
चोदसपुव्वहराणं ठावे दव्वाय सुयदेवा ॥ २६ ॥

अब सरस्वतीयन्त्रका उद्धार दिखलाते हैं । पहले कर्णिका (बीचके भाग) में " ह्रीं " लिखे उसके बाहर " हं सः " लिखकर " ओं ह्रीं श्रीं वद २ वाग्वादिनि भग-

आचारं शिरसि सूत्रकृत् वक्त्रांतु कंठिका । स्थानेन समवायागव्याख्याप्रज्ञप्तिदोर्लताम् ॥२७
वाग्देवतां ज्ञातृकथोपासकाध्ययनस्तनी । अंतकृद्दशसन्नाभि मनुत्तरदशां गतः ॥ २८ ॥
सुनितंबां सुजघनां प्रश्नव्याकरणश्रुतात् । विपाकसूत्रदृग्वादचरणांबरां ? ॥ २९ ॥
सम्यक्त्वतिलकां पूर्वचतुर्दश विभूषणाम् । तावत्प्रकीर्णकोदीर्णचारुपत्रांकुरश्रियम् ॥ ३० ॥
आप्तदृष्टप्रवाहौघद्रव्यभावाधिदेवताम् । परब्रह्म पथादृशां स्याद्युक्ति भुक्तिमुक्तिदाम् ॥३१॥
सर्वदर्शनपाखंडदेवदैत्यं खगार्चिता । जगन्मातरमुद्धर्तुं जगदत्रावतारयेत् ॥ ३२ ॥

वति सरस्वति ह्रीं नमः" इस सरस्वतीमंत्रको चारों तरफ वेढै । उसके बाहर पूर्व आदि दिशाके क्रमसे चार पत्तोंपर "ओं वाग्वादिन्यै नमः" इत्यादि चारोंको लिखे । उसके बाहर आठों पत्तोंपर "ओं नंदायै नमः" इत्यादि आठ देवियोंको लिखे । उसके सोलह पत्तोंपर "ओं रोहिण्यै नमः" इत्यादि सोलह विद्यादेवियोंको लिखे । उसके बाहर पूर्व आदि आठ दिशाओंमें "इंद्राय स्वाहा" इत्यादि मंत्रोंसे आठ दिक्पालोंको स्थापन करे । पूर्व और ईशान्य दिशाओंके बीचमें "ओं अधो नागेभ्यः स्वाहा" लिखकर नागकुमारकी स्थापना करे । पश्चिमदिशाके दिक्पालके ऊपर "ओं ऊर्ध्वब्रह्मणे नमः" ऐसा लिखकर परमब्रह्मकी स्थापना करे । इंद्रके नीचे "ओं ह्रीं मयूरवाहिन्यै नमः" लिखकर सरस्वती देवीकी स्थापना करे । उसके बाद तीनवार ईकारसे तथा क्रों से वेढकर बाहर पृथ्वीमंडल लिखे ॥ फिर "ओं ह्रीं" इत्यादि मंत्रसे कलशोंको मंत्रितकर

ओं अर्हन्मुखकमलवासिनि पापानि क्षयं कर श्रुतज्वालासहस्रप्रज्वलिते सरस्वति मम पापं हन २ क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः क्षीरवरधवले अमृतसंभवे वं वं हुं स्वाहा । एतत्पठन् प्रतिमायां अंग-प्रत्यंगपरामर्शं कुर्यात् । गुणारोपणं । ओं ह्रीं श्रीं अत्र एहि २ संवौषट्, ओं ह्रीं तिष्ठ २ ठ ठ, ओं ह्रीं सन्निहितो भव वषट् । आवाहनादिमंत्रः । ततो मूलमंत्रेण तिलकं दत्वा पूर्ववदाधिवासनाविधीन् विदध्यात् ।

शुभे शिलादावुत्कीर्य श्रुतस्कंधमपि न्यसेत् । ब्राह्मीन्यासविधानेन श्रुतस्कंधमिह स्तुयात् ३३
सुलेखकेन संलिख्य परमागमपुस्तकम् । ब्राह्मीं वा श्रुतपंचम्यां सुलग्ने वा प्रतिष्ठयेत् ३४

आकरशुद्धि करे । उसके बाद " बोधेन " इत्यादि श्रुतदेवीका स्तवन पढकर प्रतिमाके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करे । उसके बाद " बारह " इत्यादि सात श्लोक तथा " ओं अर्हं " इत्यादि मंत्र बोलकर सरस्वतीप्रतिमाके अंगोंका स्पर्श करें ॥ २६ से ३२ तक ॥ फिर गुणोंका स्थापन करे । उसके बाद " ओं " इत्यादि मंत्र बोलकर आवाहन आदि करे । उसके बाद मूलमंत्रसे तिलक देकर पूर्वरीतिके अनुसार अधिवासना आदि क्रियाओंको करे । उत्तम शिला आदिमें सरस्वतीकी मूर्ति खुदवाकर स्थापना करके स्तुति करे ॥ ३३ ॥ अथवा परमागमके शास्त्रोंको अच्छे विद्वान् लेखकसे लिखवाकर श्रुतपंचमीके दिन शुभ लग्नमें सरस्वतीप्रतिष्ठा करे ॥ ३४ ॥

संवौषट् स्वाहेत्यादि दिक्कुमारीमंत्रानष्टौ तद्बहिर्वलयांतः, ओं ह्रीं क्रौं यक्षवैश्वानररक्षो नहृतपन्नगासुरकुमारसंविश्वविद्यमालिचमरवैरोचनमहाविद्यमारोविद्येश्वरपिंडभुगभिधानपंचदशतिथिदेवान् संस्थापयामि स्वाहेति तिथिदेवाः पंचदश तद्बहिर्वलयांतः, ओं ह्रीं क्रौं सूर्यसोमांगारकसौम्यगुरुभार्गवशनिराहुकेतून् संस्थापयामि स्वाहेति ग्रहदेवान्नव तद्बहिर्मंडलांतः, ओं ह्रीं क्रौं किंनरेंद्रकिंपुरुषेंद्रमहोरगेंद्रगंधर्वेंद्रयक्षेंद्रराक्षसेंद्रभूतेंद्रपिशाचेंद्रान् संस्थापयामि स्वाहेति विलिखेत् । एवंमंडलं वर्तयित्वा स्वस्वमंत्रैर्यक्षादिदेवान् जलगंधादिभिरभ्यर्च्य कलशाष्टकादिभिर्वेदीं भूपयेत् । अथ स्नपनमंडपे तां प्रतिमामानीय दर्भप्रस्तरे धान्यप्रस्तरे वा स्थापयित्वा क्रमेण स्नापयेत् । ततस्तत्रैव वेदिकायां नवकलशान् सर्वालंकारोपेतान् सर्वौषधिसंमिश्रशुद्धयंत्रमंत्रान्विततीर्थजलपरिपूर्णान् शालिप्रस्तरोपरि लिखितमायावीजां संलेख्य तत्पश्चिमभागे स्नपनपीठं स्थापयित्वा प्रक्षाल्यालंकृत्य तदुपरि भुवनाधिपतिं लिखित्वा अक्षतपुष्पदर्भान् विरचय्य तत्तत्प्रतिमां तत्र संस्थापयित्वा पंचोपचारविधिनाभ्यर्च्य वाहनाष्टकलशैर्मंत्रपूर्वकमभिषिच्य चतुर्नीराजनं कृत्वा पुष्पांजलिपूर्वकमेकादशमभिषेकं मध्यकलेशनामृतमंत्रेण कुर्यात् ।

तेजोमायादिकाख्यानं क्रियान्वितम् । तत्तत्पल्लवसंयुक्तं करोम्यंतपदं स्मरेत् ॥ ४९ ॥

इत्यादिमें कथित विधिसे पूजा करे । अमृतमंत्रसे यक्षप्रतिमाका अभिषेक करे । " तेजो " इत्यादि बोलकर " अथैव " इत्यादिसे कही हुई विधिसे स्थापना करे ॥ ४९ ॥ इसीप्रकार

अथैवमाकारशुद्धिं विधाय मूलवेद्या नवधौतवस्त्रसदर्भाक्षतपुष्पं प्रस्तीर्य तत्र तत्प्रतिमां निवेश्याभ्यर्च्य कांडाग्रदूर्वाग्रेण प्रोक्षणं विधाय शांतिहोमं यक्षमंत्रेण कृत्वा पुण्याहं घोषयित्वा पूर्वोक्तविधिना सुमुहूर्ते तिलकं दद्यात् ततोऽधिमानादिविधिं विधाय वस्त्राभरणमाल्यादिभिरभ्यर्च्य विसर्जनादिकं कुर्यात् । ततः प्रभृति च तानि संपूजयेत् ।

एष एव च शेषाणां यक्षाणां स्थापनाविधिः । यक्षीणां च पितः·········भेदाश्रयौ भवेत ५०
क्षेत्रपालं कर्णिकायां मंत्रपत्रायुधादिभिः । सचूर्णवेद्यामालिख्य पत्रेष्वष्टसु संलिखेत् ॥५१॥
समंत्रान् दिक्पतीनिंद्रादधोभागानुपर्यपि । वरुणस्य लिखेत्सोमं मायोर्वीभ्यां च वेष्टयेत ५२
तत्पद्मं पूजयेद्गंधपुष्पधूपाक्षतादिभिः । अथ तत्प्रतिमां रात्रिमुषितां दर्भसंस्तरे ॥ ५३ ॥
तीर्थांबुस्नपितां तत्र निवेश्यारोप्य तद्गुणान् । आवाहनादि कृत्वा च सूत्रयुक्त्या प्रतिष्ठयेत् ५४

ओं ह्रां क्रौं घोरांधकारसप्रभमंडलगदाधारणव्यग्रोग्रचतुर्भुज अत्र क्षेत्रपालाय संवौषट् स्वाहेति कर्णिकायामालिख्य पूर्वादिदलेष्वष्टसु । ओं ह्रीं इंद्राय स्वाहेत्यादिक्रमेण दिक्पालान् संस्थाप्य इंद्राधः ओं ह्रीं नागेभ्यः स्वाहेति वरुणादूर्ध्वं च ओं ह्रीं सोमाय स्वाहेति विन्यस्य बहिर्मायामात्रया त्रिःपरिक्षिप्य क्रौंकारेण निरुध्य भूमंडलेन वेष्टयेदिति मंडलवर्तनम् ।

यक्षी क्षेत्रपाल वरुण आदिकी प्रतिमा "एष" इत्यादि पांच श्लोकोंमें कथित रीतिसे

एनं सम्यगधीत्य ये गुरुमुखाद्बुध्वा तदर्थं क्रिया
निर्मास्यंति सुमेधसो बुधनताः प्राप्स्यंति ते निर्वृत्तिम् ॥ ६५ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि सिद्धादि-
प्रतिष्ठाविधानीयो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

विधिको कहनेवाले जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धार ग्रंथको मुझ " आशाधरने " कल्याण होनेकेलिये किया है। जो भव्यजीव गुरुके मुखसे इसको पढकर इसकी क्रियायें करेंगे वे बुद्धिमान देवोंसे पूजित हुए परंपरासे मोक्षको पायेंगे ॥ ६५ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प दूसरे नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें
सिद्ध आदिकी मूर्तिप्रतिष्ठाको कहनेवाला छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥



ग्रंथकर्तुः प्रशस्तिः ।

श्रीमानस्ति सपादलक्षविषयः शाकंभरीभूषण-
स्तत्र श्रीरतिधाम मंडलकरं नामास्ति दुर्गं महत् ।
श्रीरत्न्यामुदपादि तत्र विमलव्याघ्रेरवालान्वया-
च्छ्रीसल्लक्षणतो जिनेंद्रसमयश्रद्धालुराशाधरः ॥ १ ॥

सरस्वत्यामिवात्मानं सरस्वत्यामजीजनत् । यः पुत्रं छाहडं गुण्यं रंजितार्जुनभूपतिम् ॥२॥

व्याघ्रेरवालवरवंशसरोजहंसः काव्यामृतौघरसपानसुतृप्तगात्रः ।
सल्लक्षणस्य तनयो नयविश्वचक्षुराशाधरो विजयतां कलिकालिदासः ॥ ३ ॥

इत्युदयसेनमुनिना कविसुहृदा योभिनंदितः प्रीत्या ।
प्रज्ञापुंजोसीति च योभिमतो मदनकीर्तियतिपतिना ॥ ४ ॥

म्लेच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तक्षति-
त्रासाद्विंध्यनरेंद्रदोःपरिमलस्फूर्जत्त्रिवर्गौजसि ।
प्राप्तो मालवमंडले बहुपरीवारः पुरीमावसन्
यो धारामपठज्जिनप्रमितिवाक्शास्त्रे महावीरतः ॥ ५ ॥

आशाधरत्वं मयि विद्धि सिद्धं निसर्गसौन्दर्यमजर्यमार्य ।
सरस्वतीपुत्रतया यदेतदर्थे परं वाच्यमयं प्रपंचः ॥ ६ ॥

इत्युपश्लोकितो विद्वद्विल्हणेन कवीशिना । श्रीविन्ध्यभूपतिमहासान्धिविग्रहिकेण यः ॥ ७ ॥

श्रीमदर्जुनभूपालराज्ये श्रावकसंकुले । जिनधर्मोदयार्थं यो नलकच्छपुरेऽवसत् ॥ ८ ॥

यो द्राग्व्याकरणाब्धिपारमनयच्छुश्रूषमाणान्न कान्
सत्तर्कं परमास्त्रमाप्य न यतः प्रत्यर्थिनः केऽक्षिपन् ।
चेरुः केऽस्खलितं न येन जिनवाग्दीपं पथि ग्राहिताः
पीत्वा काव्यसुधां यतश्च रसिकेष्वापुः प्रतिष्ठां न के ॥ ९ ॥

स्याद्वादविद्याविशदप्रसादः प्रमेयरत्नाकरनामधेयः ।
तर्कप्रबंधो निरवद्यपद्यपीयूषपूरो वहति स्म यस्मात् ॥ १० ॥

सिद्ध्यंकं भरतेश्वराभ्युदयसत्काव्यं निबंधोज्ज्वलं
यस्त्रैविद्यकवीन्द्रमोदनसहं स्वश्रेयसेऽरीरचत् ।
योऽर्हद्वाक्यरसं निबंधरुचिरं शास्त्रं च धर्मामृतं
निर्माय न्यदधान्मुमुक्षुविदुषामानंदसान्द्रे हृदि ॥ ११ ॥

आयुर्वेदविदामिष्टां व्यक्तुं वाग्भटसंहिताम् । अष्टांगहृदयोद्योतं निबंधमसृजच्च यः ॥ १२ ॥

यो मूलाराधनेष्टोपदेशादिषु निबंधनम् । व्यधत्तामरकोशे च क्रियाकलापमुज्जगौ ॥ १३ ॥
रौद्रटस्य व्यधात्काव्यालंकारस्य निबंधनम् । सहस्रनामस्तवनं सनिबंधं च योर्हताम् ।१४।
अर्हन्महाभिषेकार्चाविधिं मोहतमोरविम् । चक्रे नित्यमहोद्योतं स्नानशास्त्रं जिनेशिनाम् ॥१५॥
रत्नत्रयविधानस्य पूजामाहात्म्यवर्णनम् । रत्नत्रयविधानाख्यं शास्त्रं वितनुतेस्म यः ॥१६॥

प्राच्यानि संचर्च्य जिनप्रतिष्ठाशास्त्राणि दृष्ट्वा व्यवहारमैंद्रं ।
आम्नायविच्छेदतमश्छिदेयं ग्रंथः कृतस्तेन युगानुरूपः ॥ १८ ॥

खांडिल्यान्वयभूषणाल्हणसुतः सागारधर्मे रतो
वास्तव्यो नलकच्छचारुनगरे कर्ता परोपक्रियाम् ।
सर्वज्ञार्चनपात्रदानसमयोद्योतप्रतिष्ठाग्रणीः
पापात्साधुरकारयत्पुनरिमं कृत्वोपरोधं मुहुः ॥ १९ ॥
विक्रमवर्षसपंचाशीति द्वादशसतेष्वतीतेषु ।
आश्विनसितांत्यादिवसे साहसमल्लापराक्षस्य ॥ १९ ॥
श्रीदेवपालनृपतेः प्रमारकुलशेखरस्य सौराज्ये ।
नलकच्छपुरे सिद्धो ग्रंथोऽयं नेमिनाथचैत्यगृहे ॥ २० ॥

अनेकार्हप्रतिष्ठाप्तप्रतिष्ठैः केल्हणादिभिः । सद्यः सूक्तानुरागेण पठित्वायं प्रचारितः ॥ २१ ॥

यावद्विश्वोदयो जिनमंदिराणि तिष्ठन्ति शक्रादिभिरर्च्यमानाः ।
तावज्जिनादिप्रतिमाप्रतिष्ठा विधायिनोऽनेन विधापयंतु ॥ २२ ॥

किंच ।

नंदतात्खांडिल्यवंशोत्थः केल्हणो न्यासवित्तरः ।
लिखितो येन पाठार्थमस्य प्रथमपुस्तकम् ॥ २३ ॥

इति प्रशस्तिः ।

इत्याशाधरविरचितो जिनयज्ञकल्पापरनामा प्रतिष्ठासारोद्धारः समाप्तः ।

अब ग्रंथकारकी प्रशस्ति कहते हैं—" श्रीमान् " इत्यादि श्लोकसे लेकर २३ तक पं० आशाधरका वक्तव्य दिखलाया गया है ॥ १ से २३ ॥

इति पं० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाला प्रतिष्ठासारोद्धार समाप्त हुआ ॥

समाप्तोऽयं प्रतिष्ठापाठः ।

१ " मन्निर्बंधं यथा जिनयज्ञकल्पमरीरचत् । त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्रं यो निबन्धालंकृतं व्यधात् ॥ १ ॥
यह श्लोक ग्रन्थान्तरोंकी प्रतिमें अधिक है ।

प्रतिष्ठासारोद्धारका परिशिष्ट ।



मत्यातमावृतिहानिमूलविभवं लब्ध्यक्षराद्यागमप्रामोद्दामवपुः प्रकांडमुचिताचारादिशाखोच्चयम् ।
बाह्यश्रुत्युपशाखमुक्तिसुदलं सद्युक्तिपुष्पश्रुतस्कंधं स्वर्थफलाकुलं घनशमच्छायं भजेघच्छिदे ॥ १ ॥
षट्त्रिंशत्त्रिशतैरवग्रहमुखैः स्मृत्यादिभिः सोजसा मत्यै स्वावरणक्षयोपशमस्वस्वांतोत्थयात्मा यया ।
देशेनेहसि संकरव्यतिकरापोहेन वस्तूचिते योग्यं द्वादशधा बहुप्रभृतिभिर्विद्यात्पुरश्चारुदृक् ॥ २ ॥

एतद्द्वयं पठित्वा श्रुतस्कंधस्थापनार्थं पुस्तकोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

लोकालोकदृशः सदस्यसुक्तैरास्याद्यदर्थश्रुतं निर्यातं ग्रथितं गणेश्वरत्रृपेणांतर्मुहूर्तेन यत् ।
आरातीयमुनिप्रवाहपतितं यत्पुस्तकेष्वर्पितं तज्जैनेंद्रमिहार्पयामि विधिना यष्टुं श्रुतं शाश्वतम् ॥ ३ ॥

विधियज्ञप्रतिज्ञानाय पुस्तकोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

सर्पच्छीकरवारवारितपतद्भृंगांधभृंगव्रजं निर्यत्या कनकाद्रिशृंगसवयोभृंगारनालाननात् ।
स्वर्गंगाद्युपनीतपूतसुरभिद्रव्याढ्यवार्धारया स्यात्कारजननीं जगद्विजयिनीं जैनीं यजे भारतीम् ॥४॥ जलं।

---

१. यहांसे सरस्वतीदेवीकी पूजाका आरंभ है । इससे पहलेका " इंद्र " इत्यादि पाठ दूसरे अध्यायमें आगया है ।

अंतम्नागनिवर्हिणी बहु [illegible] शान्तिना [illegible] ।
स्याद्वादामृतवर्षिणी [illegible] श्रीनंदिन [illegible] ॥ ६ ॥ [illegible] ।
[illegible] ।
प्रत्याख्यान[illegible] । [illegible] ॥ ६ ॥
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥ ७ ॥ [illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥ ८ ॥ [illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥ ९ ॥ [illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥ १० ॥ [illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥ ११ ॥ [illegible] ।

सांविग्नप्रियधर्मभक्तिरसिका मेधाविनेयात्मनां कर्तुं सूरित्रैरनुग्रहमिमां सर्वज्ञवाक्पद्धतिम् ।
तां न्यस्तामिह पुस्तकेष्वधिकृतश्रीदेवतांगेषु वा सद्वस्त्रैः परिधापयामि विविधैः सद्बोधसंसिद्धये॥ १२॥ वस्त्रं ।
गंधाढ्योदकधारया हृदयहृद्गंधैर्विशुद्धाक्षतै रोचिष्णुप्रसवैर्विचित्रचरुभिः स्फारस्फुरद्दीपकैः ।
गीर्वाणस्पृहणीयधूमविलसद्धूपैः सुधारुक्फलस्तोमैः स्वस्तिकपूर्वकैश्च रचितं श्रुत्यै ददेर्घं विभोः ॥ १३ ॥

पुष्पांजलिः । नमोऽस्तु श्रुतज्ञानभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् णमो अरहंताणमित्यादि ।

देवि श्रीचतुराननप्रमुखांभोजाधिवासोत्सवे ब्राह्मि ब्रह्मकलाविकाशिनि जगन्मातस्तमोनाशिनि ।
एतानस्खलितस्वभक्तिनटितानध्यास्य शश्वद्यशोविद्यायुर्वसुविक्रमैरुपचिनु ब्रह्मादियज्ञे धिनु ॥ १४ ॥

एतत्पठित्वा प्रणमेत् । इति श्रुतपूजाविधानम् ।

अथ गुरुपूजा[1] ।

सदा सम्यक्त्वार्के प्रतपति विधूतांधतमसं लसद्विश्वालोकं विलसति वितार्केकनयने ।
भजंते ये वृत्तामृतमपि जने संविभजते घटत्पुष्टिं तेषामिह गणभृतां भानुचरणाः ॥ १५ ॥

पादुकास्थापनम् ।

इमास्तिस्रो गुप्तीरिव शमयितुं कल्मषरजश्चरंती चिच्छक्तीरिव बहिरुतान्वेष्टुमहितान् ।
सुवर्णालूनालात्सुरभिवपुराप्तानुपतिता लुठंतीरब्धाराः क्रमभुवि गुरूणां प्रणिदधे ॥ १६ ॥ जलधारा ।

---

१ अब गुरु पूजा कहते हैं ।

मुमुक्षूणां मैत्रमपवनिमपूर्वत्वनि हरारभीश्वं सौभीति समनित्तु पुनः नेगरत्वः ।
मर्मभिषिः मेतूरविपूरपत्वादत् पूरत्वः मूनाः श्रीतांश्चत्वरीतकन्दसांशिम्मितान् ॥ १७ ॥ गौर्य ।
गुणग्रामप्रेममुगनयारिणालोकश्मपनोपनः हाणैनायतनिमग्नु हलकुंमप्रलीभेः ।
दारुण्यश्रेगुण्यप्रगगनमनानार्यं वरणानुगन्धूनीलोभिरिधिविरमरमात्म्यश्रनयैः ॥ १८ ॥ गरदं ।
इवाम्बुयद्रकिमगनपुमनंगौम्निमुवनः सुमाणपशानूर्णान्यदनमर्दुरत्यवाभिः ।
पराणोद्गाराभिः प्रसरसुमनोभिः नूतनवां नवसमनर्चीनो मुनिवनितुग्रतीनिवर्तनः ॥ १९ ॥ पुर्न ।
निनिधैस्त्वमानायनरमनाम्बुद्वगुणैर्गवाहः स्वमानदिक्रनितु मुनोषु निधिभेः ।
परवनासानुप्रमदमगनिरिमानवनवां रमेशानागर्वा नगपुरागमश्मनैः ॥ २० ॥ नवं ।
तिमर्दहरुणपणगगनपुरमानंदनगमाद्रिमालिः मंत्रैश्चनविलमनःप्रीनमुक्तेः ।
मर्दीन्द्रियांकुलपूलपांगमपुरनां रकुरमरागीकुर्वश्वणरमनतम्याणमनोनम ॥ २१ ॥ वीर्य ।
उर्नपूंगपूर्णपञ्चपुलपनवूपमस्याविस्पर्शिद्रः धीरं प्रतिदिवसमुराणि रमणनिनाग ।
मनांसि प्रीणद्भिः गुणितमनसानारनवुरैः दार्गं पुरायासनस्मानार्थीरमस्वणान ॥ २२ ॥ पूर्ण ।
नगराश्माप्यीतालरसनासानांगमुपगामितरसाणैः श्रेणमात्रगुरमवेनः फलविशुम ।
मुरम्यैश्वोनानाकमुरुकलारप्रभातिभिः फलैः स्फारीकृतां गणितरवीतानवर्णाग ॥ २३ ॥ फलं ।

पयोधारात्रय्यामलयजरसैरक्षतचयैः प्रसूनैर्नैवेद्यैः प्रमदभरतो दीपनिकरैः ।
वरैर्धूपोद्गारैः फलचयकुशाद्यैश्च रचितं विदध्मोर्घं सूरिक्रमसरसिजोत्तारुचिरम् ॥ २४ ॥ अर्घं ।
पंचाचाराचरणसचिवाचारणैकक्रियाणां स्फारस्फूर्जद्गुणचितयशःशुभ्रिताशाधराणाम् ।
सेत्सूरीणामिति विधिकृताराधनाः पादपद्माः श्रेयोस्मभ्यं ददतु परमानंदनिःस्यंदसांद्रम् ॥ २५ ॥

एतत्पठित्वा पंचांगप्रणामं कुर्यात् । गुरवः पांत्वित्यादिः ।

अथ प्रतिष्ठासारसंग्रहस्य श्लोकाः ।

शुद्धं शुद्धात्मसद्भावं सिद्धसंज्ञानदर्शनम् । सिद्धं शुद्धप्रमाणाप्तिनिरस्तपरदर्शनम् ॥ १ ॥
विश्वकर्मार्थिलोकस्य विश्वकर्मोपदेशकम् । विश्वकर्मक्षयार्थिभ्यो विश्वकर्मक्षयप्रदम् ॥ २ ॥
आदिदेवं जिनं नौमि विश्वकर्मजयं प्रभुम् । शेषांश्च वर्धमानांताजिनान् प्रवचनं गुरून् ॥ ३ ॥
विद्यानुवादसत्सूत्राद्वाग्देवीकल्पतस्ततः । चंद्रप्रज्ञप्तिसंज्ञायाः सूर्यप्रज्ञप्तिसंज्ञिकात् ॥ ४ ॥
तथा महापुराणार्थात् श्रावकाध्ययनश्रुतात् । सारं संगृह्य वक्ष्येहं प्रतिष्ठासारसंग्रहम् ॥ ५ ॥
तत्र तावत्प्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाचार्यलक्षणम् । तस्योपदेशतो वक्ष्ये विश्वकर्मप्रवर्तनम् ॥ ६ ॥
शरण्यं सर्वभूतानां वरांगगुणभूषणम् । नत्वा जिनेश्वरं वीरं वच्म्याचार्येंद्रयोर्गुणम् ॥ ७ ॥

१ यहांसे **वसुनंदि** आचार्यकृत प्रतिष्ठासारसंग्रहका आरंभ है ।

पण्डितप्रवर श्रीआशाधर विरचित

प्रतिष्ठासारोद्धार

(संक्षिप्त भाषाटीकासहित)

समाप्त ।